सूचीपत्र

विषय पृष्ठ विषय

मुखबंध...१-१११

प्रथम खंड—दोहावली

१—कर्ता-निर्णय ... १
२—शक्तिमत्ता .. २
३—सर्वघट व्यापकता ... ३
४—शब्द ... ४
५—नाम ... ५
६—परिचय ... ६
७—अनुभव . ८
८—सारग्राहिता . ९
९—समदर्शिता ... ९
१०—भक्ति .. ९
११—प्रेम ... ११
१२—सुमिरण ... १४
१३—विश्वास ... १५
१४—विरह ... १६
१५—विनय ... १९
१६—सूक्ष्ममार्ग ... २०
१७—परीक्षक (पारखी) ... २१
१८—जिज्ञासु ... २२
१९—दुविधा ... २३
२०—कथनी और करनी ... २४
२१—सहज भाव . २५
२२—मौन भाव ... २५
२३—जीवन्मृत (मरजीवा)... २६
२४—मध्यपथ ... २७
२५—शूरधर्म्म ... २८
२६—पातिव्रत ... २९
२७—सद्गुरु ... ३०
२८—असद्गुरु .. ३२
२९—सज्जन ... ३३
३०—असज्जन ... ३५
३१—सत्संग .. ३७
३२—कुसंग ... ३८
३३—सेवक और दास ... ३९
३४—भेष ... ३९
३५—चेतावनी .. ४०
३६—उपदेश . ४५
३७—काम ... ४८
३८—क्रोध . ४९

विषय	पृष्ठ
३६—लोभ	४६
४०—मोह	४८
४१—अहङ्कार	५१
४२—कपट	५२
४३—आशा	५२
४४—तृष्णा	५३
४५—निद्रा	५३
४६—निंदा	५३
४७—माया	५४
४८—कनक और कामिनी	५५
४६—मादक द्रव्य	५६
५०—शील	५६
५१—क्षमा	५७
५२—उदारता	५७
५३—संतोष	५८
५४—धैर्य	५८
५५—दीनता	५६
६—दया	६०
७—सत्यता	६०
८—वाचनिक ज्ञान	६१
६—विचार	६२
०—विवेक	६२
१—बुद्धि और कुबुद्धि	६३
६२—आहार	६४
६३—संसारोत्पत्ति	६४
६४—मन	६६
६५—विविध	७०
द्वितीय खंड शब्दावली	
१—कर्त्ता निरूपण	७६
२—कर्त्ता-महत्ता	८३
३—कर्त्ता गुण	८६
४—सत्य लोक	८७
५—कर्त्ता-स्थान	१००
६—कर्त्ता प्राप्ति साधन	१०२
७—राम नाम महिमा	१०८
८—शब्द महिमा	१११
६—माया प्रपंच	११६
१०—जगत-उत्पत्ति	११७
११—मन महिमा	१२१
१२—निर्वाण पद	१२१
१३—सतगुरु महिमा और लक्षण	१२३
१४—संत लक्षण	१२६
१५—वेदान्तवाद	१२६
१६—साम्यवाद	१३४
१७—भक्ति उद्रेक	१३६
१८—विरह निवेदन	१३८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१६—गृहवैराग्य	...१४२	२५—मिथ्याचार	...१६८
२०—कर्मगति	...१४३	२६—संसार असारता	...१७८
२१—मोहमहिमा	...१४४	२७—अंतिम दृश्य	.. १८४
२२—उद्बोधन	...१४६	२८—अदभाव	.. १८५
२३—उपदेश और चेतावनी	...१४६	२६—पोडसोपचार सात्विकपूजा	१८८
२४—संकुच और शिक्षा	...१६४		

कबीर साहब की जन्म मरण तिथि का विवरणपत्र

संख्या	नाम पुस्तक	विक्रम संवत		ईस्वी सन्		विशेष
		जन्म	मरण	जन्म	मरण	
१	कबीर कसौटी	१४५५	१५७५	१३९८	१५१८	
२	भक्ति सुधा बिंदु स्वाद	१४५१	१५५२	१३६४	१४६५	डाकटर हंटर ने जन्म सन् १३८० ई० (विक्रम संवत १४३७) लिखा है, और विलसन साहब ने मृत्यु सन् १४४८ ई० (विक्रम संवत् १२०५) बतलाई है— भक्तिसुधाबिंदुस्वाद पृ० ७१४, ८४
३	कबीर ऐंड दी कबीर पंथ	१४९७	१५७५	१४४०	१५१८	
४	सम्प्रदाय	१२०५	१५०५	११४८	१४४८	कबीरपंथी कबीर साहब की उम्र तीन सौ बरस की बतलाते हैं उसका आखिरी सन् को कबूल करते हैं— सम्प्रदाय पृष्ठ ६०।

मुखबंध ।

परिचय

कबीर साहब एक पथ के प्रवर्त्तक थे, उनकी बहुत सी साखियां और भजन इस प्रांत के लोगों को स्मरण हैं, साखियां प्राय- कहावतों का काम देती है, भजन मंदिरों, समाजों और सत्सग के अवसरों पर गाए जाकर लोगों को परमार्थ का पाठ पढ़ाते हैं, इस लिये उन से कोन परिचित नहीं है ? सभी उन को जानते है किंतु जानना भी कई प्रकार का होता है। वे सत थे, उन्होंने अच्छे अच्छे भजन कहे, कबीर पथ को चलाया, एक जानना यह है, और एक जानना यह है कि उनकी विचारपरपरा क्या थी वह केसे उत्पन्न हुई, किन सांसारिक घटनाओं और कार्य्यकलापों में पड़कर वह पल्लवित हुई, किन ससर्गो और महान वचनों के प्रभावों से विकसित बनी। इन बातों का ज्ञान जितना हृदयग्राही और मनोरम होगा उतना ही वह अनेक कुसस्कारों और निर्मूल विचारों के निराकरण का हेतु भी होगा। अतएव पहली अभिज्ञता से इस दूसरी अभिज्ञता का महत्व कितना अधिक होगा यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस ग्रथ में सगृहीत पदों और साखियों में आप जिन विचारों को पढ़ेंगे,

जिन सिद्धांतों का निरूपण देखेंगे, उस समय उनके तत्त्वों को और उत्तमता से समझ सकेंगे, जब आप यह जानते होंगे कि उनका रचयिता कैसा हृदय रखता था, और किन सामयिक घटनाओं के घात प्रतिघात में पड़कर उसका जीवनस्रोत प्रवाहित हुआ था। कविता या रचना कविहृदय का प्रतिबिंब मात्र है, उस में वह अपने मुख्य रूप में प्रतिबिंबित रहता है, इस लिये किसी कविता का मर्म्म यथातथ्य समझने के लिये रचियता के हृदय-संगठन का इतिहास-पाठ बहुत उपयोगी होता है। हृदय-संगठन का इतिहास जीवन-घटना से संबद्ध है, अतएव यह बहुत उपयुक्त होगा, यदि मैं इन समस्त बातों का निरूपण इस ग्रंथ के आदि में किसी प्रबंध द्वारा करूं। निदान अब मैं इसी कार्य्य में प्रवृत्त होता हूं।

जन्म और बाल्यकाल

रेवरंड जी. एच. वेसकट, एम. ए., वर्त्तमान प्रिंसिपल कानपूर क्रिश्चियन कालेज ने "कबीर ऐंड दी कबीर पंथ" नाम की एक उत्तम पुस्तक अँगरेज़ी भाषा में लिखी है। यह पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है, और अभिज्ञताओं एवं विवेचनाओं का आधार है। उक्त सज्जन इसग्रंथ के पृष्ठ २ में लिखते हैं। "यदि हम केवल उन्हीं कहानियों पर ध्यान देते हैं, जिन में ऐतिहासिक सचाई है, तो हम पर ये सब बातें स्पष्टतया प्रगट नहीं होतीं, कि कबीर का जन्मस्थान कहां है, वे किस समय उत्पन्न हुए, उनका नाम क्या था, बचपन

में वे कौन धर्मावलंबी थे, किस दशा में थे, उनका विवाह हुआ था या वे अविवाहित थे और कितने समय तक कहाँ कहाँ रहे? यह सत्य है कि उनके नाम पर बहुत सी कथा वार्ताएँ कही जाती हैं। परंतु चाहे ये कितनी ही मन बहलानेवाली क्यों न हों, उन लोगों की आवश्यकताओं को कदापि नहीं पूरा कर सकतीं, जो वास्तविक समाचार जानने के इच्छुक हैं"।

श्रीयुत् बाबू मन्मथनाथ दत्त, एम. ए. कलकत्ता-निवासी ने अंगरेज़ी में 'प्राफ़ेट्स आफ़ इंडिया' नाम का एक सुंदर ग्रंथ लिखा है। उसका उर्दू अनुवाद बाबू नारायण प्रसाद वर्मा ने 'रहनुमायान हिंद' नाम से किया है। इस ग्रंथ के पृष्ठ २२३ के निम्नलिखित वाक्य में भी हम ऊपर के अवतरण की ही प्रतिध्वनि सुनते हैं-"उनकी सवानेह उमरी एक मुसफ़ी इसरार है, हम उनके दौराने ज़िंदगी के हालात से बिल्कुल वाक़िफ़ नहीं हैं"।

परंतु मेरी इन सज्जनों के साथ एकवाक्यता नहीं है, क्योंकि प्रथम तो आगे चलकर श्रीयुत् वेसकट महोदय स्वयं निम्नलिखित वाक्य लिखते हैं जिसका दूसरा टुकड़ा उनके प्रथम विचार का कियदंश में बाधक है—"आजतक जितनी कहानियाँ कही गई हैं, उन से ज्ञात होता है कि कबीर काशी के रहनेवाले थे। यह बात स्वाभाविक है कि उनके हिंदू शिष्य जहाँ तक हो सके उन का अपने पवित्र नगर से संबंध

दिखलाने की इच्छा करें। परन्तु दोनों बीजक और आदि ग्रंथ से यह बात स्पष्ट है कि उन्होंने कम से कम अपना सारा जीवन काशी ही में नहीं व्यतीत किया "।

क. ग्र. क. पृष्ठ १८, १६।

दूसरे जिस बात को कबीर साहब स्वयं स्वीकार करते हैं, उस में तर्क वितर्क की आवश्यकता क्या, उनके निम्नलिखित पद उनका काशी निवासी होना स्पष्ट सिद्ध करते हैं।

'तू बाम्हन मैं काशी का जुलहा बूझहु मोर गियाना'।

आदि ग्रंथ पृ० २६२

'सकल जनम शिवपुरी गँवाया, मरति बार मगहर उठि धाया।

आदि ग्रंथ पृ० १७७

'काशी में हम प्रगट भये हैं रामानंद चेताये'

कबीर शब्दावली द्वितीय भाग पृ० ६१

मैं समझता हूं कि यह बात निश्चित सी है कि—पुण्यतोया काशीधाम कबीर साहब का जन्मस्थान, उनकी माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था। दोनों जाति के जोलाहे थे। कहा जाता है कि वे इनके औरस नहीं पुण्य पुत्र थे। नीरू जब अपनी युवती प्रिया का द्विरागमन करा कर गृह को लौट रहा था, तो मार्ग में उसको काशी अवस्थित लहर तारा के तालाब पर एक नवजात-सुंदर-बालक पड़ा हुआ दृष्टिगत हुआ। नीमा के कलंक भय से भीत हो मना करने पर भी नीरू ने इस नवजात शिशु को ग्रहण किया और वह

उसे घर लाया। यही बालक पीछे इन दयामय दंपति द्वारा परिपालित होकर संसार में कबीर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यह किस का बालक था, लहरतारा के तालाब पर कैसे आया, इन कतिपय पंक्तियों को पढ़कर स्वभावतः यह प्रश्न हृदय में उदय होता है। इसका उत्तर कबीरपंथ के भावुक विश्वासी विद्वान इस प्रकार देते हैं, कि संवत् १४५५ की ज्येष्ट शुक्ला पूर्णिमा को जब कि मेघमाला से गगनतल समाच्छन्न था, बिजली कौंध रही थी, कमल खिले थे, कलियों पर भ्रमर गूँज रहे थे, मोर मराल चकोर कलरव करके किसी के स्वागत की बधाई गा रहे थे, उसी समय पुनीत काशीधाम के तरंगायमान लहर तालाब पर एक अलौकिक घटना हुई, और वह अलौकिक घटना इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं थी कि उक्त तालाब के अंक में विकसे हुए एक सुँदर कमल पर आकाश मंडल से एक महापुरुष उतरा। महापुरुष वही कबीर बालक था, जिसने कुछ घड़ियों पीछे पुण्यवती नीमा की गोद और भाग्यमान नीरू का सदन समलंकृत किया।

उक्त प्रश्न का एक और उत्तर दिया जाता है, किंतु वह बहुत ही हृदयद्रावक है। वह अधःपतित हिंदू समाज से उत्पीड़ित भयातुरा एक दुखमयी विधवा की व्यथामयी कथा है। वह उस खिन्नमना, भग्नहृदया, अभागिनी, ब्राह्मण बाला की वार्त्ता है, जिसके उपयोगी अंक से कबीर जैसा लाल

गिर कर एक ऐसे स्थान में आ पड़ा कि जहां से उसकी परम हृदयोल्लासिनी ज्योतिर्माला फिर उसकी आंखों तक न पहुँची। तब भी मैं उसे एक प्रकार से भाग्यवती ही कहूंगा, क्योंकि उस का लाल किसी प्रकार सुरक्षित तो रहा। परम भाग्यहीना है वह हिंदू जाति और नितांत ही कुत्सित वाला है यह आर्य्य वाला कि जिसके न जानें कितने एक एक से एक सुंदर लाल कुप्रथा कुचक्र में पड़कर अकाल ही इस धराधाम से लोप हो जाते हैं, और अपनी उस कमनीय आलोकमाला के विकीर्ण करने का अवसर नहीं पाते, जो पतनशील हिंदू समाज का न जानें कितना अंधकार शमन करने में समर्थ होतो। आह! कहते हृदय दग्ध होता है कि तो भी हिंदू जाति वैसी ही निश्चल, निस्पंद है; वैसी ही विवेकशून्य और किं-कर्तव्य-विमूढ़-है. आज पाँच शतक बीत जाने पर भी उसकी मोह निद्रा वैसी ही प्रगाढ़ है। कब उसकी यह समाजध्वंसिनी मोहनिद्रा विदूरित होगी, ईश्वर ही जाने।

कहते हैं कि स्वामी रामानंद जी की सेवा में एक दिन उनका अनुरक्त एक ब्राह्मण उपस्थित हुआ, उसके साथ उसकी विधवा पुत्री भी थी। जिस समय इस संकोचमयी विधवा ने विनीत होकर उक्त महात्मा के श्री-चरण-कमलों में प्रणाम किया, उस समय अचानक उनके श्रीमुख से निकला, पुत्रवती भव। काल पाकर यह आशीर्वचन सफल हुआ

और विधवा ने एक पुत्र जना। परंतु लोकलज्जावश, हिंदू समाज की रोमांचकरी कुप्रथा के निंदनीय आतंक वश, यह सशंकिता विधवा अपने कलेजे पर पत्थर रख कर अपनी इस प्यारी संतान को त्याग देने के लिये बाध्य हुई। कुछ घड़ी पीछे लहर तालाब की हरी भरी शांतिमयी भूमि में इसे जोलाहा दंपति ने पाया। यह प्रसंग भी आप लोगों को अविदित नहीं है।

इन दो उत्तरों में से मुझे दूसरा उत्तर युक्तिसंगत और प्रामाणिक ज्ञात होता है। पहले उत्तर को श्रद्धा, विश्वास वाले कबीरपंथी ही या उन्हीं के से विचार के कुछ लोग मान सकते हैं, परंतु दूसरा उत्तर सर्वमान्य और ऐतिहासिक है, इस को विजातीय और विधर्मी भी स्वीकार कर सकता है। यह कोई नहीं कहता कि कबीर साहब नीमा और नीरू के औरस पुत्र थे और जब वे इनके औरस पुत्र नहीं माने जाते, तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वे किसी अन्य की संतान थे और जब उन का अन्य की संतान होना निश्चित है, तो हम को बिना किसी आपत्ति के दूसरा उत्तर ही स्वीकार करना पड़ेगा। कहा जा सकता है कि दूसरे उत्तर में भी स्वामी जी के आशीर्वाद की एक अस्वाभाविक वार्ता सम्मिलित है, किंतु इस अंश का मुख्य घटना के साथ कोई विशेष संबंध नहीं है, यह अंश निकाल देने पर भी वास्तविक घटना की स्वाभाविकता में अंतर नहीं आता। मुझे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण विधवा का

कलंक भंजन अथवा कबीर साहब की जन्मकथा को गौरव-मयी बनाने के लिये ही स्वामी जी की आशीर्वाद संबंधिनी वार्त्ता का संयोग इस घटना के साथ किया गया है।

कबीर साहब के बाल्यकाल की बातें किसी ग्रंथ में कुछ लिखी नहीं मिलतीं। कबीरपंथियों के ग्रंथों में इतना लिखा अवश्य मिलता है कि वे बाल्यकाल ही से धर्म्मपरायण और उपदेशनिरत थे। जन साधारण के सम्मुख वे मुझे उस समय दिखलाई पड़ते हैं जब उनको सुध बुध हो गई थी और जब वे तिलक इत्यादि लगाकर राम नाम जपने में लीन हो रहे थे। यह भी लिखा मिलता है कि इसी समय उनसे कहा गया कि तुम निगुरे हो, इसलिये जब तक तुम कोई गुरु न कर लोगे, उस समय तक तिलक मुद्रा देने अथवा राम नाम जपने से पूरे फल की प्राप्ति न होगी। यह एक हिंदू विचार है, इस में एक अच्छे पथप्रदर्शक का अभिलषित मार्ग में सहायता ग्रहण करने के सिद्धांत की ओर संकेत है। कथन है कि कबीर साहब पर लोगों के इस कहने का प्रभाव पड़ा, और उन्हें गुरु करने की आवश्यकता समझ पड़ी। ये बातें भी यही प्रगट करती हैं कि जिस काल की ये घटनाएं हैं, उस समय कबीर सुबोध हो चुके थे और बाल्यावस्था उत्तीर्ण हो गई थी।

मंत्र-ग्रहण

कबीर साहब हिंदू थे या मुसल्मान, वे स्वामी रामानंद

जी के शिष्य वैष्णव थे, या किसी मुसल्मान फकीर के चेले सूफी—इस विषय में "कबीर ऍड दी कबीरपंथ" के दूसरे अध्याय में उसके विद्वान रचयिता ने एक अच्छी विवेचना की है। मैं उनके कुल विचारों को यहाँ नहीं उठा सकता परंतु उसके मुख्य स्थानों को उठाऊँगा, और इस बात की मीमांसा करूंगा कि उनका विचार कहाँ तक युक्तिसंगत है।

उक्त ग्रंथ के २५ २६ पृष्ठ में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—

कि खजीन तुल* असफिया में कहा गया है कि 'शेख कबीर जोलहा शेख तकी के उत्तराधिकारी और चेले थे, वह अपने समय के महा पुरुष और ईश्वरवादियों के नेता थे। उन्होंने सूफियों के विसाल (ईश्वरमिलन) नामक सिद्धांत की शिक्षा दी और फिराक (वियोग) के संबंध में चुप रहे। यह भी कहा जाता है कि वे पहले मनुष्य हैं जिन्होंने परमेश्वर और उसकी सत्ता के विषय में हिंदी में लिखा, वे बहुत सी हिंदी कविता के रचयिता हैं। धार्मिक सहन शीलता के कारण हिंदू और मुसल्मान दोनों ही ने उन्हें अपना नेता माना, हिंदुओं ने उन्हें भगत कबीर और मुसल्मानों ने पीर कबीर कहा।"

इसके आगे चल कर उनका दूसरा अध्याय प्रारंभ होता

---

* यह पुस्तक मौलवी गुलाम सरवर की बनाई हुई है और १८६८ ई० में लाहौर में छपी है॥

है। उस में उन्होंने इस ऊपर लिखे विचार का ही पुष्टि की है। पहले वे कहते हैं—

"संस्कृत के नामी विद्वान विलसन साहब, जिनकी खोज के लिये प्रत्येक भारतवर्षीय धार्मिक विचार का जिज्ञासु अँगरेज, धन्यवादरूपी ऋण से दबा है, लिखते हैं कि यह बात विचारविरुद्ध है कि कबीर एक मुसल्मान थे, यद्यपि यह असम्भव नहीं है। मैलकम साहब की इस अनुमति का कि वे सूफियों में से थे, विलसन साहब अधिक आदर नहीं करते। बाद के लेखक गण एक ऐसे विद्वान पुरुष की सम्मति मान लेने में ही सन्तुष्ट रहे हैं, और इनकी निष्पत्ति को निश्चित की हुई सत्य बात की भांति उन्होंने स्वीकार कर लिया है।"

क एँ क–पृष्ठ २६

इसके अनन्तर नाभा जी के प्रसिद्ध छुप्पय इत्यादि का अनुवाद देकर जिस में यह कहा गया है कि "कबीर साहब ने वर्णाश्रम धर्म्म और षट् दर्शन की कानि नहीं मानी" उन्होंने यह बतलाया है कि किस प्रकार झासीनिवासी शेख तकी का शिष्यत्व कबीर साहब ने स्वीकार किया। तदुपरान्त वे यह कहते हैं—

'हमने सम्भवतः पूरी तौर पर इस बात को सिद्ध कर दिया है कि यह असम्भव नहीं है कि कबीर मुसल्मान और सूफी दोनो रहे हो। मगहर में उनकी क़ब्र है जो मुसल्मानो

की संरक्षा में रहती आई है। किंतु यह बात आश्चर्य्यजनक है कि एक मुसलमान हिंदी साहित्य का जन्मदाता हो, परंतु इसको भी नहीं भूलना चाहिए कि हिंदुओं ने भी फ़ारसी कविता लिखने में प्रतिष्ठा पाई है। फिर कबीर साधारण योग्यता और निश्चय के मनुष्य नहीं थे, उनके जीवन का उद्देश्य यह था कि अपनी शिक्षाओं को उन लोगों से स्वीकृत करावें, जो कि हिंदी, भाषा द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकते थे।"—कबीर ऐंड कबीर पंथ पृ. ४४।

कबीर साहब का मुसल्मान होना निश्चित है, उन्होंने स्वयं स्थान स्थान पर जोलाहा कहकर अपना परिचय दिया है। जब जन्मकाल ही से वे जोलाहे के घर में पले थे तो दूसरा संस्कार उनका हो नहीं सकता था, उनके जी में यह बात समा भी नहीं सकती थी कि वे हिंदू संतान हैं। नीचे के पदों को देखिए। इन में किस स्वाभाविकता के साथ वे अपने को जोलाहा स्वीकार करते हैं।

छाड़े लोक अमृत की काया जग में जोलह कहाया।

फबीर बीजक पृष्ठ ६०५

कहै कबीर राम रस माते जोलहा दास कबीरा हो।

प्रथम कहरा चरण १५

जाति जुलाहा क्या करै हिरदे बसे गोपाल।
कबिर. रमैया कंठ मिलु चुकै सरब जंजाल।

आदि ग्रंथ पृष्ठ ७३७ साखी ८२

किंतु वे सूफी और शेख तकी के चेले थे, यह बात निश्चित रूप से स्वीकार नहीं की जा सकती। श्रीयुत् वेसक्ट ने अपने ग्रंथ में जितने प्रमाण दिखलाए हैं, वे सब बाहरी हैं। कबीर साहब के वचनों अथवा उनके ग्रंथ से कोई प्रमाण उन्होंने ऐसा नहीं दिया जो उनके सिद्धांत को पुष्ट करे। बाहरी प्रमाणों से, ऐसे प्रमाण कितने मान्य और विश्वास मूलक हैं, यह बतलाना व्यर्थ है। कबीर साहब कहते हैं—

भक्ती द्राविड़ ऊपजी लाये रामानंद।
परगट करी कबीर ने, सात दीप नौ खंड॥
चौरासी अंग की साखी भक्ति का अंग।

काशी में हम प्रगट भये हैं रामानंद चेताये।
कबीर शब्दावली द्वितीय भाग पृष्ठ ६१।

काशी में कीरति सुन आई, कह कबीर मोहि कथा बुझाई।
गुरु रामानँद चरण कमल पर धोचिन* दीनी वार॥
कबीर कसौटी पृष्ठ ५१

कबीर साहब के ये वचन ही पर्य्याप्त हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि वे स्वामी रामानंद के शिष्य थे। तथापि मैं कुछ बाहरी प्रमाण भी दूंगा।

धर्म्मदास जी कबीर साहब के प्रधान शिष्य थे, वे कबीर पंथ की एक शाखा के आचार्य्य भी हैं, वे कहते हैं।

---

* धोचिन अर्थात् माया

काशी में प्रगटे दास कहाये नीरू के गृह आये।
रामानँद के शिष्य भये, भवसागर पंथ चलाये।

कबीर कसौटी पृष्ठ ३२

फ़ारसी की एक तवारीख़ दबिस्तां में मुहसिनफ़नी कश्मीरवाला जो अकबर के समय में हुआ है, लिखता है—

"कबीर जोलाहे और एकेश्वरवादी थे। आध्यात्मिक पथ दर्शक मिले इस इच्छा से वे हिंदू साधुओं एवं मुसलमान फ़क़ीरों दोनों के पास गए, और अंत में जैसा कि कहा गया है रामानंद के शिष्य हुए" —कबीर ऐंड कबीर पंथ पृष्ठ ३७।

इन बातों के अतिरिक्त यदि कबीर साहब की रचनाओं को पढ़िए तो वे इतनी हिंदू भावापन्न मिलेंगी, कि उन्हें पढ़कर आप यह स्वीकार करने के लिये विवश होंगे कि उन पर परम शास्त्रपारंगत किसी महापुरुष का प्रभाव पड़ा था। कबीर साहब अशिक्षित थे, यह बात उनके समस्त जीवनी-लेखक स्वीकार करते हैं, अतएव उनके लिये ज्ञानार्जन का मार्ग सत्संग के अतिरिक्त और कुछ न था। यदि वे मुसलमान धर्म्माचार्य्यों द्वारा प्रभावित होते, तो उनकी रचनाओं में अहिंसावाद और जन्मांतरवाद का लेश भी न होता। जो हिंसावाद मुसलमान धर्म्म का प्रधान अंग है, उस हिंसा वाद के विरुद्ध जब वे कहने लगते हैं, तो ऐसी कड़वी और अनुचित बातें कह जाते हैं जो एक धर्मोपदेशक के मुख से अच्छी नहीं लगतीं। क्या हिंसावाद का उन्हें इतना

विरोधी बनानेवाला मुसलमान धर्म्म या सूफी सम्प्रदाय हो सकता है ? उनका सृष्टिवाद देखिए वही है जो पुराणों में वर्णित है। उनकी रचनाओं में जितना हिंदू शास्त्र और पौराणिक कथाओं एव घटनाओं के परिज्ञान का पता चलता है उसका शतांश भी मुसलमान धर्म्म-सबधी उनका ज्ञान नहीं पाया जाता। जब वे किसी अवसर पर मुसलमान धर्म्म पर आक्रमण करते हैं, तो उन्हीं ऊपरी बातों को कहते हैं जिनको एक साधारण हिंदू भी जानता है, किंतु हिंदू धर्म्म विवेचन के समय उनके मुख से वे बातें निकलती हैं जिन्हें शास्त्रज्ञ विद्वानों के अतिरिक्त दूसरा कदाचित ही जानता है। इन बातों से क्या सिद्ध होता है, यही कि उन्होंने किसी परम विद्वान् हिंदू महात्मा के सत्संग द्वारा ज्ञानार्जन किया था और स्वामी रामानद के अतिरिक्त उस समय ऐसा महात्मा कोई दूसरा नहीं था।

एक बात और है और वह यह कि हम उनके प्रामाणिक ग्रंथों में कहीं कहीं ऐसे वाक्य पाते हैं, जो उनको हिंदुओं का पक्षपाती बनाते हैं या मुसलमान जाति पर उनकी घृणा प्रगट करते हैं, जिसे मुसलमान धर्म्माचार्य्य का शिष्य कभी नहीं कथन कर सकता। नीचे के पदों को पढ़िए।

" सुनति कराय तुरुक जो होना, औरत को का कहिए।
अरध शरीरी नारि बखानै, ताते हिंदू रहिए "॥

शब्द ८४ कबीर बीजक पृष्ठ ३६२

किते मनावैं पाँय परि, किते मनावैं रोइ।
हिंदू पूजैं देवता, तुरुक न काहुक होइ॥
साखी १८७ कबीर बीजक पृष्ठ ५६६

मैंने अब तक जो कुछ कहा उससे इसी सिद्धांत पर उपनीत होना पड़ता है कि कबीर साहब स्वामी रामानंद के शिष्य थे किंतु उनके मंत्रग्रहण की वार्त्ता से मैं सहमत नहीं हूं। भक्तमाल और उसी के अनुसार दूसरे ग्रंथों में लिखा गया है कि गुरू करने की इच्छा उदय होने पर कबीर साहब ने स्वामी रामानंद को गुरु करना विचारा किंतु यवन होने के कारण वे स्वामी रामानंद जी तक नहीं पहुँच सकते थे, अतएव उनसे मंत्र ग्रहण करने के लिये उन्होंने दूसरी युक्ति निकाली। स्वामी रामानंद शेष रात्रि में गंगा स्नान के लिये मणिकर्णिका घाट पर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाट की सीढ़ियों में जाकर पड़ रहे। जब स्वामी जी आए तो सीढ़ियों से उतरते समय उनका पाँव कबीर साहब पर पड़ा, वे कुलबुलाए, स्वामी जी ने जाना मनुष्य के ऊपर पाँव पड़ा, इसलिये वे बोल उठे "राम! राम!!" कबीर साहब ने इसी राम शब्द को मंत्र स्वरूप ग्रहण किया, और उसी दिन से काशी में अपने को स्वामी रामानंद का शिष्य प्रगट किया।

बतलाया गया है कि उनके माता पिता और कुछ लोगों को वंशमर्य्यादा प्रतिकूल कबीर साहब की यह क्रिया अच्छी

न लगी, इसलिये उन लोगों ने जाकर स्वामी जी को उलाहना दिया। स्वामी जी ने उनको बुलवाया और पूछा—कबीर! हमने तुझे मंत्र कब दिया। कबीर साहब ने कहा—और लोग तो कान में मंत्र देते हैं परंतु आपने तो सिर पर पाँव रख कर मुझे राम नाम का उपदेश दिया। स्वामी जी को बात याद आ गई, उठ कर हृदय से लगा लिया, और कहा निस्सन्देह तू इसका पात्र है। गुरु शिष्य का यह भाव देख कर लोगों को फिर और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

स्वामी रामानंद असाधारण आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न महापुरुष थे। जो रामावत सम्प्रदाय उत्तरीय भारत का इस समय प्रधान धर्म्म है, वह उन्हीं की लोकोत्तर मेधा का अलौकिक फल है। उस राम मंत्र से सर्व साधारण को परिचित करनेवाले येही महोदय हैं, जो हिंदू जाति के मोक्ष पथ का अभूत पूर्व सम्बल है, जिसके सुयश गान से कबीर साहब के साम्प्रदायिक ग्रंथ मुखरित हैं, गुरु नानक का विशाल आदि ग्रंथ गौरवान्वित हैं, दादू ग्रंथावली पवित्रीकृत है, और अन्य कितनी सांप्रदायिक पुस्तकमालाएं प्रशंसित और सम्मानित है। कुछ लोग ऊँचे उठे बहुत कुछ चिंताशीलता का परिचय दिया, तनधारी राम से संबंध तोडा, किंतु वे इस राम शब्द की ममता न छोड सके। इस महात्मा के आध्यात्मिक विकाश की वहाँ पराकाष्टा होती है, जहाँ वे सोचते हैं, प्रवहमान मारुत, सुशीतल जल, और सूर्य्यदेव की

ज्योतिर्माला तुल्य भगवद्भक्ति पर प्रत्येक मानव का समान अधिकार है। भारतवर्ष के उत्तर काल में वे पहले महात्मा है, जो नितांत उदार हृदय लेकर सामने आते हैं और उसी सहृदयता से जाट, नाई, जोलाहा, और चमार को अंक में ग्रहण करते हैं कि जिस प्यार से किसी सजातीय ब्राह्मण बालक को वे हृदय से लगाते हैं। आंख उठाकर देखिए किस की शिष्यमंडली में एक साथ इतने महात्मा और मतप्रवर्त्तक हुए जितने कि इस महानुभाव के सदुपदेश आलोक से आलोकित सत्पुरुषों में पाए जाते हैं। जब इस महात्मा की पूत कार्य्यावली पर दृष्टि डालते हैं, और फिर सुनते हैं कि उनके सन्निकट कोई मनुष्य जोलाहा होने के कारण नहीं पहुँच सका, तो हृदय को बड़ी व्यथा होती है। यदि रैदास चमार उनके द्वारा अंगीकृत हुआ तो कबीर जोलाहा कैसे तिरस्कृत हो सकता था। वास्तविक बात यह है कि इन कथाओं के गढ़नेवाले संकुचित विचार के कतिपय वे ही अदूरदर्शी जन हैं कि जिनके अविवेक से प्रति दिन हिंदू समाज का ह्रास हो रहा है। मुझे इन कथाओं का स्वीकार करना युक्ति संगत नहीं ज्ञात होता। मैं महसिनफनी के इस विचार से सहमत हूँ कि "आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक मिले इस इच्छा से कबीर साहब हिंदू साधुओं एवं मुसल्मान फकीरों दोनों के पास गए और अंत में स्वामी रामानंद के शिष्य हुए।"

जो लोग मणिकर्णिका घाट की घटना ही को सत्य मानते

हैं, उनसे मैं कोई विवाद नहीं करना चाहता, किंतु इतनी विनीत प्रार्थना अवश्य करता हूँ कि इस घटना को लक्ष्य कर जो मनीषी स्फीतवक्ष से "पुनतु मा ब्राह्मण पाद रेणव" वाक्य पर गर्व करते हैं उनकी मनीषिता केवल गर्व करने में ही पर्य्यवसित होती है, अथवा वे इस वाक्य के मर्म्म ग्रहण की भी कुछ चेष्टा करते हैं। सहस्त्रों हिंदू प्रति वर्ष हमारे समाज अक को शून्य करके अन्य धर्म्म की शरण ले रहे हैं, प्रति दिन हिंदू धर्म्म माननेवालों की सख्या क्षीण होती जा रही है, क्या उनके विषय में उनका कुछ कर्तव्य नहीं है? क्या स्नान, ध्यान, पूजा, पाठ, व्रत, उपवास करने में ही पुण्य है? क्या धर्म्म से च्युत होते प्राणियों की सरक्षा में पुण्य नहीं है? क्या कुल गौरव, मान मर्य्यादा वर्णाश्रम धर्म्म का सरक्षण ही सत्कर्म्म है? नित्य स्वधर्म्म परित्याग परायण अध पतित जातियों का समुद्धार सत्कर्म्म नहीं है? यदि है तो कितने महोदय ऐसे हैं जिन्होंने आत्मत्यागपूर्वक निर्भीक चित्त से इस मार्ग में पदविन्यास किया है? पदरेणु की बात जाने दीजिए, मैं पूछता हूँ, कितने लोगों का हृदय इतना पुनीत है, शरीर इतना पुण्यमय है, स्वय आत्मा इतनी पवित्रीभूता है कि जिनके सस्पर्श से अपावन भी पावन हो जाता है! जब हम स्वय अपावन को छू कर आज अपवित्र होते हैं, तो हम को (पुनतु मा ब्राह्मणपादरेणवः) वाक्य मुख पर लाते हुए लज्जित होना चाहिए, यदि नहीं तो एक आत्मोत्सर्गी महा

पुरुष की भांति कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होना चाहिए, और यह दिखला देना चाहिए कि स्वामी रामानंद का आध्यात्मिक बल अब भी भारतवासियों में शेष है, अब भी अपावन को पावन बनाने की बलवती शक्ति उनमें विद्यमान है, भारत वसुंधरा अभी ऐसे अलौकिक रत्नों से शून्य नहीं हुई है।

संसार यात्रा

कबीर साहब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे, यह बात सभी उनके जीवनी-लेखकों ने स्वीकार की है। उनके शब्दों में भी ऐसे वाक्य बहुत मिलते हैं कि 'हम घर सूतत नहिं नित ताना' इत्यादि कि जिन से उनका यही व्यवसाय करके अपना जीवन बिताना सिद्ध होता है। इस विषय में उनका एक बड़ा सुंदर शब्द है, उसे नीचे लिखता हूँ।

मुसि मुसि रोवै कबीर की माय,
ए बारक कैसे जीवहिं रघुराय।
तनना बुनना सब तज्यो है कबीर,
हरि का नाम लिखि लियो शरीर।
जब लग तागा बाहउं वेही,
तब लग बिसरै राम सनेही।
ओछी मति मेरी जाति जुलाहा,
हरि का नाम लह्यों मैं लाहा।

कहत कबीर सुनहु मेरी माई,

हमरा इनका दाता एक रघुराई। आदि ग्रंथ पृष्ठ ८८५।

किंतु उनके विवाह और संतानोत्पत्ति के विषय में मतांतर है। कबीरपंथ के विद्वान् कहते हैं कि लोई नाम की स्त्री उनके साथ आजन्म रही परंतु उससे उन्होंने विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनके पुत्र और कमाली उनकी पुत्री के विषय में भी ये लोग विचित्र बातें कहते हैं। उनका कथन है कि ये दोनों अन्य की संतान थे जो मृतक हो जाने कारण त्याग दिए गए थे, परंतु कबीर साहब ने उनको पुनः जिलाया और पाला इसीलिये ये दोनों उनकी संतान करके प्रख्यात हुए। यह कदाचित् वे लोग इसलिये कहते हैं कि कबीर साहब ने स्त्री संग को बुरा कहा है—यथा

नारि नसावै तीन गुन जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, पैठि सकै नहिं कोय॥
नारी की झाईं परत, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी को संग॥

चौरासी अंग की साखी, कनक कामिनी का अंग।

किंतु कबीर साहब ने अपना विवाह होना स्वयं स्वीकार किया है, यथा

नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं विचार।
जब जाना तब परिहरी, नारी बड़ा विकार॥

चौरासी अंग की साखी, कनक कामिनी का अंग।

भ्रमण करते हुए एक दिन कबीर साहब भगवती भागीरथीकूलस्थित एक (वनखंडी) वैरागी के स्थान पर पहुँचे, वहाँ एक विंशति-वर्षीया युवती ने आपका स्वागत किया। यह निर्जन स्थान था, परंतु कुछ काल ही में वहाँ कुछ साधू और आए। युवती ने साधुओं को अतिथि समझा, उनका शिष्टाचार करना चाहा, अतएव वह एक पात्र में दूध लाई, साधुओं ने इस दूध को सात पनवाड़ों में बाँटा, पांच उन लोगों ने स्वयं लिया, एक कबीर साहब को और एक युवती को दिया। कबीर साहब ने अपना भाग लेकर पृथिवी पर रख दिया, इस लिये युवती ने कुछ संकोच के साथ पूछा, क्यों! आपने अपना दूध धरती पर क्यों रख दिया, आप भी और साधुओं की भांति उसे कृपा करके अंगीकार कीजिए। कबीर साहब ने कहा-देखो गंगा पार से एक साधू और आ रहा है, मैंने उसी के लिये इस दूध को रख छोड़ा है। युवती कबीर साहब की यह सज्जनता देखकर मुग्ध हो गई, और उसी समय उनके साथ उनके घर चली आई, पश्चात् इसी के साथ कबीर साहब का विवाह हुआ। इस का नाम लोई था, यह वनखंडी वैरागी की प्रतिपालिता कन्या थी। इसे वैरागी ने अचानक एक दिन जाह्नवीकूल पर पड़ा पाया था। कमाली और कमाल इसी की संतान थे।

शील और सदाचार

एक दिन कबीर साहब ने एक थान मस्त्रीक बीन कर

प्रस्तुत किया, और बेचने की कामना से वे उसे लेकर घर से बाहर निकले। अभी कुछ दूर आगे बढ़े थे कि एक साधू ने सामने आकर कहा-बाबा कुछ दे। कबीर साहब ने आधा थान फाड़ दिया। उसने कहा—बाबा इतने में मेरा काम न चलेगा, कबीर साहब ने दूसरा आधा भी उसको अर्पण किया, और आप प्रसन्न बदन घर लौट आए।

एक दिन कबीर साहब के यहां बीस पचीस भूखे फकीर आए उस दिन उनके पास कुछ न था, इस लिये व घबराए। लोई ने कहा-यदि आज्ञा हो तो मैं एक साहूकार के बेटे से कुछ रुपए लाऊं। उन्होंने कहा-कैसे। स्त्री ने कहा-वह मुझ पर मोहित है मैं पहुची नहीं कि उसने रुपया दिया नहीं। कबीर साहब ने कहा—किसी तरह काम चलाना चाहिए। लोई साहूकार के बेटे के पास पहुँची, रुपया लाई, और रात में मिलने का वादा कर आई। दिन खाने खिलाने में बीता, रात हुई, सब ओर अँधेरा छा गया, झड़ बाँधकर मेंह बरसने लगा, रह रह कर हवा के झोंके जी कँपाने लगे। किंतु कबीर साहब को चैन न था, वे सब जान चुके थे। उन्होंने सोचा जिसकी बात गई उसका सब गया, इस लिये वे पानी और हवा से न डरे, कम्मल ओढ़ाकर उन्होंने स्त्री को कंधे पर लिया, और वे साहूकार के घर पहुँचे। साहूकार का लड़का तड़प रहा था। उसको आया देख वह खिल उठा, किंतु उसने देखा कि न तो उसके पाँव कीचड़ से भरे हैं,

श्रीर न कपड़ा भींगा है, तो चकित हो गया, श्रीर वह बोला-तुम कैसे आई। लोई ने कहा-मेरे पति मुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर लाए हैं। यह सुनकर साहुकार के लड़के के जी में बिजली कौंध गई, अँधियारा उंजाले के सामने न ठहर सका, वह लोई के पाँवों पर गिर पड़ा और बोला-आप मेरी मा हैं। कवीर साहब ने मेरी आँख खोलने के लिये ही इस कठिनाई का सामना किया है। इतना कहकर वह घर से बाहर निकल आया, और कबीर साहब के पाँवों से लिपट गया, तथा उसी दिन से उनका सच्चा सेवक बन गया।

श्रीमान् वेसकट लिखते हैं कि "कबीर साहब के वर्णित जीवनचरित में एक प्रकार का काव्य का सा सौंदर्य पाया जाता है"*। यह बात सत्य है, किंतु वह इतना रंजित और अस्वाभाविक बातों से भरा है, कि मेरी प्रवृत्ति इन दो प्रसंगों के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रसंग लिखने की नहीं होती। आप लोग इन दो कथानकों से ही उन के शील और सदाचार के विषय में बहुत कुछ अवगत हो सकते हैं।

धर्म्मप्रचार

भागीरथी तट की बातें लिखकर 'रहनुमायान हिंद' के रचयिता लिखते हैं "रामानंद कवीर के बशरे से कुछ आसारे सआदत देखकर उन्हें अपने मठ में ले आए और वह उसी रोज़ बाज़ाब्ता रामानंद के मज़हब में दाखिल हो गए।

* देखो कबीर एंड दी कबीर पंथ पृष्ठ २६।

मगर हम यह नहीं कह सकते कि वह कब तक अपने गरोह की इताअत को पीरों में साबित कदम रहे। गालिबन मुरशिद की वफात के बाद उन्हों ने अपने मज़हब की बाज़ को तलकीन शुरू की"। मेरा भी यही विचार है। उनके उपदेश देने का ढंग निराला था, संभव है कि वे कभी कभी यों भी लोगों को उपदेश देते रहे हों किंतु अधिकतर वे अपने विचारों को, सीधी सादी बोलचाल के भजनों में लाकर और उन्हें गाकर प्रगट करते थे। उनके भजनों को देखिए, उनकी रचना अधिकांश प्रचलित गीतों के ढंग की है। वे स्वयं कहते हैं—

बोली हमरी पूर्व की, हमें लखै नहिं कोइ।
हम को तो सोई लखै, धुर पूरब का होइ॥
मसि कागद तो छुयो नहिं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिहु युग माहात्मा, तेहि कहि कै जनायो नाथ॥

कबीर बीजक साखी १७७, १८७।

उनके धार्मिक सिद्धांत क्या थे और वे लोगों को किस बात की शिक्षा देते थे इस बात का वर्णन मैं अन्त में करूंगा। यहाँ केवल यह प्रगट करना चाहता हूं कि संसार में जो लोग मुख्य योग्यता के होते हैं, उन में कुछ आकर्षिणी शक्ति अवश्य होती है। कबीर साहब में भी यह शक्ति थी, उनके भावमय भजनों को सुनकर और उनके शील और सदाचरण से प्रभावित होकर उनके समय में ही अनेक लोग उनके

अनुगत हो गए। इन में अधिकतर हिंदुओं की ही संख्या है, मुसल्मानों के हृदय पर उनका अधिकार नहीं हुआ। किसी किसी राजा पर भी उनका प्रभाव पड़ा, चाहे यह प्रभाव केवल एक साधु या महात्मा मूलक हो, या धर्म्म मूलक।

विरोधी दल

यह सत्य है कि हिंदू और मुसल्मान दोनों धर्म्म के नेताओं से अंत में उनका विरोध हो गया। क्यों हो गया, इस के कारण स्पष्ट हैं। हिंदू धर्म्म के नेताओं को एक अहिंदू का हिंदू धर्म्मोपदेशक रूप से कार्य्यक्षेत्र में आना, कभी प्रिय नहीं हो सकता था, इसलिये उन लोगों का कबीर साहब का कट्टर विरोधी हो जाना स्वाभाविक था। हिंदू आचार्य्य का शिष्यत्व ग्रहण करने और मुसल्मान होकर हिंदू सिद्धांतों का अनुगत और प्रचारक हो जाने के कारण मुसल्मान धर्म्म के नेताओं से भी उनका वैमनस्य हो गया। परिणाम इस का यह हुआ कि उन्हों ने दोनों धर्म्म के नेताओं पर कठोरता के साथ आक्रमण किया और उद्दंड स्वभाव होने कारण उन पर बड़ी कटूक्तियां की, उनके धर्म्म-ग्रंथों को भला बुरा कहा, फिर विरोध की आग क्यों न भड़कती। निदान इस विरोध के कारण उनको अनेक यातनाएँ भोगनी पड़ीं, किंतु उन में वह दृढ़ता मौजूद थी, जो प्रत्येक समय के धर्म्मप्रचारकों में पाई जाती है। इसलिये अनेक कष्ट सहकर भी, अपने सिद्धांत पर वे आरूढ़ रहे, और उनकी इसी निश्चलता ने उनको सर्व

साधारण में समाहत बनाया। इस समय सिकन्दर लोदी उत्तरीय भारत में शासन करता था, शेख तकी (जो एक प्रभावशाली और मान्य व्यक्ति थे) और दूसरे मुसल्मानों के शिकायत करने पर बादशाह की क्रोधाग्नि भी भड़की, और उन्होंने कबीर साहब को कुछ कष्ट भी दिया किन्तु अंत में उन्हें फकीर होने के कारण छुटकारा मिल गया।

कबीर साहब को धर्म्म प्रचार में जिन आपदाओं का सामना करना पड़ा उनको उनके अनुयायिनों ने बहुत रंजित करके लिखा है। यद्यपि उनका अधिकांश अस्वाभाविक है परंतु आप लोगों की अभिज्ञता के लिये मैं उन का दिग्दर्शन मात्र करूंगा।

कहा जाता है कि शाह सिकन्दर ने पहले उनको गंगा में और बाद को अग्नि में डलवा दिया किंतु वे दोनों स्थानों से जीवित निकल आए। इस के उपरांत उनके ऊपर मस्त हाथी छोड़ा गया, परंतु वे उसके सामने शार्दूल होकर प्रगट हुए, मस्त हाथी भागा, और उन का बाल भी बाँका न हुआ। कबीर साहब के एक शब्द में भी इस में की एक घटना का वर्णन है।

गंगा गुसाँइनि गहिर गभीर, जँजिर बाँध कर खरे कबीर।
मन न डिगै तन काहे को डेराइ, चरनकमल चित्त रह्यो समाई॥
गँग की लहर मेरी टूटी जँजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर।
कह कबीर कोउ संग न साथ, जल थल राखत हैं रघुनाथ॥

आदि ग्रंथ पृष्ठ ६२६

अंतिम काम

कबीर साहब की परलोक यात्रा के विषय में यह अतिः सिद्ध बात है कि उस समय वे काशी छोड़कर मगहर चले गए थे। मगहर गोरखपूर के ज़िले में एक छोटा सा ग्राम है, जिस में अब तक उनकी समाधि है। यहाँ वर्ष में एक बार साधारण मेला भी होता है। कबीर पंथ के अनुयायी कुछ मुसल्मान मिलते हैं तो यहीं मिलते हैं। कबीर साहब काशी छोड़ कर अंत समय क्यों मगहर चले आए, इस का उत्तर वे स्वयं अपने निम्नलिखित शब्दों में देते हैं—

लोगा तुम हीं मति के भोरा।
ज्यों पानी पानी में मिलिगो, त्यों दुरि मिल्यो कबीरा।
ज्यों मैथिल को सच्चा बास, त्योंहिं मरण होय मगहर पास॥
मगहर मरै मरण नहिं पावै, अंत मरै तो राम लजावै।
मगहर मरै सो गदहा होई, भल परतीत राम सों खोई।
क्या काशी क्या ऊसर मगहर, राम हृदय बस मोरा।
जो काशी तन तजै कबीरा रामै कौन निहोरा॥

कबीर बीजक शब्द १०३

ज्यों जल छोड़ि बाहर भयो मीना,
पुरुब जनम हौं तप का हीना।
अब कहु राम कवन गति मोरी,
तजिले बनारस मति भइ थोरी। --

सकल जनम शिवपुरी गँवाया,
मरति बार मगहर उठि धाया।
बहुत बरस तप कीया कासी,
मरन भया मगहर को बासी।
काशी मगहर सम बीचारी,
श्रोछी भगति कैसे उतरै पारी।
कह गुरु गज शिव सम को जानै,
मुश्रा कबीर रमत श्री रामै॥

आदि ग्रंथ पृष्ठ ९७७

जहाँ इन शब्दों में कबीर साहब की विचित्र धार्मिक दृढ़ता सूचित होती है, वहाँ दूसरे शब्द के कतिपय आदिम पदों से उनका दुखमय आंतरिक क्षोभ भी प्रगट होता है, और उनके संस्कार का भी पता चलता है। मनुष्य जब किसी गूढ़ कारण वश अपनी अत्यंत प्रिय आंतरिक वासनाओं की पूर्त्ति में असमर्थ होता है, तो जैसे पहले वह हृदयोद्वेग से विह्वल होकर पीछे दृढ़ता ग्रहण करता और चित्त को कोई अवलंबन दूँढ़कर बोध देता है, दूसरे शब्द में कबीर साहब के हृदय का भाव ठीक वैसा ही व्यंजित हुआ है। इससे क्या सूचित होता है?—यही कि कबीर साहब को किसी घोर धार्मिक विरोधवश काशी छोड़नी पड़ी थी। भक्ति-सुधा-बिंदु-स्वाद नामक ग्रंथ (पृष्ठ ८४०) के इस वाक्य को देखकर कि "श्री कबीर जी संवत १५४९ में मगहर गए, वहाँ से संवत १५५२ की अगहन सुदी

एकादशी को परमधाम पहुँचे" यह विचार और पुष्ट हो जाता है, क्योंकि यह वाक्य यह नहीं बतलाता कि मरने के केवल कुछ दिन पहले कबीर साहब मगहर में आए।

कबीर साहब मुसलमान के घर में पले थे, मुसलमान फ़क़ीरों से परस्पर व्यवहार रखते थे, इसलिये उनमें मुसलमानों की ममता होना स्वाभाविक है। वे एक हिंदू आचार्य्य के शिष्य थे, राम नाम के प्रचारक और उपदेशक थे, अतएव हिंदू यदि उन्हें अपना समझें तो आश्चर्य्य क्या? निदान यही कारण है कि उनका परलोक हो जाने पर रुधिरपात की संभावना हो गई, काशिराज बीरसिंह उनके शव को दग्ध और बिजली खां पठान समाधिस्थ करना चाहता था, अतएव तलवार चल ही गई थी कि एक समझ काम कर गई। शव की चद्दर उठाई गई तो उसके नीचे फूलों का ढेर छोड़ और कुछ न मिला, हिंदुओं ने इसमें से आधा लेकर जलाया और उसकी राख पर समाधि बनाई। यही काशी का कबीरपंथियों का प्रसिद्ध स्थान कबीरचौरा है। मुसलमानों ने दूसरा आधा लेकर वहीं मगहर में उसी पर क़ब्र बनाई, जो अब तक मौजूद है। कबीरपंथियों के ये दोनों पवित्र स्थान हैं।

कबीर कसौटी (पृष्ठ ५४) में लिखित मरने के समय के इस वाक्य से कि "कमल के फूल और दो चद्दर मँगवा कर लेट गए" फूल का रहस्य समझ में आता है। कबीर साहब ने जब शव के लिये तलवार चल जाने की संभावना देखी तो

उन्होंने ही अपने बुद्धिमान शिष्यों द्वारा दूरदर्शिता से ऐसी सुव्यवस्था की कि शरीरांत होने पर शव किसी को न मिला उसके स्थान पर लोगों ने फूलों का ढेर पाया, जिस से सब झगडा अपने आप मिट गया। गुरु नानक के शव के विषय में भी ठीक ऐसी ही घटना हुई बतलाई जाती है।

ग्रथावली

कबीर साहब ने स्वय स्वीकार किया है कि 'मसि कागद तो छुयो नहिं कलम गही नहिं हाथ। चारिहु युग माहात्म तेहि कहिकै जनायो नाथ'। इसलिये यह बात स्पष्ट है कि कबीर साहब ने न तो कोई पुस्तक लिखी, न उन्होंने कोई धर्म्म ग्रथ प्रस्तुत किया। कबीर सम्प्रदाय के जितने प्रामाणिक ग्रथ हैं, उन के विषय में कहा जाता है कि उन्हें कबीर साहब के पीछे उन के शिष्यों ने रचा। यह हो सकता है कि जिन शब्दों या भजनों में कबीर नाम आता है, वे कबीर साहब के रचे हुए हो, जो शिष्यों द्वारा पीछे ग्रथ स्वरूप में सगृहीत हुए हो, परतु यह बात सत्य ज्ञात होती है कि अधिकाश ग्रंथ कबीर साहब के पीछे उनके शिष्यो द्वारा ही रचे गए हैं। प्रोफेसर पी वी राय जो एक क्रिश्चियन विद्वान हैं, अपने 'सम्प्रदाय' नामक उर्दू ग्रथ के पृष्ठ ६३ में लिखते हैं—

"जहाँ तक मालूम होता है कबीर ने अपनी तालीमी बातों को कलम बद नहीं किया उसके बाद उस के चेलों ने बहुत सी किताबें तसनीफ कीं, यह किताबें अक्सर गुरूगू की

सूरत में और हिंदी नज़म में लिखी गई। काशी के कबीर चौरे में इस संप्रदाय की मशहूर और पाक किताबों का मजमूआ पाया जाता है, जिसे कबीरपंथी लोग "खास ग्रंथ" कहते हैं"। प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् बाबू अक्षयकुमार दत्त भी अपने 'भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय, नामक बँगला ग्रंथ (प्रथम भाग पृष्ठ ४६) में यही बात कहते हैं।

"ए संप्रदायेर प्रामाणिक ग्रंथ समुदाय कबीरे शिष्य दिगेर आर ताहार उत्तर कालवर्त्ती गुरु दिगेर रचित बलिया प्रसिद्ध आछे"

श्रीमान वेसकट कहते हैं—"ज्ञात यह होता है कि कबीर की शिक्षाएँ मौखिक थीं, और वे उनके पीछे लिखी गई। सब से पुराने ग्रंथ जिन में उनकी शिक्षाएँ लिखी गईं, बीजक और आदि ग्रंथ हैं। यह भी संभव है कि इन में से कोई पुस्तक कबीर के मरने से पचास वर्ष पीछे तक न लिखी गई हो। यह विचारना कठिन है कि वे ठीक उन्हीं शब्दों में लिखी गई हैं, जो कि गुरु के मुख से निकले हैं। और यह बात तो और कठिनता से मानी जा सकती है कि उन में और शब्द नहीं मिला दिए गए हैं।"

कबीर ऐंड दी कबीर पंथ पृष्ठ ४६

'खास ग्रंथ, में निम्न लिखित इक्कीस छोटी बड़ी पुस्तकें हैं।

१—सुखनिधान—इस ग्रंथ के रचयिता 'श्रुतगोपाल दास, हैं। कबीर पंथ की द्वादश शाखा में से कबीर चौरा स्थान की

शाखा के ये प्रवर्त्तक हैं। सुखनिधान समस्त ग्रंथों का कुंचिका स्वरूप, बोध सुलभ और सुप्रसन्न शब्दों में लिखित है। पठदशा की चरमावस्था प्राप्त हुए बिना किसी को इस ग्रंथ के पढ़ने की व्यवस्था नहीं दी जाती। इस ग्रंथ में ८ अध्याय हैं, और धर्म्म दास और कबीर साहब के प्रश्नोत्तर रूप में ब्रह्म, जीव, माया, इत्यादि धार्मिक विषयों का इस में निरूपण है।

२—गोरखनाथ की गोष्ठी—इस ग्रंथ में महात्मा गोरखनाथ के साथ कबीर साहब का धार्मिक वार्तालाप है।

३—कबीर पाजी, ४—बलख की रमैनी, ५—आनंद राम सागर—ये साधारण ग्रंथ हैं। इन के विषय में कहीं कुछ विशेष लिखा नहीं मिला।

६—रामानंद की गोष्ठी—इस ग्रंथ में स्वामी रामानंद के साथ कबीर साहब का धार्मिक वार्तालाप है।

७—शब्दावली—इस में एक सहस्र धार्मिक शब्द हैं किंतु वे क्रमबद्ध नहीं हैं। इस में छोटी छोटी धार्मिक शिक्षाएँ हैं।

८—मंगल—इस में एक सौ छोटी छोटी कविताएँ हैं।

९—बसंत—इस में बसंत राग के एक सौ धर्म्म संगीत हैं।

१०—होली—इस में दो सौ होली के गीत हैं।

११—रेखता—इस में एक शत रेखते हैं किंतु इन में छंदोभंग बहुत है।

१२—झूलन—इस में अनेक धार्मिक विषयों पर पाँच सौ गीत हैं।

१३—कहरा—इस में कहरा चाल के पांच सा भजन हैं।

१४—हिंदोल—इस में नाना प्रकार के द्वादश भजन ह, जिनमें नैतिक और धार्मिक शिक्षाएँ ह।

१५—बारहमासा—इस में बारह महीना पर धार्मिक सगीत हैं।

१६—चाचर—इस में चाचर चाल के गीतो में नाना प्रकार के भजन और शब्द हैं।

१७—चौंतीसी—इस में हिंदी भाषा के तेंतीस व्यजनों और चोतीसवें ऊकार में स एक एक को प्रत्येक पद्य के आदि में रखकर धार्मिक कविता की गई है, कुल ३४ पद्य ह।

१८—अलिफनामा—इस में फारसी अक्षरों की धार्मिक व्याख्या है।

१९—रमैनी—इस में कबीरपथ के सिद्धांतों का शब्दों में विस्तृत वर्णन है। स्वधर्म्म प्रतिपादन और परधर्म्म खडन पथ के सिद्धांतानुसार किया गया है। कूट शब्द भी इस में पाए जाते हैं।

२०—साखी—इस में पांच सहस्र दोहे हैं, जो साखी नाम से पथ में पुकारे जाते हैं। इन दोहों में अनेक प्रकार की नीति

और धर्म्म शिक्षाएं हैं। चौरासी अंग की साखी इसी के अंतर्गत है। इस ग्रंथ की कतिपय साखियां बड़ी ही सुंदर हैं।

११—बीजक—इस ग्रंथ में ६५४ अध्याय हैं। इस को कबीर पंथी लोग बहुत मानते हैं। बीजक दो हैं, पर उन दोनों में बहुत अंतर नहीं है। कबीरपंथी कहते हैं कि इन में जो बड़ा बीजक है, उसे स्वयं कबीर साहब ने काशिराज से कहा था। दूसरे बीजक को भग्गू दास नामक कबीर के एक शिष्य ने संग्रह किया है। यह दूसरा बीजक ही अधिक प्रचलित है। इस में स्वमत-प्रतिपादन की अपेक्षा अपर धर्म्मों पर आक्रमण और आक्षेप ही अधिक है। यह भग्गू दास भी कबीरपंथ की द्वादश शाखाओं में से एक शाखा का प्रवर्त्तक है। इसके परंपरागत शिष्य धनौती नामक ग्राम में रहते हैं।

श्रीमान् वेसकट कहते हैं—"बीजक कबीर साहब की शिक्षा का प्रामाणिक ग्रंथ मान लिया गया है, यह संभवतः १५५० ई० में या सिक्खों के पांचवें 'गुरु अर्जुन' द्वारा नानक की शिक्षा आदि-ग्रंथ में लिखे जाने के बीस वर्ष पहले लिखा गया था। बहुत से वचन जो आदि ग्रंथ में कबीर के कथित माने जाते हैं, बीजक में भी पाए जाते हैं।" क. ऐ. क. पृष्ठ. ७२

इस दूसरे बीजक की कई छपी आवृत्तियां हैं, उन में से दो जो अधिक प्रसिद्ध हैं, सटीक हैं। एक के टीकाकार रीवाँ के महाराजा विश्वनाथ सिंह और दूसरे के नागझारी जिला बुरहानपूर निवासी कबीरपंथी साधू पूरनदास हैं जो सन्

१८५० ई० में जीवित थे। बैपृस्ट मिशन मुंगेर के रेवरेंड प्रेमचद ने भी इसकी एक आवृत्ति कलकत्ते में सन् १८८० ई० में छपाई थी। इन ग्रथों के अतिरिक्त आगम और वानी इत्यादि भिन भिन्न नामों की कुछ और स्फुट कविताएँ पाई जाती हैं।

श्रीमान् वेसकट ने अपने ग्रथ में कबीर पंथ के ८२ ग्रथों के नाम लिखे हैं। इन ग्रथों में कबीरकसौटी और कबीरमनशूर आदि आधुनिक ग्रथों के भी नाम हैं, जिनका रचना काल अर्द्ध शताब्दी से कम है। इसके अतिरिक्त उन्होंने तीन सटीक बीजकों को भी पृथक् पृथक् गिना है, चौरासी अग की साखी जो एक ग्रथ है, उसके सतसग का अग, समदरसी का अग, आदि बारह अग की साखियो को अलग अलग लिखकर उनको बारह पुस्तकें माना है, इसी से उनकी नामावली लबी हो गई है। उस में मूसाबोध, महम्मदबोध, हनुमानबोध आदि कतिपय ऐसे ग्रथों के नाम हैं, कि जो सर्वथा कल्पित ह, क्योंकि उक्त महोदयों और कबीर साहब के समय में कितना अतर है, यह विद्वानों को अविदित नहीं है। उन्होंने अमरमूल आदि दो एक प्राचीन ग्रथों का नाम भी अपनी सूची में लिखा है, और सुखनिधान आदि कई ऐसे ग्रथों के नाम भी लिखे ह जो उक्त २१ ग्रथों के अंतर्गत हैं।

प्रोफेसर एच एच विलसन ने अपने 'रिलिजन आफ दी हिंदूज' नामक ग्रथ के प्रथम खड पृष्ठ ७६ ७७ में कबीर

साहब के निम्न लिखित ग्रंथों के ही नाम लिखे हैं। यह कहना कि ये ग्रंथ उक्त २१ ग्रंथों के ही अंत पाती हैं जाहुल्य मात्र है।

१—आनंद रामसागर, २-बलख की रमैनी, ३-चाँचर ४-हिंडोला, ५-भूलना, ६-कबीरपाँजी, ७-कहरा, ८-शब्दावली।

प्रशस्ति महाराज रीवा ने अपनी टीका में कबीर साहब विरचित निम्नलिखित ग्रंथों के नाम लिखे हैं, और इन में से प्राय शब्द और साखियों को उधृत करके प्रमाण दिया है, किंतु ज्ञात होता है कि इन ग्रंथों की गणना ' खास ग्रंथ " में नहीं हैं, क्योंकि ये उनके अतिरिक्त हैं।

१—निर्णय ज्ञान, २-भेद सार, ३-आदि टकसार, ४-ज्ञान सागर, ५-मंत्रतरण।

मुझे कबीर साहब के मौलिक ग्रंथों में से केवल दो ग्रंथ मिले, एक बीजक और दूसरा चौरासी अंग की साखी। इनके अतिरिक्त बेलवेडियर प्रेस की छपी कबीर शब्दावली चार भाग, ज्ञानगुदड़ी व रेखते, और साखी संग्रह नाम की पुस्तकें भी हस्तगत हुईं। बेलवेडियर प्रेस के स्वामी 'राधास्वामी मत' के हैं। इस मतवाले कबीर साहब को अपना आदि आचार्य्य मानते हैं, इसलिये इस प्रेस की छपी पुस्तकों के बहुत कुछ प्रामाणिक होने की आशा है, उन्होंने भूमिका में इस बात को प्रगट भी किया है। गुरु नानक संप्रदाय के 'आदि ग्रंथ' में भी कबीर साहब के बहुत से शब्द और साखियां संगृहीत हैं, मैं ने उक्त दो मौलिक और

इन्हीं सब संगहीत ग्रंथों के आधार पर अपना संग्रह प्रस्तुत किया है।

इन ग्रंथों की अधिकांश कविता साधारण है, सरस पद्य कहीं कहीं मिलते हैं, हां, जहाँ कबीर साहब पूरबी बोल चाल और चलते गीतों में अपना विचार प्रगट करते हैं, वहाँ की कविता निस्संदेह अधिक सरस है, किंतु छन्दोभंग इन सब में इतना अधिक है कि जी ऊब जाता है। जहाँ तहाँ कविता में अश्लीलता भी है, कोई कोई कविता तो इतनी अश्लील है कि मैं उन्हें यहाँ उठा तक नहीं सकता। यदि आप लोग ऐसी कविताएँ देखना चाहें तो साखीसंग्रह के पृष्ठ १४८ का छठा, पृष्ठ १७५ का २६, २७ २८ और पृष्ठ १८२ का अंतिम दोहा नमूने के लिये देखिए। उनकी कविता में असंयत भाषिता भी दृष्टिगत होती है। वे कहते हैं—

बोली एक अमोल है जो कोई बोलै जानि।
हिये तराजू तौलि कै तब मुख बाहर आनि।

कबीर बीजक पृष्ठ. ६२३

साधु भया तो क्या भया जो नहिं बोल विचार।
हतै पराई आतमा लिये जीभ तलवार॥

कबीर बीजक पृष्ठ ६३१

साधु लच्छन सुगुन वंत गंभीर है वचन लौलीन भाखा सुनावै।
फूहरी पातरी अधम का काम है राँड़ का रोवना भाँड़ गावै॥

ज्ञानगुदड़ी पृष्ठ ३२

किंतु खेद है कि जब वे विरोध करने पर उतारू होते हैं तब इन बातों को भूल जाते हैं। यह दोष उनकी कविता में प्राय मिलता है, नमूने के लिये साखी संग्रह पृष्ठ १८७ का दोहा १६, २० और ज्ञानगुदडी तथा रेखते नामक ग्रंथ का रेखता ६० देखिए। मैं ने इस प्रकार की कविताओं से अपने सग्रह को बचाया है, और जहां शब्दों के हेर फेर या ह्रस्व दीर्घ करने से काम चल गया, वहां छंदोभग भी नहीं रहने दिया है।

कबीर साहब के ग्रंथों का आदर कविता दृष्टि से नहीं विचार दृष्टि से है। उन्होंने अपने विचार दृढ़ता और कट्टरपन के साथ प्रगट किए हैं, उनमें स्वाधीनता की मात्रा भी अधिक झलकती है।

इन ग्रंथों में बहुत से कूट शब्द भी हैं। कबीर साहब का उलटा प्रसिद्ध है, चूहा बिल्ली को खा गया, लहर में समुद्र डूब गया। प्राय ऐसी उलटी बातें आपको इन्हीं शब्दों में मिलेंगी। इन शब्दों का लोगों ने मनमाना अर्थ किया है। ऐसे शब्दों का दूसरा अर्थ हो ही क्या सकता है, प्राय लोगों को आश्चर्य्य में डालने के लिये ही ऐसे शब्दों की रचना होती है। मैं समझता हूं कि कबीर साहब का भी यही उद्देश्य था। उन्होंने ऐसे शब्द बनाकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है, क्योंकि धर्म्म का गूढ़ रहस्य जानने के लिये ससार उत्सुक है। ऐसे दो शब्द नीचे लिखे जाते हैं।

देखे लोगो हरि की सगाई, माय धरै पुत धिय सग जाई।
सासु ननद मिल अदल चलाई, मा दरिया गृह बेटी जाई।
हम बहनोई राम मारे सारा, हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा।
कहैं कबीर हरी के बूता, राम रमे ते कुकुरी के पूता।

कबीर बीजक पृष्ठ ३६३

देखि देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझे बिरला कोई।
धरती उलटि अकासहिं जाई, चींटी के मुख हस्ति समाई।
बिन पवनै जहँ पर्वत उड़ै, जीव जतु सब बिरछा बुड़ै।
सूखे सरवर उठे हिलोल, बिन जल चकवा करै कलोल।
बैठा पडित पढ़े पुरान, बिन देखे का करै बखान।
कह कबीर जो पद को जान, सोई सत सदा परमान।

कबीर बीजक पृष्ठ ३६४

विद्वान् मिश्रवधुओं ने 'मिश्रवधुविनोद,' प्रथम भाग में कबीर साहेब के ग्रंथों और उनकी रचना के विषय में जो कुछ लिखा है, वह नीचे अविकल उद्धृत किया जाता है—

"इस समय तक भाषा और भी परिपक्व हो गई थी। महात्मा कबीरदास ने उसका बहुत बडा उपकार किया। इन्होंने कोई पचास ग्रथ बनाए जिनमें से ४६ का पता लग चुका है। पृष्ठ १९३

"कविता की दृष्टि से इनकी उलटबाँसी बहुत प्रशसनीय है। इनकी रचना सेनापति श्रेणी की है। इन्होंने खरी बातें बहुत उत्तम और साफ़ साफ़ कही हैं और इनकी कविता में हर

जगह सच्चाई की झलक देख पडती है। इनके ऐसे बेधड़क कहनेवाले कवि बहुत कम देखने में आते हैं। कबीर जी का अनुभव खूब बढ़ा चढ़ा था और इनकी दृष्टि अत्यंत पैनी थी। कहीं कहीं इनकी भाषा में कुछ गँवारूपन आ जाता है पर उस में उद्दंडता की मात्रा अधिक होती है।

"इनके कथन देखने में तो साधारण समझ पड़ते हैं, परंतु उनमें गूढ़ आशय छिपे रहते हैं। इन्होंने रूपकों, दृष्टांतों, उत्प्रेक्षाओं आदि से धर्म्म संबंधी ऊँचे विचारों एवं सिद्धांतों को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है।"

पृष्ठ २५२, २५३

कबीर पंथ

इस पंथवाले युक्त प्रांत और मध्य हिंद में अपनी संख्या के विचार से अधिक हैं। पंजाब, विहार और दक्षिण प्रांत में भी, कहीं कहीं ये लोग पाए जाते हैं। यद्यपि इनकी संख्या अन्य भारतवर्षीय संप्रदायों की अपेक्षा बहुत थोडी है, तथापि इनमें निम्नलिखित द्वादश शाखाएँ हैं॥

१—श्रुत गोपालदास—इनके परंपरागत शिष्य काशी की कबीरचौरा, मगहर की समाधि और जगन्नाथ एवं द्वारका के मठों पर अधिकार रखते हैं। यह शाखा अपर शाखाओं की अपेक्षा प्रतिष्ठित मानी जाती है। दूसरी शाखावाले इसको प्रधान मानते हैं॥

२--भगूदास--इनके परंपरागत शिष्य धनौती नामक गाँव में रहते हैं।

३-नारायणदास-४-चूडामणिदास ये दोनों धर्म्मदास नामक एक बनिए के बेटे थे जो कबीर साहब के एक प्रधान शिष्य थे। धर्म्मदास जबलपुर के पास बधो नामक एक गाँव में रहते थे। बहुत दिनों तक उसके वंश के लोग यहा के मठ के महंत होते रहे। परन्तु नारायणदास के वंश में अब कोई न रहा, इधर चूडामणि-वंश के एक महंत ने एक कुचरित्रा स्त्री रख ली, इसलिये यह वंश भी अब गद्दी से उतार दिया गया। *

---

* कबीर पंथ की द्वादश शाखाओं के विषय में यहां जो कुछ लिखा गया है, वह बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान बाबू अक्षयकुमारदत्त के ग्रंथ भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय (देखो इस ग्रंथ के प्रथम भाग का पृष्ठ ६४ ६५, ६६) और प्रोफ़ेसर बी. बी राय के ग्रंथ 'संप्रदाय (देखो पृष्ठ ७४ ७५ ७६) के आधार पर लिखा गया है। इन शाखाओं के विषय में मुझको एक लेख कबीर धर्म्म नगर ज़िला रायपुर मध्य हिंद निवासी कबीरपंथी साधु युगलानन्द बिहारी का मिला है, उसको भी मैं नीचे अविकल उद्धृत करता हूं—

"मध्यप्रदेश बिहार युक्तप्रांत गुजरात और काठियावाड में कबीरपंथियों की संख्या विशेष है हां पंजाब महाराष्ट्र, मैसूर मदरास में इत्यादि प्रांतों में ये लोग थोड़े पाए जाते हैं

इसमें अनेक शाखाएं वर्त्तमान हैं, जिनमें धर्म्मदास के पुत्रों में से—

१—वचन चूडामणि के वंशज की शाखा ही प्रधान है। इस समय इनका मुख्य स्थान कबीरधर्म्म नगर ज़िला रायपुर सी पी में है। धर्म्म-दास और कबीर के प्रश्नोत्तर में लिखे हुए ग्रंथों में कालीश्वरी के नाम

५—जग्गूदास—कटक में इनकी गद्दी है और इनके शिष्य उसी ओर हैं। *

६—जीवनदास—इन्होंने सत्तनामी संप्रदाय स्थापन किया। कोटवा जिला गोंडा में इनका स्थान है। इस स्थान के अधिकार में सात आठ और गद्दियां हैं।

जिस प्रकार लिखे हैं, उन्हीं नामों से अब तक इस शाखा का क्रम बराबर चला आता है। इस समय इस शाखा के तेरहवें आचार्य्य प० श्री दयानाम साहब गद्दी पर वर्तमान हैं।

इस शाखा में पूर्व निर्मित नियम के अनुसार आचार्य्य के ज्येष्ठ पुत्र के अतिरिक्त कोई दूसरा आचार्य्य पद नहीं पा सकता, इसलिये इसमें एक ही आचार्य्य के अधीन सब का रहना पड़ता है। कबीरपंथियों में इस समय इसी शाखा की प्रधानता है। इसके बराबर उन्नत (इस समय) कोई दूसरी शाखा नहीं है।

"२—नारायणदास—धर्मदास के बड़े पुत्र थे, जो गुरु की अवज्ञा करने से पिता के त्याज्य हुए थे तथापि उनका भी पंथ चलता है। प्रथम ये लोग बांधवगढ़ में रहते थे किंतु वचन चूड़ामणि के वंशजों के समान विशेष नियम नहीं होने से उनमें कई आचार्य्य हो गए। इस शाखा के लोग परस्पर के विरोध के कारण बांधवगढ़ छोड़कर भिन्न भिन्न स्थानों में रह कर गुरुआई करते हैं।'

"३—जागू पंथी-इनकी गद्दी बिहार प्रांत के मुज़फ्फ़रपुर जिले के सबडिवीजन हाजीपूर के निकट बिद्दूपुर नामक ग्राम में है। इस पंथ में यही स्थान प्रधान माना जाता है। यह बी एन डबलू रलवे का एक स्टेशन है।

"४—सत्यनामी पंथ-इस नाम के तीन पंथ चलते हैं। १-कोटवा (अवध में) २-फ़र्रुखाबाद में ये लोग साधु के नाम से प्रसिद्ध हैं। ३-मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ में भदारा नामक स्थान में, इसमें प्राय: चमार ही होते हैं।

७—कमाल—बंबई नगर में ये रहते थे। इनके चेले योगी होते हैं, जनश्रुति है कि कमाल कबीर के पुत्र थे। कबीर साहब का निम्नलिखित दोहा स्वयं इसका प्रमाण है।

बूडा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छाड के घर ले आया माल।

आदिग्रंथ पृष्ठ ७३८

८—टाकशाली—यह बडौदा के निवासी थे और वहीं इनका मठ है।

९—ज्ञानी—यह सहसराम के निकटवर्ती मझनी ग्राम में रहते थे। इसीके आस पास उनकी कुछ शिष्य मंडली है।

१०—साहेबदास—ये कटक में रहते थे। इनके चेले और और कबीरपंथियों की अपेक्षा कुछ निराली शिक्षा और विलक्षणता रखते हैं, इसलिये मूल पंथी कहलाते हैं।

११—नित्यानंद १२—कमलानंद—ये दोनों दक्षिण में जा बसे, और उधर ही इन्होंने अपनी शिक्षा का प्रचार किया।

इनके अतिरिक्त हंसकबीर, दानकबीर और मंगलकबीर नामक कबीरपंथियों का और कतिपय शाखाएँ हैं।

१९०१ की जनसंख्या (मर्दुमशुमारी) की रपोर्ट में कबीर पंथियों की संख्या ८४३१७१ लिखी गई है। मैं समझता हूँ कुछ न्यूनाधिक यही संख्या ठीक है। इनमें अधिकांश नीच जाति के हिंदू हैं, उच्चवंश के हिंदू नाममात्र हैं। गुरु भी इस पंथ के अधिकांश नीच वर्ण के ही हैं—त्यागी और गृहस्थ इन

में भी हैं। गृहस्थों की ही सख्या अधिक है, ये सब हिंदू धर्म्म के ही शासन में हैं, और उसी रीति और पद्धति को बर्त्तते हैं, केवल धार्मिक सिद्धातों में कबीरपथ का अनुसरण करते हैं, यहाँ तक कि अनेक ऐसे हैं जो हिंदू देवी देवताओं तक को पूजते हैं। त्यागी निस्सन्देह अपने को हिंदू धर्म्म के सिद्धांतों से अलग थलग रखते हैं, और वे हिंदू धर्म्म के क्रिया कलाप में नहीं फँसना चाहते, किंतु यत उनका यह सस्कार बना है कि वे हिंदू हैं, इसलिये व अनेक अवसरों पर हिंदू क्रिया कलाप में फँसे भी दृष्टिगत होते हैं। परतु यह सत्य है कि कबीरपथी साधु हिंदू समाज से एक प्रकार पृथक से रहते हैं, उस में उनकी यथेष्ट प्रतिपत्ति नहीं। इनका अपर हिंदू धर्म्म सम्प्रदायों से कुछ वैमनस्य और द्वेष सा रहता है।

धर्म्मसकट

कबीर साहब का धर्म्म सिद्धात क्या था, मैं समझता हूँ यह अभ्रात रीति से नहीं बतलाया जा सकता। मैं इसकी मीमासा के लिये तत्पर होकर धर्म्मसकट में पड गया हूँ। उनके सिद्धातो के जानने के साधन उनकी शब्दावली और साखियां हैं, परन्तु वे हम लोगों तक वास्तविक रूप नहीं पहुँची। यह बतलाना भी कठिन है कि कौन शब्द उनका रचा है कौन नहीं। श्रीमान् वेसकट का निम्नलिखित वाक्य जिसे मैं ऊपर लिख आया हूँ, आप लोग न भूले होगे।

"यह विचारना कठिन है कि वे ठीक उन्हीं शब्दों में

लिखी गई हैं जो कि गुरु के मुख से निकले हैं। और यह बात तो और कठिनता से मानी जा सकती है कि उनमें और शब्द नहीं मिला दिए गए हैं।

एक दूसरे स्थान पर वे कहते हैं—

"कम से कम यह बात मानने के लिये हमको कोई स्वत्व नहीं है कि कबीर की शिक्षा वही शिक्षा है कि जिसको कबीरपंथ के महंत आज कल देते हैं।

कबीर ऐंड दी कबीर पंथ पृष्ठ ४६

इन वाक्यों से क्या सिद्ध होता है? यही कि उनकी रचनाओं में बहुत कुछ काट छांट हुई है, और अब तक हो रही है। जो बीजक ग्रंथ आज कल अधिकता से प्रचलित है, और जो कबीरपंथ का सब से प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है, वह भागूदास का प्रस्तुत किया हुआ है। इस भागूदास के विषय में रीवां नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह लिखते हैं—

"भागूदास बीजक लै भागे हैं, सो बघेलवंश विस्तार में कबीर ही जी कहि दियो है,—

भागूदास कि खबरि जनाई। लै चरणामृत साधु पियाई॥
कोउ आध कह कालि जरि गयऊ। बीजक ग्रंथ चोराय लै गयऊ॥
सतगुरु कह वह निगुरा पंथी। काह भयो लै बीजक ग्रंथी॥
चोरी करि वह चोर कहाई। काह भयो बड़ भक्त कहाई॥"

कबीर बीजक पृष्ठ २६

जिस भागूदास की यह व्यवस्था है, उसके हाथ में पड़कर

बीजक की क्या दशा हुई होगी, इसे ईश्वर ही जाने। आगे चल कर महाराज ने लिखा है कि इसका वास्तव में नाम तो भगवानदास था, पर इस प्रकार पुस्तक लेकर भागने से ही कबीर साहब ने उसका नाम भागूदास रक्खा। इन बातों से बीजक की प्रामाणिकता में कितना सदेह होता है, इस बात का उल्लेख व्यर्थ है।

प्राय कबीरपंथियों से सुना जाता है, कि कबीर साहब के ग्र थों में जो वेद शास्त्र अथवा अवतारों के विरुद्ध बातें पाई जाती हैं, या असयत भाव से खडन और आक्षेप देखा जाता है, वास्तव में वह उनके किसी शिष्य की ही करतूत है। जो हो, परतु भागूदास की कथा इस विचार को दृढ़ करती है। कबीर साहब की परलोकयात्रा के पश्चात् ग्रथों के सगृहीत होने से इस प्रकार का अवसर हाथ आना असभव नहीं। यहां यह सदेह होता है कि जब कबीर साहब के समय में ग्रथ सगृहीत हुए ही नहीं थे, तो भागूदास किस ग्रथ को ले भगे। परतु सोचने की बात है कि यदि कुछ शब्द पहले सगृहित न होते, तो ग्रंथ प्रस्तुत कैसे होते। ज्ञात यह होता है कि नाना कागज के टुकडो पर अथवा अस्टव्यस्त अवस्था में जो लेख इत्यादि थे, उन्हीं को लेकर भागूदास भागे।

एक कबीरपंथी सत की गुरुभक्ति आपने सुनी, अब एक पूरनदास नामक साधु की लीला देखिए। आपने कबीर बीजक पर टीका लिखी है। इस टीका में आपने

कबीर साहब के इस वाक्य को कि 'मन मुरीद संसार है गुरु मुरीद कोइ साध' सिद्ध कर दिया है। श्रीमान् वेसकट कहते हैं कि "यह बात कि कबीर जोलाहा और एकेश्वर वादी थे, अबुल फ़ज़ल ने भी मानी है, कि जिसके प्रतिकूल किसी ने कुछ नहीं कहा"* परंतु कदाचित उन्हें यह ज्ञात नहीं हुआ कि उन्होंने पूरनदास ने प्रतिकूल कहा है। आपने बीजक की टीका लिख कर और उसके शब्दों का मनमाना अर्थ कर के यह प्रतिपादित कर दिया है, कि कबीर साहब एकेश्वर वादी नहीं किंतु कुछ और थे। कुछ प्रमाण लीजिए।

" साखी—अमृत केरी मोटरी सिर से धरी उतार।
जाहि कहौं मैं एक है सो मोहि कहै दुइ चार ॥१२२॥

टीका गुरुमुख—इस संसार ने विचार की मोटरी सिर से उतार धरी, कोई विचार करता नहीं, जाको मैं कहता हूँ कि एक जीव सत्य है, और सब मिथ्या भ्रम है, सो मेरे को दुइ चार कहता है—एक ईश्वर एक जीव दो, ब्रह्मा, विष्णु महेश, और देवी देवता ये बताते हैं," सटीक बीजक पूरन-दास पृष्ठ ५८४।

" साखी—पांच तत्व का पूतरा युक्ति रची मैं कीव।
मैं तोहि पूछों पंडिता शब्द बड़ा की जीव ॥ २२॥

टीका मायामुख—पाँच तत्व का पुतरा युक्ति से रचि

* देखो कबीर ऐंदडी कबीर पंथ का पृष्ठ ३८

के मैंने पैदा किया, जीव पुतले मैंने पैदा किए, इस प्रकार वेद में माया ने कहा, सोई सब पंडित लोग भी कहते हैं।

गुरुमुख—ताते गुरु पूछते हैं कि हे पंडित तुम ने वेद का शब्द माना, और कहने लगे कि ब्रह्म बड़ा कि ईश्वर बड़ा जाने सब संसार पैदा किया, परंतु अपने हृदय में विचार के देखो कि शब्द बड़ा कि जीव। अरे जो जीव न होता तो वेद, आदिक नाना शब्द कौन पैदा करता और ब्रह्म ईश्वरादि अध्यारोप कोन करता, ताते जीव ही सब ते बड़ा, जाने सब ही को थापा। शब्द, ब्रह्म, आदि उपाधि सब मिथ्या, जीव की करतूत, जीव सबका करनेवाला आदि॥" सटीक बीजक पूरनदास पृष्ठ ४२४।

जिस राम शब्द के विषय में श्रीमान वेसकट कबीर साहब की यह अनुमति प्रगट करते हैं—

"कबीर साहब का विचार है कि दो अक्षर का शब्द राम, इस संसार में उस एक अनिर्वचनीय सत्य का सब से अधिक निकटवर्त्ती है"

कबीर ऍड दी कबीर पंथ पृ. ७१

उसके विषय में पूरनदास की कल्पना सुनिए।

काला सर्प सरीर में खाइनि सब जग झारि।

बिरले ते जन बाँचिहैं रामहिं भजै विचारि॥ १०१॥

इस साखी के 'रामहिं भजै विचारि, का अर्थ उन्होंने यह किया है—' इस जगत में जा को विचाररूपी अमृत प्राप्त

भया, ते सर्प के जहर से बचे। मक राम ऐसा जो वेद ने अन्वय किया था, सो उससे बचे, भाग के न्यारे हुए।"—सटीक बीजक पूरनदास पृष्ठ ४६८। भजे के अर्थ वास्तविक स्मरण करने या गुणानुवाद गाने के स्थान पर उन्होंने भाजना अर्थात् भागना किया है। काशी छोड़कर मगहर जाने का जो प्रसिद्ध और ऐतिहासिक शब्द कबीर साहब का है, जरा उसके कतिपय शब्दों का अर्थ देखिए। 'ज्योंहि मरन होय मगहर पास" इसका अर्थ सुनिए "मग कहिये रास्ता, हर कहिये ज्ञान, सो मगहर ज्ञानमार्गता में मरन होय लौलीन होय" (पृष्ठ २३५)। "अतै मरै तो राम लजावै" का अर्थ वे यों करते हैं-जहां से जीव का स्फुरण हुआ सो अधिष्ठान छोड़ के अतै जो नाना प्रकार की स्वर्ग भोगादि वासना अथवा जगत आदि मोहवासना में जो मरा सो बंधन में परा। राम कहिए जीव और लज्या कहिए बंधन (पृ २३५)। निदान इसी प्रकार उन्होंने समस्त ग्रंथ का अर्थ उलट दिया है। इस प्रसिद्ध गुरुमुख शब्द को उन्होंने मायामुख बना दिया है, अर्थात् गुरू की कही हुई बात का माया का कहा हुआ बतलाया है। यों ही शब्द के चार चरण में से कहीं यदि एक चरण को मायामुख बनाया है, तो दूसरे को गुरुमुख, कहीं तीसरे को मायामुख और चौथे को गुरुमुख। कहीं पूरा शब्द गुरुमुख, कहीं आधा, कहीं तिहाई। कहीं पूरा शब्द मायामुख, कहीं चौथाई, कहीं केवल एक चरण।

मायामुक्त और गुरुमुख ही नहीं जीवमुक्त आदि की कल्पना भी शब्दों में की गई है। उन्हें वाच्यार्थ से, कवि के भाव से, अन्वय से, शब्दों के उचितार्थ से कुछ प्रयोजन नहीं, वे किसी न किसी प्रकार प्रत्येक शब्द और साखी को अपने विचार के अनुकूल कर लेते हैं कबीर साहब के लक्ष्य की कुछ परवाह नहीं करते। जहां इस प्रकार खेंचातानी है, वहां कबीर साहब के सिद्धांत का ज्ञान दुरूह क्या न होगा?

बेलवेडियर प्रेस में मुद्रित ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते नाम की पुस्तक की भूमिका के प्रथम पृष्ठ में लिखा गया है—

"पर कितने ही पद पुराने प्रामाणिक हस्तलिखित ग्रंथों में ऐसे भी हैं जिनमें राम नाम की महिमा गाई गई है। इस नाम का मतलब श्रीतास्वरूप श्रीरामचंद्रजी से नहीं है बल्कि ब्रह्मांड की चोटी (शून्य) के धुन्यात्मक शब्द रां से है"। श्रीमान् वेसकट भी यही लिखते हैं—

"ऐसे वाक्यों के राम शब्द से कबीर का अभिप्राय परब्रह्म से है, न कि विष्णु के अवतार से। क्योंकि वे बीजक में लिखते हैं, कि सत्य गुरु ने कभी दशरथ के घर में जन्म नहीं लिया।"*

ऐसा विचार होने पर भी हम देखते हैं कि कबीर साहब के शब्दों में से पौराणिक नामों के निकालने की चेष्टा प्रथम से ही होती आई है, और अब भी हो रही है, कुछ प्रमाण भी लीजिए—

* देखो कबीर एंड दी कबीर पंथ का पृष्ठ ४

गुरु नानक साहब का आदि-ग्रंथ साढ़े तीन सो वर्ष का प्राचीन है। यह ग्रंथ रामावतों का नहीं है कि उसमें साग्रह राम शब्द रखने की चेष्टा की गई है, वरन वाह गुरू जाप करनेवालों का है। वह प्रामाणिक कितना है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। उसमें कबीर साहब के निम्नलिखित दोहों में राम शब्द पाया जाता है—

कबिर कसौटी राम की झूठा टिकै न कोय।
राम कसौटी सो सहै जो मर जीवा होय॥ पृ० ७३५
सुपनेहुं बरड़ाइ कै जेहि मुख निकसै राम।
वाके पग की पानही मेरे तन को चाम॥ पृ० ७३६
कबीर कूकर राम को मोतिया मेरा नाउँ।
गले हमारे जेंवरी जहँ खींचैं तहँ जाउँ॥ पृ० ७३७

बेलवेडियर प्रेस में छपी 'साखीसग्रह, नामक पुस्तक में इन दोहों में राम के स्थान पर 'नाम' पाया जाता है (देखो पृष्ठ २१ का १२, व ८६ का ३३, व १२८ का १० दोहा)। ऐसे ही उक्त प्रेस की छपी पुस्तकों में प्रायः हरि के स्थानपर गुरु, राजाराम के स्थानपर 'परमपुरुष' इत्यादि नाम पाए जाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि यह उक्त प्रेस के स्वामी का काम है। संभव है कि जिस प्रति से उन्होंने अपना सग्रह छापा है, उसी में ऐसा पाठ हो, परंतु ऐसी चेष्टा होती आई है, यही मेरा कथन है। उक्त दोहों में राम शब्द से जो भाव और वाच्यार्थ की सार्थकता एवं सुंदरता है, वह नाम शब्द से नहीं, तथापि राम

शब्द रचना उचित नहीं समझा गया, इसका कारण अवतार संबंधी नामों से घृणा छोड़ और क्या हो सकता है।

केवल अवतारों के नामों का ही परिवर्त्तन नहीं मिलता है, मुझे वाक्यों, शब्दों, और भजन अथवा साखियों के पदों एवं चरणों में भी न्यूनाधिक और अंतर मिला है। एक शब्द को मैं तीन स्थान से उठाता हूं। आप उसमें हुए परिवर्तनों को देखिए।

> गाउ गाउ री दुलहनीं मंगलचारा।
> मेरे गृह आये राजाराम भतारा॥
> नाभि कमल में वेदी रच ले ब्रह्मज्ञान उच्चारा।
> राम राइ सो दूलह पायो अस बड़ भाग हमारा॥
> सुर नर मुनि जन कौतुक आये कोटि तैंतीसो जाना।
> कह कबीर मोहि व्याहि चले हैं पुरुष एक भगवाना॥
>
> आदिग्रंथ पृष्ठ ३६१

दुलहिन गावो मंगलचार। हमरे घर आये राम भतार॥
तन रति कर मैं मन रति करिहौं पांचो तत्व बराती।
रामदेव मोहि व्याहन ऐहैं मैं यौवन मदमाती॥
सरिर सरोवर वेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा।
रामदेव सँग भाँवरि लैहौं धनि धनि भाग हमारा॥
सुर तैंतीसो कौतुक आये मुनिवर सहस अठासी।
कह कबीर हम व्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी॥

कबीर बीजक पृष्ठ १४३

दुलहिनीं गावो मंगलचार। हम घर आये परमपुरुष भरतार।
तन रति करि मैं मन रति करिहौं पंचतत्त्व तय राती।
गुरुदेव मेरे पाहुन आये मैं जोवन मैं माती॥
सरीर सरोवर वेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचार।
गुरुदेव सँग भाँवरि लैहौं धन धन भाग हमार॥
सुर तैंतीसो कौतुक आये मुनिवर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम व्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी॥

कबीर शब्दावली प्रथम भाग पृष्ठ ६, १०

इस प्रकार विरुद्धाचरण, शब्द, वाक्य, और अर्थों में लौट फेर, अवतार संबंधी नामों के बहिष्कार इत्यादि का प्रभूत प्रमाण होते हुए भी श्रीमान् वेसकट कहते हैं—

"फिर भी इस बात का विश्वास करने के लिये दलीलें हैं कि कबीर की शिक्षाएँ धीरे धीरे अधिकतर हिंदू आकार में ढल गई हैं" १ कबीर ऐंड दी कबीर पंथ पृष्ठ ४६।

उनका यह कथन कहां तक युक्तिसगत है, इसको विद्वान् लोग स्वयं विचारें।

धर्मसिद्धात

जो हो, चाहे कबीर की शिक्षायें अधिकतर हिंदू आकार में धीरे धीरे ढल गई हों, चाहे अहिंदू भावापन्न हो गई हों, परंतु प्राप्त रचनाओं को छोड़कर उनके धर्म्म सिद्धांतों के निर्णय का दूसरा मार्ग नहीं है। यह सत्य है जैसा कि श्रीमान् वेसकट लिखते हैं कि

"उनकी शिक्षाओं का स्पष्टीकरण सुनी बातों में से भी सुनी बातों के आधार पर अवश्य ही सदोष होगा, और यह भी सभव है कि वह भ्रांत बनावें, यदि वह उनके समस्त सिद्धांतों की व्याख्या समझा जावे"।

कबीर ऐंड दी कबीर पथ पृष्ठ ४७।

किंतु यह भी वैसा ही सत्य है कि प्राप्त रचनाओं में से मौलिक और कृत्रिम रचनाओं का पृथक करना अत्यंत दुर्लभ वरन असभव है। उनमें परस्पर विरुद्ध विचार इस अधिकता से हैं कि उनके द्वारा किसी वास्तविक सिद्धांत का अभ्रांत रूप से निर्णय हो ही नहीं सकता। हाँ, यह पथ अवलबन किया जा सकता है कि इन रचनाओं में जो विचार व्यापक भाव से वारवार प्रगट और प्रतिपादित किए गए हैं उन्हें मुख्य और उसी विषय के दूसरे विचारों को गौण मान लिया जाय। पक्व और अपक्व अवस्था के विचारों में अतर हुआ करता है अनुभव, ज्ञान उन्मेष और वयस मनुष्य के विचारों को बदलते हैं। कबीर साहब इस व्यापक नियम से बाहर नहीं हो सकते, इसलिये उनके विचारों में भी अतर पड जाना असभव नहीं। निदान इसी सूत्र की सहायता से मैं कबीर साहब के धर्म्म सिद्धांतों के निरूपण का प्रयत्न करता हूँ।

मेरा विचार है कि कबीर साहब एकेश्वरवाद, साम्य वाद भक्तिवाद, जन्मातरवाद, अहिंसावाद और ससार की

असारता के प्रतिपादक, एवं मायावाद, अवतारवाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्मकांड, व्रत उपवास, तीर्थयात्रा, और वर्णाश्रम धर्म्म के विरोधी हैं। वे हिंदू और मुसल्मानों के धर्म्मग्रंथ और धर्म्मनेताओं के कट्टर प्रतिवादी हैं, और प्रायः इनके धर्म्मयाजकों पर बुरी तौर से आक्रमण करते हैं। कहीं कहीं इस आक्रमण की मात्रा इतनी कलुषित और अश्लील है, जो समुचित नहीं कही जा सकती।

हमने कबीर साहब को ऊपर 'एकेश्वरवाद' का प्रतिपादक कहा है, किंतु एकेश्वरवाद उनका कुछ भिन्न है, उनका प्रभु विलक्षण है, उनके मुहाविरे के अनुसार एकेश्वर शब्द ठीक नहीं है क्योंकि उनका प्रभु-ईश्वर ब्रह्म, पारब्रह्म, निर्गुण, सगुण सबके परे है। इस प्रभु को वे एक स्थान विशेष 'सत्यलोक' का निवासी मानते हैं, और उसके लक्षण वे ही बतलाते हैं, जो वैष्णव ग्रंथों में सगुण ब्रह्म के बतलाए गए हैं। वे कहते हैं कि वह सत्य गुरु के प्रसाद से केवल भक्ति द्वारा प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त उसकी प्राप्ति का और कोई साधन वे नहीं बतलाते (देखो शब्द १६—२४)।

वे उसका परिचय प्रायः राम शब्द द्वारा देते हैं, किंतु अपनी रचनाओं में, हरि, नारायण, सारंगपानी, समरथ, कर्ता, करतार, ब्रह्म, पारब्रह्म, निरच्छर, सत्यनाम, मुरारि इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी उसके लिये करते हैं। अपना

रक्खा हुआ उसका 'साहब' नाम उन्हें बहुत प्यारा है। इस ग्रंथ के अधिकांश पद इसके प्रमाण हैं।

साम्यवाद, अहिंसावाद, जन्मांतरवाद, भक्तिवाद, और संसार की अनित्यता का निरूपण उन्होंने सर्वत्र किया है। इस ग्रंथ के साम्यवाद, उद्‌बोधन, उपदेश और चेतावनी, मिथ्याचार और संसार की असारता शीर्षक पदों में आप इन सिद्धांतों का उत्तम रीति से प्रतिपादन देखें गे।

अवतारवाद के विषय में उनकी अनुमति आप इस ग्रंथ के शब्द ४५ में देखें गे। और भी स्थान स्थान पर उनको अवतारवाद का विरोध करते देखा जाता है, तथापि ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनमें अवतारवाद का प्रतिपादन है। निम्नलिखित शब्दों को देखिए—

प्रहलाद पठाये पढ़न शाल। संग सखा बहु लिए बाल। मोको कहा पढावसि आल जाल। मेरी पटिया लिख देहु श्री गोपाल। नहिं छोड़ों रे बाबा राम नाम। मोहिं और पढ़न सों नहीं काम। काढ़ि खरग कोप्योरि साय। तुझ राखन हारा मोहिं बताय। प्रभु थंभ ते निक्से कर बिस थार। हरनाकस छेद्यो नख बिदार। ओइ परम पुरुष देवादि देव। भगत हेत नरसिंघ भेव। कह कबीर को लखै न पार। प्रहलाद उधारे अनिक बार। आदि-ग्रंथ पृ. ६५३।

राजन कौन तुमारे आवै। ऐसो भाव बिदुर को देख्यो वह गरीब मोहिं भावै। हस्ती देख भरम ते भूला श्रीभगवान न

जाना। तुमरो दूध बिदुर को पानी अमृत कर मैं माना। खीर समान साग मैं पाया गुन गावत रैनि बिहानी। कबीर को ठाकुर अनंद बिनोदी जाति न काहु की मानी। आदि-ग्रंथ पृष्ठ ५६६

दर मां दे ठाढ़े दरबार। तुझ बिन सुरति करै को मेरी दरसन दीजै खोल किवार। तुम धन धनी उदार तिया जी स्रवनन सुनियत सुजस तुम्हार। मागों काहि रंक सब देखौं तुमही ते मेरो निस्तार। जय देव नामा बिप्र सुदामा तिन कौ किरपा भई है अपार। कह कबीर तुम समरथ दाते चार पदारथ देत न बार। आदि-ग्रंथ पृष्ठ ४६२

इसके अतिरिक्त उनके पद्यों में सैकड़ों स्थान पर रघुनाथ रघुराय, राजाराम, गोविंद, मुरारि, इत्यादि अवतार संबंधी नामों का प्रयोग उनको अवतारवाद का प्रतिपादक बतलाता है, किंतु जिस दृढ़ता और व्यापक भाव से वे अवतारवाद का विरोध करते हैं उसे देखकर मैं उनके विरोध मूलक विचार को ही मुख्य और इस दूसरे विचार को गौण मानता हूं। एक प्रकार से और इसका समाधान किया जाता है। वह यह कि जब वे परमात्मा का निरूपण करने लगते हैं, तो उस आवेश में अवतारों को साधारण मनुष्य सा वर्णन कर जाते हैं, किंतु जब स्वयं प्रेम में भर कर अवतारों के सामने आते हैं, तो उनमें ईश्वर भावही प्रगट करते हैं। यह बात स्वीकार भी करली जाय, तो भी इस विचार में गौणता ही पाई जाती है।

मायावाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा वर्णाश्रमधर्म के अनुकूल कुछ कहते उनको कदाचित ही देखा जाता है। वे इन विचारों के विरोधी हैं। इस ग्रंथ की मायाप्रपंच, और मिथ्याचार शीर्षक शब्दावली पढ़िए, उस समय आपको ज्ञात होगा कि किस प्रकार वे इन सिद्धांतों की प्रतिकूलता करते हैं।

विचारपरंपरा

श्रीमान् वेस्टकट कहते हैं कि सम्भवतः कबीरपंथ हम को एक ऐसा धर्म्म मिलता है, जिस पर कि हिंदू मुसल्मान और ईसाई इन तीनों धर्म्मों का थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा है*।

परंतु जब मैं देखता हूँ कि कबीर साहब को ईसाई मज़हब का ज्ञान तक नहीं था, तब यह बात कैसे स्वीकार की जा सकती है कि उनके पंथ पर ईसाई मत का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। भारत के परम प्रसिद्ध बौद्धधर्म्म से भी वे कुछ अभिज्ञ नहीं थे, क्योंकि वे इस धर्म्म का भी किसी स्थान पर कुछ वर्णन नहीं करते। वे जब चर्चा करते हैं, तब दो राहों की चर्चा करते हैं, और कहते हैं कि कर्त्ता ने येही दो राहें चलाईं यदि वे कोई तीसरी राह जानते, तो उसका नाम भी अवश्य लिखते। इसके अतिरिक्त और और अवसरों पर भी इन्हीं दो राहों को सामने रख कर अपने चित्त का उद्गार

---

* देखो कबीर ऐंड दी कबीर पंथ का प्रीफ़ेस पंक्ति १६—२२

निकालते हैं, अन्य की ओर इनकी दृष्टि भी नहीं जाती। निम्नलिखित वचन इसके प्रमाण हैं—

"करता किरतिम बाजी लाई। हिंदू तुरुक दुइ राह चलाई"।
कबीर बीजक पृष्ठ ३६१

"संतो राह दोऊ हम डीठा। हिन्दू तुरुक हटा नहिं माने स्वाद सबन को मीठा"। कबीर बीजक पृष्ठ २१०

"अरे इन दोहुन राह न पाई। हिंदुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई। कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह है आई॥" कबीर शब्दावली प्रथम भाग पृष्ठ ४८।

अब रहे हिंदू और मुसलमान धर्म्म। पहले मैं यह देखूंगा कि कबीरपंथ, वैष्णवधर्म्म की एक शाखा मात्र है, और उसी को विचारपरंपरा और विशाल हिंदू धर्म्म के सिद्धांत उसमें ओतप्रोत है या क्या? तदुपरांत मुसलमान धर्म्म के प्रभाव की भी मीमांसा करूंगा।

१६०८ ईस्वी में धर्मेतिहास की सार्वजनिक सभा में श्रीमान ग्रियर्सन साहब ने 'भागवत धर्म्म' पर एक प्रबंध पढ़ा था। उसका सारमर्म्म' प्रवासी नामक बँगलापत्र के दशम भाग प्रथम खंड पृष्ठ संख्या के ५३८, ५३६ पृष्ठ में प्रकाशित हुआ है। उस सारमर्म्म में 'भागवत धर्म्म' के निम्नलिखित सिद्धांत बतलाए गए हैं—

१—भगवान एक हैं, उसीसे विश्वचराचर उत्पन्न हुआ है। अपना विशेष आदेश पालन करने के लिये उन्होंने कतिपय

देवताओं को बनाया किंतु जब इच्छा होती है तो प्रयोजन होने पर पृथ्वी का पाप मोचन करने के लिये वे स्वयं धरा में अवतीर्ण होते हैं। भगवान को पितृरूप में स्वीकार करने के लिये भारतवर्ष भागवतों का ऋणी है।

२—इस धर्मवाले एक मात्र उस भगवान की ही भक्ति करते हैं। इस धर्म का यही एक विशेषत्व है। इस प्रकार सगुण ईश्वर की उपासना भागवतों से ही भारतवर्ष ने सीखी है।

३—प्रत्येक आत्मा ही परमात्मा से प्रसूत है जो प्रसूत हुई है वह अनंत काल तक स्वतंत्र रहेगी और उसका बारबार जन्म होगा। किसी कर्म्म या ज्ञान के द्वारा नहीं केवल भक्ति के द्वारा जन्मपरिग्रह रुकता है। उस समय मुक्त आत्मा अनंत काल तक भगवान के चरणाश्रय में रहती है। इस प्रकार भारत को भागवतों ने ही आत्मा के अमरत्व की दीक्षा दी है।

४—भगवान के निकट सब आत्मा ही समान हैं। मुक्ति लाभ के लिये केवल उच्च जाति या शिक्षित श्रेणी ही विशेष रूप से अधिकारी है यह ठीक नहीं। समाज के लिये जाति भेद मंगलकारक हो सकता है। परंतु भगवान की दृष्टि सभी पर समान है। भगवान को पिता स्वीकार कर लेने से स्वभावत समस्त मानवों के प्रति भ्रातृभाव अंगीकृत हुआ। भारत ने इसे भी भागवतों से ही पाया।

अब इन सिद्धांतों के साथ कबीर साहब के एकेश्वरवाद,

साम्यवाद, भक्तिवाद, जन्मांतरवाद, और अहिंसावाद को मिलाइए, देखिए कहाँ कुछ अंतर है। पहले जो मैं कबीर साहब के एकेश्वरवाद की व्याख्या कर आया हूं, वह दूसरों को कुछ उलझन पैदा कर सकती है। परन्तु वैष्णव उस एकेश्वरवाद से भली भांति परिचित हैं। समस्त रामोपासक वैष्णव रामचंद्र को साकेतलोक का निवासी बतलाते हैं, साकेतलोक और उसके निवासी को वैष्णव वैसा ही वर्णन करते हैं जैसा कबीर साहब ने सत्यलोक और उसके निवासी का किया है। प्रमाण लीजिए और अद्भुत साम्य अवलोकन कीजिए—

अयोध्या च परब्रह्म सरयू सगुणः पुमान्।
तन्निवासी जगन्नाथः सत्य सत्य वदाम्यहम्॥
अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानंदरूपिणी।
यदंशांशेन गोलोकः वैकुंठस्थ. प्रतिष्ठितः॥ २॥

वशिष्ठसंहिता (कबीर बीजक पृ० ४)

कबीर पंथ और संत मतवाले अपने 'साहब' को चैतन्य देश का धनी कहते हैं, वशिष्ठ संहिता में भी, साकेतलोक का लक्षण यही लिखा है—

यत्र वृक्ष लता-गुल्म-पत्र-पुष्प-फलादिकं।
यत्किंचित् पक्षिभृंगादि तत्सर्वं भाति चिन्मयम्॥

कबीर बीजक पृष्ठ २८

साकार, निराकार, परब्रह्म के परे रामचंद्र जी को

वैष्णव भी मानते हैं। आनन्दसंहिता के निम्नलिखित श्लोकों को देखिए।

> स्थूलं चाष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्।
> परात्तु द्विभुजं रूपं तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥
> आनंदो द्विभुजः प्रोक्तो मूर्त्तश्चामूर्त्त एव च।
> अमूर्त्तस्याश्रयो मूर्त्तः परमात्मा नराकृतिः॥

कबीर बीजक पृष्ठ ३३

महारामायण में श्रीरामचन्द्र को सत्यलोकेश ही लिखा है—

> वाङ्मनो गोचरातीतः सत्यलोकेश ईश्वरः।
> तस्य नामादिकं सर्वं रामनाम्ना प्रकाश्यते॥

कबीर बीजक पृष्ठ २४८

एक स्थान पर कबीर साहब ने भी कह दिया है कि उनका स्वामी 'साकेत' निवासी है। नीचे के पदों को देखिए—

जाय जाहूत में खुद खाविंद जहँ वहीं मकान 'साकेत' साजी।
कहे कबीर हाँ भिश्त दोजख थके वेद कीताब काहूत काजी॥

कबीर बीजक पृष्ठ २६७

इसलिये जिस प्रभु की कल्पना कबीर साहब ने की है, वह वैष्णव विचारपरंपरा ही से प्रसूत है, वह वैष्णव धर्म्म के एकेश्वरवाद का रूपांतर मात्र है।

जब वैष्णव धर्म्म का यही विशेषत्व है कि वह एक मात्र

जो अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा की जड़ है। इसलिये यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि ये दोनों बातें उनके हृदय में मुसलमान धर्म्म के प्रभाव से उदय हुईं।

कबीर साहब जन्मकाल से ही मुसलमान के घर में पले थे, अपक्व वय तक उनके हृदय में अनेक मुसलमान संस्कार, परोक्ष एवं अपरोक्ष भाव से अंकित होते रहे। वय प्राप्त होने पर वे धर्म्मजिज्ञासु बनकर देश देश फिरे, बलख़ गए, उन्होंने अनेक मुसलमान धर्म्माचार्य्यों के उपदेश सुने, ऊँजी के पीर और शेख़ तक़ी में उनकी श्रद्धा होने का भी पता चलता है। इसलिये स्वामी रामानंद का सत्संग लाभ करने पर भी उनके कुछ पूर्व संस्कारों का न बदलना आश्चर्य्यजनक नहीं। जो संस्कार हृदय में बद्धमूल हो जाते हैं, वे जीवन पर्यंत साथ नहीं छोड़ते। अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा का विरोध आदि कबीर साहब के कुछ ऐसे ही संस्कार हैं। स्वामी रामानंद की यह महत्ता अल्प नहीं है कि उन्होंने कबीर साहब के अधिकांश विचारों पर वैष्णव धर्म्म का रंग चढ़ा दिया।

के साथ कबीरपंथियो का कुछ भी तअल्लुक नहीं है, ताहम हिंदू मजहब से उनके मजहब के निकलने का काफी सबूत मिलता है। उनकी और पौराणिक वैष्णवों की तालीमात नतीजन अनकरीब एकसा है" सम्प्रदाय पृ ६६, ७० । कबीर साहब कि शिक्षा में दो बातें ऐसी हैं जिनका वैष्णवधर्म्म से कोई सबंध नहीं वरन उनकी यह शिक्षा उस धर्म्म के प्रतिकूल है। ये दोनो बातें अवतारवाद और मूर्तिपुजा की प्रतिकूलता है। अवतारवाद के अनुकूल तो उनकी शिक्षा में कुछ वचन मिलते भी हैं, और इसमें कोई सदेह नहीं कि गौण रुप से वे इसे स्वीकार करते हैं, परतु मूर्तिपूजा के वे कट्टर विरोधी हैं। मेरा विचार यह है कि उनका यह संस्कार मुसल्मान धर्म्म मूलक है। वैदिक काल से उपनिषद और दार्शनिक काल पर्यंत आर्य्यधर्म्म में भी कहीं अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा का पता नहीं चलता, पोराणिक काल में ही इन दोनो बाता की नांव पड़ी है। अतएव यदि ऊँच उठा जाय तो कहा जा सक्ता है कि कबीर साहब ने प्राचीन आर्य्यधर्म्म का अवलंबन करके ही अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा का विरोध किया है, किंतु यह काम स्वामी दयानंद सरस्वती का था, कबीर साहब का नहीं। अपठित होने क कारण उनको वेद और उपनिषद की शिक्षाओं का ज्ञान न था इसलिये इतनी दूर पहुँचना उनका काम न था। उनके काल में पौराणिक शिक्षा का ही अखंड राज्य था

जो अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा की जड़ है। इसलिये यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि ये दोनों बातें उनके हृदय में मुसल्मान धर्म्म के प्रभाव से उदय हुईं।

कबीर साहब जन्मकाल से ही मुसल्मान के घर में पले थे, अपक्क वय तक उनके हृदय में अनेक मुसल्मान संस्कार, परोक्ष एवं अपरोक्ष भाव से अंकित होते रहे। वय प्राप्त होने पर वे धर्म्मजिज्ञासु बनकर देश देश फिरे, वलख गए, उन्होंने अनेक मुसल्मान धर्म्माचार्य्यों के उपदेश सुने, ऊँजी के पीर और शेख़ तक़ी में उनकी श्रद्धा होने का भी पता चलता है। इसलिये स्वामी रामानंद का सत्संग लाभ करने पर भी उनके कुछ पूर्व संस्कारों का न बदलना आश्चर्य्यजनक नहीं। जो संस्कार हृदय में बद्धमूल हो जाते हैं, वे जीवन पर्यंत साथ नहीं छोड़ते। अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा का विरोध आदि कबीर साहब के कुछ ऐसे ही संस्कार हैं। स्वामी रामानंद की यह महत्ता अल्प नहीं है कि उन्होंने कबीर साहब के अधिकांश विचारों पर वैष्णव धर्म्म का रंग चढ़ा दिया।

स्वतंत्र-पथ

श्रीमान् वेसकट कहते हैं कि "साधारणतः यह बात मान ली गई है कि समस्त बड़े बड़े हिंदू संस्कारकों में कबीर और तुलसीदास का प्रभाव उत्तरी और मध्य हिंदुस्तान की अशिक्षित जातियों में स्थायी रूप से अधिक है। सर विलियम

हंटर ने बहुत उचित रीति से कबीरदास को पंद्रहवीं शताब्दी का भारतीय लूथर कहा है।"

कबीर ऐंड दी कबीर पंथ पृष्ठ १

यह बात सत्य है, वैष्णवधर्म्म ही संस्कारमूलक है, अतएव उस धर्म्म में दीक्षित होकर कबीर साहब में संस्कार प्रवृत्ति का उदय होना आश्चर्य्यकर नहीं। किंतु उनकी यह प्रवृत्ति और बातों की अपेक्षा हिंदू और मुसल्मानों को एक कर देने की ओर विशेष थी, क्योंकि उस समय की हिंदू और मुसल्मानों की वर्द्धमान अशांति उन्हें प्रिय नहीं हुई। श्रीमान् वेसकट लिखते हैं—

'कबीर की शिक्षा में हम को हिंदुओं और मुसल्मानों के बीच की सीमा तोड़ने का यत्न दृष्टिगत होता है।"

कबीर ऐंड दी कबीर पंथ प्रीफ़ेस पंक्ति १६ और १८

"कबीर ने शेख से प्रार्थना की कि वे उनको यह वर देवें कि वे हिंदू और मुसल्मानों के बीच के उन धार्मिक विरोधों को दूर कर सकें जो उनको परस्पर अलग करते हैं।"

कबीर ऐंड दी कबीर पथ पृ. ४२

निदान इस प्रवृत्ति के उदय होने पर कबीर साहब ने एक ऐसे धर्म्म की नींव डालनी चाही, जिसे दोनों धर्म्म के लोग असंकुचित भाव से स्वीकार कर सकें। ऐसा करने के लिये उनको दो बातों की आवश्यकता दिखलाई पड़ी, एक तो इस बात की कि सब लोग उनको एक बहुत बड़ा अवतार या

पैगंबर समझें, जिससे उनकी बातों का उन पर प्रभाव पड़े। दूसरे इस बात की कि वे उन धर्म्मपुस्तकों, धर्म्मनेताओं, और धर्म्मयाजकों की ओर से उन लोगों के हृदय में अश्रद्धा, अविश्वास और घृणा उत्पन्न करें जिनके शासन में उस काल वे लोग थे, क्योंकि बिना ऐसा हुए उनके उद्देश्य के सफल होने की संभावना नहीं थी।

निदान प्रथम बात पर दृष्टि रखकर अवतारवाद का विरोधी होने पर भी कबीर साहब ने अपने को अवतार और सत्यलोकनिवासी प्रभु का दूत बतलाया, और कहा कि जिस पद पर मैं पहुँचा आज तक कोई वहां नहीं पहुँचा। उन्होंने यह दावा भी किया कि केवल हमारी बात मानने से मनुष्य छूट सकता और मुक्ति पा सकता है, अन्यथा नहीं। निम्नलिखित पद्य इसके प्रमाण हैं—

काशी में हम प्रगट भये हैं रामानंद चेताये।
समरथ का परवाना लाये हंस उबारन आये॥

कबीर शब्दावली प्रथम भाग पृ० ७१

पोरह सत्य के आगे समरथ जिन जग मोहिं पठाया।

कबीरबीजक पृ० २०

तेहि पीछे हम आइया सत्य शब्द के हेत।

कबीरबीजक पृ० ७

कहते मोहि भयल युग चारी। समझत नाहिं मोहि सुत नारी॥

कबीरबीजक पृ० १२५

कह कबीर हम युग युग कही। जबही चेतो तबहीं सही॥

कबीरबीजक पृ० ५६२

जो कोइ होइ सत्य का किनका सो हम को पतिआई।
और न मिलै कोटि करि थाकै बहुरि काल घर जाई॥

कबीरबीजक पृ० २०

घर घर हम सब सों कही शब्द न सुनै हमार।
ते भव सागर डूबहीं लख चौरासी धार॥

कबीरबीजक पृ० १६

कहत कबीर पुकारि कै सब का उहै हवाल।
कहा हमर मानै नही किमि छूटै भ्रमजाल॥

कबीरबीजक पृ० १३०

जंबूदीप के तुम सब हंसा गहि लो शब्द हमार।
दास कबीरा अब की दीहल निरगुन कै टकसार॥

कबीर शब्दावली द्वितीय भाग पृ० ८०

जहिया किरतिम ना हता धरती हता न नीर।
उतपति परलय ना हती तब की कही कबीर॥

कबीरबीजक पृष्ठ ५६८

ई जग तो जहँड़े गया भया योग ना भोग।
तिल तिल झारि कबीर लिय तिलठी झारै लोग॥

कबीरबीजक पृ० ६३२

सुर नर मुनिजन औलिया यह सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं तहँ घर किया कबीर॥

साखीसंग्रह पृ० १२५

दूसरी बात पर दृष्टि रखकर उन्होंने हिंदू और मुसलमान धर्म्म के ग्रंथों की निंदा की, उन्हें धोका देनेवाला बतलाया और कहा कि माया अथवा निरंजन ने उनकी रचना केवल ससार के लोगों को भ्रम में डालने के लिये कराई। इन बातों के प्रमाण नीचे के वाक्य हैं—इनमें आप उनके धर्म्मनेताओं की भी निंदा देखेंगे।

योग यज्ञ जप संयमा तीरथ व्रत दाना।
नवधा वेद किताब है झूठे का बाना॥

कबीर बीजक पृष्ठ ४११

हिंदू मुसलमान दो दीन सरहद बने वेद कत्तेब परपचए जी।

ज्ञानगुदड़ी पृ० १६

वेद किताब दोय फंद सँवारा। ते फंदे पर आप बिचारा॥

कबीर बीजक पृ० २६६

चार वेद पट शास्त्र औ दश अष्ट पुरान।
आशा दे जग बांधिया तीनो लोक भुलान॥

कबीरबीजक पृष्ठ १४

औ भूले पट दरशन भाई। पाखँड भेष रहा लपटाई।
ताकर हाल होय अवकूचा। छ दरशन में जैन बिगूचा॥

कबीरबीजक पृष्ठ ६७

ब्रह्मा विष्णु महेसर कहिये इन सिर लागी काई।
इनहिं भरोसे मत कोइ रहियो इनहू मुक्ति न पाई॥

कबीर शब्दावली द्वितीय भाग पृ० १६

सुर नर मुनी निरंजन देवा सब मिलि कीन्हा एक बँधाना।
आप बँधे औरन को बाँधे भवसागर को कीन्ह पयाना॥

कबीर शब्दावली तृतीय भाग पृ० ३८

माया ते मन ऊपजै मन ते दस अवतार।
ब्रह्म विष्णु धोखे गये भरम परा संसार॥

कबीरबीजक पृ० ६५०

चार वेद ब्रह्मा निज ठाना। मुक्ति क मर्म्म उनहुँ नहिं जाना॥
हबीबी और नबी के कामा। जितने अमल सो सबै हरामा॥

कबीरबीजक पृ० १०४, १२४

पर धर्म्म और उसके पवित्र ग्रंथों को खंडन करके निज धर्म्म स्थापन और सर्वसाधारण में अपने को अवतार या पैगंबर प्रगट करने की प्रथा प्राचीन है, कबीर साहब का यह नया आविष्कार नहीं है, किंतु देखा जाता है कि इस विषय में उन्होंने स्वतंत्र पथ अवश्य ग्रहण किया। उनकी इस स्वतंत्रता से मुग्ध होकर 'रहनुमायान हिंद, के रचयिता कहते हैं—

"उनको खुदा का फरजंद कहना बजा है, वह एक क़ौम या मजहब न रखते थे, उनका घर दुनिया, उनके भाई बंद बनीन वा इंसान, और उनका बाप ख़ालिक़ अर्ज वो समा था।"

पृष्ठ २२६

परंतु हम देखते हैं कि वे ही 'रहनुमायान हिंद, के विद्वान् रचयिता हिंदू मजहब के विषय में यह कथन करते हैं—

"अगर कोई शख़्स हिंदू मज़हब को जानना पढ़ना या हासिल करना चाहे, तो वह बड़े बड़े रहनुमा रिशी और संतों की तलक़ीन गौर से पढ़े। यह बुज़ुर्ग लोग खुदा के अवतार थे, उनके अक़्वाल वेद मुक़द्दस हैं, जो आसमानी वही और रब्बानी इलहाम हैं, जो खुदाताला ने अपनी इनायत से इंसान को करामत फ़रमाये हैं।" पृष्ठ २८

"यह एक ज़ात या फ़िरके का मज़हब नहीं है, जैसा कि अवामुन्नास का अक़ीदा है बल्कि कुल बनीन या इंसान के लिये बना किया गया है। जिस वक्त दुखानी जहाज़ रेल तार तिजारत और फ़तूहात से कुल दुनियां मिल जुल कर एक हो जावेगी, एक और रहनुमा पैदा होकर ज़ाहिर करेगा कि हिंदू मज़हब तमाम दुनियां के इंसानों के लिये है" पृष्ठ २८

अब आप देखिए वे जैसे कबीर साहब को किसी क़ौम या मज़हब का नहीं कहते, उसी प्रकार हिंदूधर्म्म को किसी ज़ात या फ़िरके का नहीं बतलाते। जैसे वे बनीन या इंसान को कबीर साहब का भाई बंद बतलाते हैं, वैसे ही हिंदू मज़हब को बनीन या इंसान का कहते हैं। जैसे वे कबीर साहब का घर दुनियाँ सिद्ध करते हैं, वैसे ही हिंदू मज़हब को दुनियाँ के लिये निश्चत करते हैं। हिंदूधर्म्म और कबीर साहब दोनों का जनक वे ईश्वर को मानते हैं। फिर कबीर साहब हिंदू मज़हब के ही तो सिद्ध हुए, अर्थात् कबीर साहब का वही सिद्धांत पाया गया जो हिंदूधर्म्म का है। वैदिक

धर्म्म को ही वे हिंदू मजहब कहते हैं। परंतु कबीर साहब के जो विचार वेदों के विषय में हैं, उसको मैं ऊपर प्रगट कर आया। मैं यह मानूंगा कि कबीर साहब जब चिंताशीलता से काम लेते हैं और ऊँचे उठते हैं, तो सत्य बात कह जाते हैं। एक स्थान पर उन्होंने स्पष्ट कहा है 'वेद कतेब कहो मति झूठे झूठा जो न विचारै'* किंतु उनका यह एकदेशी विचार है, व्यापक विचार उनका वेद और कुरान की प्रतिकूलता मूलक है। यद्यपि उन्होंने एक महान उद्देश्य की सिद्धि के लिये यह स्वतन्त्र पथ (अर्थात् ऐसा पथ जो हिंदू मुसल्मानों से अलग अलग है) ग्रहण किया, किंतु मेरा विचार है कि वह उनके महान उद्देश्य के अनुकूल न था, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हिंदू मुसल्मानों की विभेद सीमा आज भी वैसी ही अचल अटल है। हिंदू मुसल्मानों के लिये मगहर में अलग अलग बनी हुई उनकी दो समाधियां भी इस बात का उदाहरण हैं।

विचार मर्यादा-पूर्ण महानुभूति मूलक, और परमित होने से ही समादृत होता है। वह विचार कभी कार्य्यकारी और सुफल प्रसू नहीं होता, जिसमें यथोचित शालीनता नहीं होती। मनुष्य और कटूक्तियों को किसी प्रकार सहन कर लेता है, परंतु जब उसके पवित्र ग्रंथों और धर्म्मनेताओं पर आक्रमण होता है, तब उसकी सहनशीलता की प्राय समाप्ति हो जाती

*देखो आदि ग्रंथ पृष्ठ ७२७

है। उस समय वह बहुतसी सुसंगत और उचित बातों को भी स्वीकार नहीं करता। मिठाई से औषधि की कटुताही नहीं दब जाती, कितनी अप्रिय बातें भी स्वीकृत हो जाती हैं। ऐसे अवसरों पर प्रायः लोग यह कह उठते हैं कि लोहे का मुरचा उँगलियों से मलकर नहीं दूर किया जा सकता, उसके लिये लोहे की रगड़ ही उपयोगिनी होती है। इसी प्रकार समाज की अनेक बुराइयां और धर्म्म के नाम पर किए गए कदाचार केवल प्यारी प्यारी बातों और मधुर उपदेशों से ही दूर नहीं होते, उसके लिये कटूक्तियों की कषा ही उपकारिणी होती है। यह बात यदि स्वीकार भी कर ली जाय, तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि बुराइयों और कदाचार के साथ भलाइयों और सदाचार की पीठ भी कषा प्रहार से क्षत विक्षत कर दी जाय। संस्कार का अर्थ संहार नहीं है, जो क्षेत्रसंस्कारक खेत की घासों के साथ अन्न के पौधों को भी उखाड़ देना चाहेगा, वह संस्कारक नाम का अधिकारी नहीं। वेद शास्त्र या कुरान में कुछ ऐसी बातें हो सकती हैं, जो किसी समय के अनुकूल न हों, हिंदूधर्म्म के नेताओं या मुसल्मान-धर्म्म के प्रचारकों के कई विचार ऐसे हो सकते हैं, जो सब काल में गृहीत न हो सकें, किंतु हम से यह नहीं कहा जा सकता कि वेद शास्त्र या कुरान में सत्य और उपकारक बातें नहीं, और हिंदू एवं मुसल्मान धर्म्म के नेताओं ने जो कुछ कहा वह सब झूठ और अनर्गल कहा, लोगों को धोखे में

डाला, और उन्हें उन्मार्गगामी बनाया। वेद शास्त्र या कुरान को धर्म्म पुस्तक न समझा जाय, हिंदू मुसलमान धर्म्माचार्यों को अपना पथप्रदर्शक न बनाया जाय, इसमें कोई आपत्ति नहीं, किंतु उनके विषय में ऐसी बातें कहना जो अधिकांश असंगत हैं, कदापि उचित नहीं।

धर्म्मालोचनाएँ धर्म्मसंगत ही होनी चाहिएँ, उनमें हृदयगत विकारों का विकाश न होना चाहिए। वेदशास्त्र के शासन में आज भी बीस करोड़ मनुष्य हैं, कुरान संसार के एक पंचमांश मानव की धर्म्म पुस्तक है, बिना उनमें कुछ सद्‌गुण या विशेषत्त्व हुए उसका इतने हृदयों पर अधिकार होना असंभव था। कबीर साहब ने बड़े गर्व और आवेश से स्थान स्थान पर यह कहा है कि हमारे वचन से ही मानव का उद्धार हो सकता है, हमारे शब्द ही लोगों को मुक्त करेंगे, किंतु उन्होंने जो कुछ वेद शास्त्र या कुरान में है, उससे अधिक क्या कहा? कौनसी नई बात बतलाई? वे केवल आध्यात्मिक शिक्षक हैं, किंतु क्या इस पथ में भी वे उतने ही ऊंचे उठे हैं, जितने कि उपनिषद् और दर्शनकार उठ सके। जिस काल संसार में केवल अज्ञान अंधकार था, ज्ञानरवि की एक किरण भी नहीं फूटी थी, उस काल कहां से यह मेघ गंभीर ध्वनि हुई—

सत्यं वद, धर्म्मं चर, स्वाध्यायान् मा प्रमदितव्यम्, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य्यदेवो भव, मा हिंस्यात् सर्वभूतानि, ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः,

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्
उतामृतत्वस्ये शानो यदन्ने नातिरोहति
सर्वाशा मम मित्रम् भवंतु ।

यदि हमारा हृदय कलुषित नहीं है, यदि हम में सत्य-प्रियता है, यदि हम न्याय और विवेक को पददलित नहीं करना चाहते, तो हम मुक्तकंठ से कहेंगे-पवित्र वेदों से। आज इसी ध्वनि की प्रतिध्वनि संसार में हो रही है, आज इसी ध्वनि का मधुर स्वर सांसारिक समस्त धर्म ग्रंथों में गूंज रहा है, स्वयं कबीर साहब के वचनों और शब्दों में उसी की लहर पर लहर आ रही है, किंतु वे ऐसा नहीं समझते, वरन रमैनी में कहते हैं कि माया द्वारा त्रिदेव और वेदादि की उत्पत्ति केवल संसार को भ्रांत बनाने के लिये हुई है, सत्य शब्द के लिये हमीं आए हैं' (देखो कबीरबीजक पृ० १३ और १७ के दोहे १५ और २०)। किंतु यह उस मनुष्य के, जिसके हृदय में, मस्तिष्क में, धमनियों में, रक्त की बूंदों में, चैतन्य की कलाएँ प्रति पल दृष्टिगत हो रहीं हैं, इस कथन के समान है कि चैतन्य से हमारा कोई सम्पर्क नहीं, क्योंकि हम स्वयं सत्य हैं। कुरान के विषय में भी उनकी उत्तम धारणा नहीं, और यही कारण है कि जो जी में आया उन्होंने इन ग्रन्थों के विषय में लिखा। किंतु शास्त्र कहता है—

धर्म्मः यो बाधते धर्म्मं न स धर्म्मः कुधर्म्म तत्।
धर्म्माविरोधी यो धर्म्मः स धर्म्मः सत्यविक्रमः॥

" जो धर्म्म किसी धर्म्म को बाधा पहुँचाता है, वह धर्म्म नहीं है कुधर्म्म है, जो धर्म्म अपर धर्म्म का अविरोधी है, सत्य पराक्रमशील धर्म्म वही है। आज दिन संसार में शांति फैलाने के कामुक इसी पथ के पथी हैं, 'थियासोफ़िकल सोसाइटी का यही महामंत्र है, अतएव अनेक अंश में उसको सफलता भी हो रही है। हिंदू धर्म्म स्वयं इस महामंत्र का ऋषि, और चिरकाल से उसका उपासक है, और यही कारण है कि इसके विभिन्न विचार के नाना संप्रदाय हिंदुत्व के एक सूत्र में आज भी बँधे हैं।

किसी किसी का विचार है कि कबीर साहब अपठित थे, उन्होंने वेद शास्त्र उपनिषदों को पढ़ा नहीं, कुरान के विषय में भी वे ऐसे ही अनभिज्ञ रहे, इसलिये उन्होंने इन ग्रंथों के माननेवालों के आचार व्यवहार को जैसा देखा, वैसी ही उन के विषय में अनुमति प्रगट की। किंतु मैं इस विचार से सहमत नहीं। कबीर साहब चिंताशील पुरुष थे, वे यह भी समझ सकते थे कि सब मतों के सर्व साधारण और महान एवं मान्य पुरुषों के आचार व्यवहार में अंतर हुआ करता है। उनके नेत्र के सामने ही उसी समय में हिंदुओं में स्वामी रामानंद और मुसलमानों में शेख़ तक़ी जैसे महापुरुष मौजूद थे, फिर यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि उन्होंने उक्त धर्म्म ग्रंथों के माननेवालों के आधार पर ही, उन

ग्र थों के प्रतिकूल लिखा। मेरा बिचार यह है कि उन्होंने एक नवीन धर्म्मस्थापन की लालसा से ही ऐसा किया।

स्वाधीन चिंता

यह भी कहा जा सकता है कि कबीर साहब स्वाधीन चिंता के पुरुष थे। उन्होंने समय का प्रवाह देखकर धर्म्म और देश के उपकार के लिये जो बातें उचित और उपयेगिना समझी, उनको अपने विचारों पर आरुढ होकर निर्भीक चित्त से कहा। उन्होंने अपने विचारों के लिये कोई आधार नहीं खोजा, किसी ग्र थ का प्रमाण नहीं चाहा। उन्होंने सोचा कि जो बात सत्य है, वास्तविक है, उसकी सत्यता और वास्तविकता ही उसका प्रधान आधार है उसके लिये किसी ग्रथ विशेष का सहारा क्या? उनके जी में यह बात भी आई कि जिन वेद शास्त्र और कुरान का आश्रय लेकर हिंदू मुसल्मान धर्म्म याजक नाना कदाचार कर रहे हैं उन्हीं को उन कदाचारों का विरोध करने के लिये अवलंबन बनाना कदापि युक्तिसंगत नहीं। बरन उनके विरुद्ध आंदोलन मचाना ही उपकारक होगा। निदान उन्होंने ऐसा ही किया। झूठे संस्कारों के वश लोग नाना क्रियाकांड में फँसे हुए थे, आडंबर मूलक नाना आचार व्यवहार को धर्म्म समझ रहे थे, उनके द्वारा वे साँसत तो भोगते ही थे, वंचित भी हो रहे थे। उन से यह बात नहीं देखी गई, उन्होंने उनके विरुद्ध अपना प्रबल स्वर ऊंचा किया, बडे साहस के साथ केवल अपने आत्मबल के सहारे

उनेका सामना किया। उनका सत्य व्यवहार, उनका दृढ़ विचार ही इस मार्ग में उनका सच्चा सहायक था, उनको किसी प्राचीन धर्म्म ग्रंथ की सहायता अभिप्रेत थी ही नहीं, फिर वे क्यों किसी धर्म्म ग्रंथ का मुख देखते। मीठी बातें तो वह करता है, जिसका कुछ स्वार्थ होता है, जो डरता है, जो प्रशंसा अथवा मान का भूखा रहता है, जो इन बातों से कुछ संबंध नहीं रखता, वह ठीक बातें कहेगा, वे चाहे किसी को भली लगें या बुरी, उसको इसकी चिंता ही क्या! धर्म्मध्वजियों को जो कुछ कहा जाय सब ठीक है, वे इस योग्य नहीं कि उनसे शिष्टता के साथ बर्ताव किया जाय। अनेक धार्मिक और सामाजिक कुसंस्कार सीधी सादी और मार की बातों से दूर नहीं होते, उनके लिये जिह्वा को तलवार बनाना पड़ता है, क्यों कि बिना ऐसा किए कुसंस्कारों का संहार नहीं होता। ये ऐसी प्रत्यक्ष बातें हैं, जो सर्वसम्मत हैं, इनके लिये किसी धर्म्म ग्रंथ का आश्रय सापेक्ष नहीं।

ये बड़ी ही प्यारी और श्रुतिमनोहर बातें हैं, प्रायः धर्म्म संस्कारकों के कार्य्यों का अनुमोदन करने के लिये ऐसी ही बातें कही जाती हैं। मैं भी इनको उचित सीमा तक मानता हूं, परंतु सर्वांश में नहीं। जो आत्म-निर्भर-शील संस्कारक या महात्मा हैं, उनका पद बहुत ऊँचा है, परंतु उनको यह पद उत्पन्न होते ही नहीं प्राप्त हो जाता। माता, पिता, महात्मा जन, और विद्वानों के संसर्ग, नाना शास्त्रों के अवलोकन,

और सांसारिक घटनाओं के घात प्रतिघात के निरीक्षण से, शनैः शनैः प्राप्त होता है। धर्म्म की लहरें संसार में व्याप्त हैं, परंतु वे किसी आधार से हृदय में प्रवेश करती हैं। प्रकृति अपरमित ज्ञान का भांडार है, पत्ते पत्ते में शिक्षापूर्ण पाठ है, परंतु उनसे लाभ उठाने के लिये अनुभव आवश्यक है। अग्नि में दाहिका शक्ति है, पत्थर में हम उसे अविकसित अवस्था में पाते हैं, वह विकसित होती है, किंतु किसी आधार से। धर्म्म की लहरें संसार में व्याप्त हैं, परंतु उनके अंशों के उद्भावनकर्त्ता भी हैं। पृथ्वी आज भी घूमती है, पहले भी घूमती थी, आगे भी घूमती रहेगी, उसमें आकर्षिणी शक्ति पहले भी थी, अब भी है, आगे भी रहेगी। परंतु इन बातों का आविष्कार करके संसार को लाभ पहुँचानेवाले भास्कराचार्य्य इत्यादि आर्य्य विद्वान् अथवा गेलेलियो और न्यूटन हैं। क्या इन आविष्कारकों का संसार को कृतज्ञ न होना चाहिए? जिन आधारों से अग्नि का विकास होता है क्या वे उसके उपकारक अथवा उपयोगी नहीं? इसी प्रकार वह विचारपरंपरा कि जिससे किसी आत्मनिर्भर शील महात्मा की आत्मा विकसित होती है, क्या अनादरणीय और अमाननीय है? क्या वे ग्रंथ जिन्होंने संसार को सब से प्रथम उस विचारपरंपरा से अभिज्ञ किया, इस कारण निंदा के योग्य हैं कि उनके नाम से कई स्वार्थी आत्माएं कदाचार और मिथ्याचार में प्रवृत्त हैं? यदि निंदा योग्य हैं,

ता सत्य का अपलाप हुआ या नहीं? वास्तविकता उपेक्षित हुई या नहीं? और क्या ऐसा करना किसी महान आत्मा का कर्तव्य है? कोई आत्म निर्भर शील महात्मा यदि अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिये एसे ग्रथा की सहायता ग्रहण करे ते उसका कार्य्यपथ और विस्तृत होगा, उसको सुकरता छोड दुरूहता का सामना न करना पडेगा। परतु यदि उस की अप्रवृत्ति होवे तो वह ऐसा नहीं भी कर सकता है, परतु यह कर्तव्य उसका कदाचित होगा कि एक असगत बात के आधार पर या योंही वह उनकी निंदा करने लगें, और उन्हें कुत्सित ठहरावे। आडवरों के बहाने धर्म्म त्याग नहीं, आडवर में पडे धर्म्म का उद्धार ही सदाशयता है। यदि कोई शस्त्र के सहार आत्मघात कर लेवे ते क्या इस से शस्त्र की उपयोगिता अगृहीत हा जानी चाहिए। यदि नहीं ते वेद शास्त्र की निंदा का क्या अर्थ? स्वाधीन चिंता का ते यह दुरुपयोग मात्र है।

झूठे सस्कारों, आडवर मूलक आचार व्यवहारों और, प्रवचना के शास्त्र स्वय विरोधी हैं, किंतु वे समझते हैं कि घाव के लिये मलहम की भी आवश्यकता है, अतएव वे सयत हैं। वे जानते हैं कि वही कठोरता प्रभाव रखती है, जो सहानुभूतिमूलक हो, जहा हृदय का ईर्षा द्वेष ही कार्य्य करता है, वहाँ अमृत भी विष बन जाता है, अतएव वे गंभीर हैं। कदाचार और अपकर्म्म एक साधारण मनुष्य को भी

नंदित बना देते हैं, फिर धर्मयाजकों और धर्मनेताओं को वे निंदनीय क्यों न बनावेंगे। उनके लिये कदाचारी और कुकर्मी होना और लज्जा की बात है, क्यों कि जो प्रकाश फैलानेवाला है, यदि वही अँधेरे में ठोकरें खा खा कर गिरे तो वह दूसरों के लिये उँजाला क्या करेगा। शास्त्र भी इस को समझते हैं, इसलिये मुक्तकंठ से कहते हैं—

कर्मेंद्रियाणि संयम्य आस्ते मनसा स्मरन्।
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवतिनिर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यतस्सुनिर्मलः॥
सर्वेषामेव शौचानामान्त शौंच परं स्मृतम्।
योऽन्तः शुचिर्हि स शुचिः नमृद्वारिशुचिः शुचिः॥
नक्तं दिनं निमज्याप्सु कैवर्त्तः किमु पावनः।
शतशापि तथा स्नातः न शुद्धः भावदूषितः॥
पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित्॥
न गच्छति विना पानं व्याधिरौपधशब्दतः।
विना परोक्षानुभवं ब्रह्म शब्दैर्न मुच्यते॥

मनुष्य का जीवन-समय थोड़ा है, संसार के रहस्य नितांत गूढ़ हैं, ज्ञातव्य बातों की सीमा नहीं, मनुष्य केवल अपने अनु

भव पर निर्भर रह कर अनेक भूलें कर सकता है, अतएव उसको अपने पूर्वज महानुभावों के अनुभवों से काम लेना पड़ता है, उनके सद्विचारों से लाभ उठाने की आवश्यकता है। वेद शास्त्र इत्यादि ऐसे ही अनुभवों और सद्विचारों के सग्रह तो हैं। यदि उनसे कोई लाभ उठाना चाहे लाभ उठा सकता है न उठावे उसकी इच्छा, इसकी कोई शिकायत नहीं, परन्तु उसको यह कहने का अधिकार नहीं कि य समस्त शास्त्र ही मिथ्याचारों के आधार हैं।

मिष्टभाषण, शिष्टता, मितभाषिता, गभीरता, शालीनता—ये सद्गुण हैं, इनकी अवश्यकता जितनी अपने लिये है, औरों के लिये • हीं। मैं यह मानने के लिये प्रस्तुत नहीं कि धर्म्म प्रचारक का धर्म्मप्रचार में कोई स्वार्थ नहीं होता। यह दूसरी बात है कि वह धर्म्मप्रचार और लोकोपकार ही को अपना स्वार्थ मानता है, आत्मसबधी न होने के कारण उसका यह भाव परमार्थ अवश्य कहलाता है। परन्तु स्मरण रहे कि स्वार्थ के लिये मिष्टभाषिता इत्यादि की जितनी अवश्यकता है, उससे कहीं अधिक इनकी आवश्यकता परमार्थ के लिये है। जहा चक्रवर्त्ती नृपाल की शस्त्रधारा कुठित होजाती है, वहाँ महापुरुषों का एक मधुर वचन ही काम कर जाता है। मैं चिरसचित कुसस्कार दूर करने के लिये ओजस्वी और तीव्र भाषण की आवश्यकता समझता हू, परन्तु दुर्वचन और असयत भाषिता की नहीं, क्योंकि ये आदर्श पुरुष के अस्त्र नहीं।

बिना क्रोध हुए दुर्वचन मुख से निकलते नहीं, असंयत भाषण होता नहीं, किंतु क्रोध करना महापुरुष का धर्म्म नहीं। इसके अतिरिक्त मिथ्याचारी एवं कदाचारी का कलुषित-आत्मा होना सिद्ध है, कलुषित आत्मा दया का पात्र है, क्रोध का पात्र नहीं है।

महात्मा सुक़रात एक दिन अपनी शिष्य मंडली के साथ राजमार्ग हो कर कहीं जा रहे थे कि उनके सामने से एक मदांध धनिक पुत्र निकला, और अकड़ता हुआ बिना कुछ शिष्टाचार प्रदर्शन किए चला गया। यह बात उनकी शिष्य मंडली को बुरी लगी, और उन्हें क्रोध आया। इसपर सुक़रात ने कहा, इसमें क्रोध करने की क्या बात है! यह बतलाओ यदि सड़क पर तुमको कोई लँगड़ा मिलता, और पाँव सीधे न रखता, तो तुम लोग उस पर क्रोध करते? लोगों ने कहा नहीं, वह तो लँगड़ा होता, रोग से उसका पाँव ठीक नहीं, फिर वह पाँव सीधे कैसे रखता, वह तो दया का पात्र है। सुक़रात ने कहा इसी प्रकार धनिक पुत्र भी दया का पात्र है, क्यों कि उसकी आत्मा मलिन है, और उसे मद ऐसे कुरोग ने घेर रखा है।

उपदेश के समय चैतन्य देव को दो मुसलमानों ने एक घड़े के टुकड़े से मारा, उनका शिर फट गया, और रुधिर धारा से शरीर का समस्त वस्त्र भींग गया। परंतु उन्हें क्रोध नहीं आया, वे प्यार के साथ आगे बढ़े, और उन दोनों को गले

से लगा कर बोले, 'तुम लोग तो सब से अधिक दया और उपदेश के अधिकारी हो, क्योंकि औरों से तुम लोगों को उनकी अधिक आवश्यकता है।" वे दोनों उनका यह भाव देखकर इतने मुग्ध और लज्जित हुए कि तत्काल शिष्य हो गए, और काल पाकर उनके प्रधान शिष्यों में गिने गए।

धर्मग्रंथों को बुरा कहना, आडंबरों की ओट में धर्म साधन की सुदर पद्धतियों की भी निंदा करना, स्वाधीन-चिंता नहीं है। मानवों की मंगल कामना से, उपकार की इच्छा से, उनमें परस्पर सहानुभूति और ऐक्य सम्पादन, एव भ्रातृभाव उत्पादन के लिये, उन्हें सत्पथ पर आरूढ़, और सद्भावों अथ च सद्विचारों से अभिज्ञ करने के अर्थ, धर्म अथवा मज़हबों की सृष्टि है। 'तुम लोग परस्पर सहानुभूति और ऐक्य रखो, एक दूसरे को भाई समझो, सत्पथ पर चलो, सद्विचारों से काम लो,' केवल इतना कहने से ही काम नहीं चलता, इन उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये कुछ पद्धतियाँ, नियम, और पर्व त्योहार भी, देश काल और पात्र का विचार करके बनाने पड़ते हैं, क्योंकि ये ही सहानुभूति और ऐक्य इत्यादि के साधन होते हैं। ये मनुष्य बुद्धि से ही प्रसूत हैं, अतएव इन में न्यूनता और अपूर्णता हो सकती है, परंतु इन साधारण दोषों के कारण ये सर्वथा त्याज्य नहीं कहे जा सकते। यदि धर्म्म की आवश्यकता है, तो इनकी भी आवश्यकता है। स्वाधीन चिंता का यह काम है कि आवश्यकता-

नुसार वह उनको काटती छाटती रहे, ठीक करती रहे, सकीर्ण स्थानों को विस्तृत बनाती रहे, उसका यह काम नहीं है कि उनको मटियामेट करदे, और उनके स्थान पर कोई उससे निम्न कोटि की पद्धति इत्यादि भी स्थापन न करके समाज को उच्छृंखल करदे। कोई कहते हैं कि किसी धर्म्म या मजहब की आवश्यकता ही क्या? किंतु इस बात के कहने के समय पूरी चिंताशीलता का परिचय नहीं दिया जाता। सदाचार, ईश्वर विश्वास और शील की आवश्यकता मनुष्य मात्र को है, जो ईश्वर विश्वासी नहीं हैं, सदाचार और सत्शील का समादर वे भी करते हैं, वरन दृढता से करते हैं, मजहब इन्हीं बातों की शिक्षा तो देते हैं फिर मजहब की आवश्यकता क्यों नहीं? धर्म्म के सार्वभौम सिद्धांत सब मजहबों में पाए जाते हैं, क्योंकि उन सबका उद्‌गम स्थान एक है, तारतम्य होना स्वाभाविक है, परन्तु सब मजहबों में वे इतनी मात्रा में मौजूद हैं कि मनुष्य उनके द्वारा सदाचार इत्यादि सीख सके। देशाचार, कुलाचार, अनेक सामाजिक रीति रस्म-सदाचार इत्यादि के बाहरी आवरण मात्र हैं, उनकी आवश्यकता एकदेशीय है, अनेक दशाओं में वे उपेक्षित हो जाते हैं, किंतु धर्म्म के सार्वभौम सिद्धांत मनुष्य मात्र के लिये आवश्यक हैं और ऐसी अवस्था में कोई विद्वान् या महात्मा यह नहीं कह सकता कि उसका कोई धर्म्म नहीं। वास्तविक बात तो यह है कि ससार की कोई वस्तु बिना धर्म्म के नहीं है। हम

लोग वैदिक मार्ग को इसीलिए धर्म्म के नाम से अभिहित करते हैं, मज़हब और रिलिजन संज्ञा इतनी व्यापक नहीं हैं। वैदिक धर्म्म में अधिकारी भेद है, इसलिये वह पात्र के अनुसार धर्म्म की व्यवस्था करता है, साथ ही यह भी कहता है—

> सक्ताः कर्मण्य विद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
> कुर्य्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥
> केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः।
> युक्तिहीनविचारेण धर्म्महानिः प्रजायते॥
> युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
> अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना॥

अनन्त शास्त्रम् बहुवेदितव्यम् स्वल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः। यत् सारभूतम् तदुपासितव्यम् हंसः यथाक्षीरमिवाम्बुमिश्रम्॥

स्वाधीन चिंता यही तो है? एक धर्म्म होने के कारण ही वेद शास्त्र के सिद्धांत अधिक उदार हैं, इसी से वह कहता है कि प्राणी मात्र मोक्ष का अधिकारी है, किसी समाज देश या मज़हब का मनुष्य क्यों न हो, जिसमें सदाचार है, धर्म्मपरायणता है, ईश्वर-विश्वास है, वह अवश्य मुक्त होगा। वह समझता है, परमात्मा घटघट व्यापक है, अंतर्यामी है, यदि उसे कोई राम, हरि, इत्यादि शब्दों से उद्बोधन न करके गाड, या अल्लाह इत्यादि शब्दों से उद्बोधन करता है, तो क्या परमात्मा उसकी भक्ति को अग्रहात

करेगा ? उसको चाहे जिस नाम से पुकारें, यदि सच्चे प्रेम से, भक्ति-गद्गद-चित्त से पुकारेंगे तो वह अवश्य अपनावेगा। कोई सत्य बोलता है, परोपकार करता है, सदाचारी है, परदुःखकातर है, लोकसेवा-परायण है, धर्म्मात्मा है, तो परमात्मा उसे अवश्य अंक में ग्रहण करेगा। उससे यह न पूछेगा, कि तू हिंदू है या मुसल्मान, या क्रिश्चियन या बौद्ध या अन्य। यदि वह ऐसा करे तो वह जगत्पिता नहीं, जगन्नियंता नहीं, विश्वात्मा नहीं, सर्वव्यापक नहीं, सर्वांतरात्मा नहीं, न्यायी नहीं। जिसका सिद्धांत इसके प्रतिकूल है, उसका वह सिद्धांत किसी मुख्य उद्देश्य का साधक हो सकता है, परंतु वह उदार नहीं है, व्यापक नहीं है; अनुदार अपूर्ण और अव्यापक है। हिंदूधर्म्म उस पर आक्रमण नहीं करता, वह जानता है भगवान भुवनभास्कर के अभाव में दीपक भी आदरणीय है। संसार को मुग्ध करता हुआ यह जगत्पिता की ओर प्रवृत्त होकर उच्च कंठ से यही कहता है—

"रुचीनां वैचित्र्यात् कुटिलऋजुनानापथयुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णवमिव"॥

साथ ही एक पवित्र ग्रंथ से यह ध्वनि होती है—

ये यथा मां प्रपद्यंते तां तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

स्वाधीन चिंते तेरा मुख उज्वल हो, तुझ से ही प्रसूत तो

ये सद्विचार हैं, इससे उच्च स्वाधीन चिंता क्या है, मैं यह नहीं जानता।

सत मत

सत मत क्या है ? तत्त्वज्ञता। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं 'मधुकर सरिस संत गुनग्राही', 'संतहंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार'। इसी की प्रतिध्वनि हम मौलाना रूम के इस शेर में सुनते हैं—मन जे कुरआं मग़ज़रा बरदाश्तम। उस्तखा पेशे सगा अंदाख्तम। मैंने कुरान से मग़ज़ ले लिया और हड्डी कुत्तों के सामने डाल दी। आँखवाले के लिये पेड़ का एक एक पत्ता भेदों से भरा है, जिसमें विवेक बुद्धि नहीं उसके लिये संसार के समस्त धर्मग्रंथों में भी कुछ सार नहीं। धर्म के साधनों को आडंबर कह कर हम उनसे घृणा कर सकते हैं, परंतु तत्त्वज्ञ की दृष्टि उसके तत्त्व को नहीं त्याग करती। विवेकशील कीचड़ में पड़े रत्न को भी ग्रहण करते हैं कीचड़ लिप्त होने के कारण उसे अग्राह्य नहीं कहते।

कबीर साहब ने एक शब्द में (देखो शब्द १६०) कहा है, कि जिनके जी में नाम नहीं बसा है, उनके पुस्तक पढ़ने सुमिरनी लेने, माला पहनने, शंख बजाने, काशी में बसने, गंगाजल पीने, व्रत रखने, तिलक देने से क्या होगा ? ऐसे शब्दों को पढ़कर लोग यह समझते हैं कि इनमें पुस्तक पढ़ने इत्यादि का खंडन है, किंतु वास्तव में ये शब्द खंड

नात्मक नहीं हैं। इसी शब्द को देखिए इस में कहा है कि जिनके जी में नाम नहीं बसा है, अर्थात् परमात्मा की भक्ति करना या धर्म्म करना जिनका उद्देश्य नहीं है, उनके पुस्तक इत्यादि पढ़ने से क्या होगा? सिद्धांत यह है कि पुस्तक पढना, माला पहनना, सुमिरनी लेना, इत्यादि धर्म्म के साधन हैं, धर्म्म के उद्देश्य से यदि ये सब क्रियाएँ की जावें तब तो ठीक है, उचित है, किंतु यदि इनको धर्म्म साधन के स्थान पर अधर्म्म का साधन बना दिया जाय, इनके द्वारा लोगों को ठगा जाय, छल प्रपच किया जाय, पेट पाला जाय, तो इन कर्म्मों के करने से क्या होगा? समस्त हिंदू शास्त्रों का यही सिद्धांत है, कबीर साहब भी ऐसे शब्दों में यही कहते हैं। शब्द १८८ तथा १६६ ध्यानपूर्वक पढ़िए। वे कभी कभी ऐसा भी कह जाते हैं कि 'योग यज्ञ जप सयमा तीरथ ब्रत दाना, भूठे का बाना है परंतु यह उनका गौण विचार है। यदि योग का खडन उनको अभिष्ट होता, तो व्यापक भाव से इसे परमात्मा की प्राप्ति का साधन वे न बतलाते (देखो शब्द २८—३२)। इसी प्रकार शील क्षमा, उदारता, सतोष, धैर्य्य इत्यादि शीर्षक दोहावली में आप सयम और दान आदि का गुणगान देखेंगे। इन सब विषयों में कबीर साहब की विचार परपरा सर्वांश में हिंदू-भावापन्न है। किंतु चौरासी अग की साखी में उन्होंने 'तीरथ ब्रत का अग' और 'मूरत पूजा का अग' शीर्षक देकर इन सिद्धांतों का खडन किया है, उनको

स्फुट रीति से हिंदू मुसलमानों के कतिपय छोटे छोटे धर्म साधनों पर भी आक्रमण करते देखा जाता है। मैं इन में से कतिपय विषयों को लेकर देखना चाहता हूं कि वास्तव में इनमें कुछ तत्त्व है या नहीं। यह कहा जा सकता है कि कबीर साहब ने हिंदू मुसलमानों के अनेक सिद्धांतों में से जिनमें अधिक तत्त्व देखा, उनको ग्रहण कर लिया, शेष को छोड़ दिया। इस विषय में उन्होंने तत्त्वज्ञता ही का परिचय तो दिया है। किंतु निवेदन यह है कि उन्होंने उनको छोड़ा ही नहीं, उनका खडन भी किया है, उनको निस्सार बतलाया है, अतएव मैं यही देखना चाहता हूं कि वास्तव में उनमें कुछ सार या तत्व है या नहीं। तीर्थ के विषय में वे कहते हैं—

> तीरथ गये ते बहि मुये जूड़े पानी न्हाय।
> कह कबीर सतो सुनो राछस है पछिताय॥
> तीरथ भै विसवेलरी रही युगन युग छाय।
> कबिरन मूल निकंदिया कौन हलाहल खाय॥

कबीर बीजक पृष्ठ ६०१,६०२

क्या वास्तव में तीर्थ जाने से राक्षस होना पड़ता है ? क्या वास्तव में वह विष की बेलि है ? उसका सेवन हलाहल खाना है ? क्या कबीरपंथियों की भांति उसकी जड़ ही काट देनी चाहिए ? किंतु हम देखते हैं कि 'कबिरन' ने भी उसकी जड़ नहीं काटी, काशी का कबीरचौरा और मगहर कमी

तीर्थ स्थान नहीं थे, किंतु कवीरपन्थियों ने ही आज इन्हें तीर्थ स्थान बना दिया, क्यों ? इसलिये कि एक में उनके गुरु का जन्मस्थान है ! और दूसरे में उनके तमोमय हृदय को ज्योतिर्मय बनानेवाले किसी महापुरुष का स्मृतिचिह्न है !! वहां आज भी उनके सम्प्रदाय के विज्ञानी और विचारवान पुरुष समय समय पर पधारते रहते हैं, कि जिनसे उनके पंथ का जीवन है। वहां पहुँचने पर प्राय उनके सत्संग का सौभाग्य प्राप्त होता है, जिससे हृदय का कितना तम विदूरित होता है, और पहुँचनेवालों को वे अवसर प्राप्त होते हैं, जो उन्हें घर बैठे किसी प्रकार न प्राप्त होते। ये वर्ष में एक वार उस पंथ के महात्माओं के मिलन के केंद्र हैं, जो एकत्रित होकर न केवल विचार परिवर्त्तन करते हैं, वरन अपने पंथ को निर्दोष बनाने के विषय में परामर्श करते हैं और यह सोचते हैं कि किस प्रकार उसको समुन्नत और सुशृङ्खल बनाया जाय। ऐसे अवसर पर जनसाधारण को और उनके पंथ के लोगों को उनके द्वारा जो लाभ पहुंचता है, वर्ष में फिर कभी वैसा अवसर हाथ नहीं आता। इनमें कौनसी बात बुरी है, कि जिसके लिये इन स्थानों के उत्पन्न करने की आवश्यकता न समझी जाय, या इनको विष हलाहल कहा जाय। सम्पूर्ण तीर्थों का उद्देश्य यही तो है ? किसी महान उद्योग या धर्म्म संघट्ट का कार्य्य उस समय तक कदापि उत्तमता से नहीं हो सकता, जब तक कि उसके लिये कुछ स्थान प्रधान केंद्र

की भांति न नियत किए जांय। तीर्थ ऐसे ही स्थान तो हैं? संसार में कौन जीवित जाति और सप्राण धर्म्म है जो अपने उन्नायकों और पथप्रदर्शकों की जन्मभूमि अथवा लीलाक्षेत्र या तपस्थान को आदर और सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते? उनकी सजीवता और सप्राणता की जड़ उसी वसुंधरा की रज तो है, फिर उनमें उनकी प्रतिष्ठाबुद्धि क्यों न होगी? जिस दिन यह प्रतिष्ठाबुद्धि उनके हृदय से लोप होगी, उसी दिन उनकी सजीवता और सप्राणता लोकांतरित होगी। क्योंकि उनमें परस्पर ऐसा ही घना संबंध है। यदि इसमें देशाटन की उपकारिता मिला ली जाय, तो उसका महत्त्व और अधिक हो जाता है। फिर तीर्थों के रसातल पहुंचाने का क्या अर्थ? तीर्थ के उद्देश्यों के समझने में जन समुदाय का भ्रांत हो जाना संभव है, तीर्थों का कतिपय अविवेकियों के अपकांडताडव से कलुषित और कलंकित हो जाना असंभव नहीं परंतु इन कारणों से तीर्थों को ही नाश कर देना समुचित नहीं, अन्यथा संस्कारकों की समाज को आवश्यकता ही क्या है? शास्त्र यह समझते हैं कि—

> तपस्तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
> सर्वभूतदयातीर्थं ध्यानतीर्थमनुत्तमम्॥
> एतानि पंचतीर्थानि सत्यं षष्ठं प्रकीर्तितम्।
> देहे तिष्ठन्ति सर्वस्य तेषु स्नानं समाचरेत्॥
> दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।

ब्रह्मचर्य्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

—महाभारत।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु स सर्वमलवर्जितः ।
तेन क्रतु शतैरिष्टं चेतो यस्य हि निर्मलम् ॥

—काशीखण्ड।

वे यह भी जानते हैं—

भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः ।
निर्मलो न मनो यावत् तावत् सर्वं निरर्थकम् ॥
यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते ।
भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुध्यति ॥

—देवी भागवत।

तथापि व्यासस्मृतिका यह वचन है—

नृणां पापकृतां तीर्थं पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥

यथार्थ बात यह है कि, जो शुद्धात्मा हैं, तीर्थ का यथोक्त फल उन्हीं को मिलता है, परन्तु पापी जन का पाप भी तीर्थ में शमन होता है। पापियों को वहां सत्संग का, ज्ञानार्जन का, विचार परिवर्तन का अवसर मिलता है, इसलिये उनके पाप की निवृत्ति क्यों न होगी? किंतु भाव दुष्ट न होना चाहिए, तीर्थ में तीर्थ करने के उद्देश्य से जाना चाहिए, फिर

फल की प्राप्ति क्यों न होगी ? हां ! किसी की चित्तवृत्ति ही पाप की ओर हो तो उसको लाभ कैसे होगा ? ऐसे पुरुष के लिये कोई सद्वस्तु ही उपकारक नहीं हो सकती। जल संसार का जीवन है, उसे यदि कोई अनुचित रीति से पीकर अथवा व्यवहार करके प्राण दे दे तो इस में जल का क्या दोष ! उसके ऐसा करने से जल निंदनीय नहीं ठहराया जा सकता, प्रत्येक पदार्थ का उचित व्यवहार ही श्रेयस्कर होता है, तीर्थ के विषय म भी यही बात कही जा सकती है, और यही तत्वज्ञता है।

अब मूर्तिपूजा को लीजिए। कबीर साहब कहते हैं—

पाहन पूजे हरि मिलैं तो मैं पुजूं पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार॥
पाहन केरी पूतरी करि पूजै करतार।
वाहि भरोस मत रहो बूडो कालीधार॥

साखी संग्रह पृष्ठ १८३

अब मैं यह देखूंगा कि क्या वास्तव में मूर्तिपूजा में कुछ तत्व नहीं है। मुसल्मान धर्म्म का अनुसरण ही क्या कबीर साहब ने इस विषय में किया है। इसलिये पहले मैं कुछ प्रतिष्ठित और मान्य मुसल्मानों की सम्मति इस विषय में यहाँ लिखूंगा, हज़रत मिर्ज़ा मज़हर जानेजानां दिल्लीनिवासी कथन करते हैं—

در حقیقت بت پرستی اینها مناسبے به عقیده کفار عرب ندارد

"वास्तव में इनकी मूर्तिपूजा अरब के काफ़िरों के विश्वास से कोई संबंध नहीं रखती, वे मूर्तियों को स्वयं व्यापक और शक्तिमान कहते हैं. न कि ईश्वरोपासना का साधन (जैसा कि हिंदुओं का विचार है)। वे इनको पृथ्वी का ईश्वर मानते हैं, और परमेश्वर को आकाश का, और यह शिर्क (द्वैत) है।

मसनवी गुलशनज़ार में महमूद शबिस्तार ने कहा है "अगर मुसलमान दरअस्ल बुतकी माहियत समझ सकता, तो उसके लिये इस बात का जानना मुशकिल नहीं था, कि बुतपरस्ती भी सच्चा मज़हब है"।

आर्य्यगज़ट जिल्द १० नं० १६ सफ़हा ६ मतबूआ १० मई सन् १६०६

एक पत्थर चूमने को शेख़ जी का याग ये।
ज़ौक़ हर बुत क़ाबिले बोसा है इस बुतख़ाने में॥—ज़ौक़
न देखा दैर में तो क्या हरम में देखेगा।
वह तेरे पेश नज़र याँ नहीं तो वाँ भी नहीं॥
दुई का पर्दा उठा दिल से और आँख से देख।
ख़ुदा के नूर को हुस्ने बुताँ के पर्दे में॥—ज़फ़र

अब कुछ अन्य अनुमतियों को भी देखिए, श्रीमान ग्रियर्सन साहब अपने उक्त धर्म्मेतिहास में लिखते हैं—

"हिंदुओं में बहुदेववाद और मूर्तिपूजा है, किंतु वह उनके गम्भीरतर धर्म्म मत का केवल आवरण मात्र है।

प्रवासी दशम भाग पृष्ठ ५३८

बाबू मन्मथनाथदत्त एम. ए., एम. आर. ए. एस. लिखते हैं—

"दरख्त को उसके फलों से पहचानते हैं, हमने उन आदमियों में जिन्हें बुतपरस्त कहा जाता है, वह शराफत वह ख़ुलूस-इरादत, और रुहानी इश्क देखा जो और कहीं नहीं पाया जाता, तो खुद अपने दिल में सवाल किया, 'क्या गुनाह से नेकी पैदा हो सकती है ?''

"हिंदुओं के मजहब का असल उसूल ख़ुदशिनाशी है, ख़ुदाशिनाशी से इंसान ख़ुदा हो जाता है। लिहाज़ा बुत, सनमख़ाना, कलीसा, किताबें इंसान की मुई और उसके रुहानी लड़कपन का मददगार हैं, इन्हीं के जरिये से वह आगे आगे तरक्की करता जावेगा"।

रहनुमायान हिंद पृ. १८ १६

हम को यहाँ मूर्तिपूजा का प्रतिपादन नहीं करना है, हमने इन वाक्यों को यहां इस लिये उठाया है कि देखें हिंदुओं की मूर्त्तिपूजा में औरों को कुछ तत्त्व दृष्टिगत होता है या नहीं। मूर्त्तिपूजा हिंदुओं का प्रधान धर्म्म नहीं है। शास्त्र कहता है—

उत्तमं ब्रह्मसद्भावो मध्यमं ध्यानधारणा।
स्तुतिप्रार्थनाधमा ज्ञेया बाह्यपूजाधमाधमा॥

ब्रह्म सद्भाव उत्तम, ध्यानधारणा मध्यम, स्तुति प्रार्थना अधम, और बाह्यपूजा अर्थात् किसी मूर्ति इत्यादि को सामने रख कर उपासना करना अधमाधम है। भागवत ऐसा परम वैष्णव ग्रंथ कहता है "प्रतिमा अल्पबुद्धीनाम् सर्वत्रविजितात्मनाम्" प्रतिमा अल्प बुद्धियों के लिये है, क्योंकि विजितात्माओं के लिये परमात्मा सर्वत्र है। प्रतीक उपासना का आभास वैदिक और दार्शनिक काल में मिलता है, किंतु प्रतिमापूजा बौद्ध काल और उसके परवर्त्ती काल से हिंदुओं में केवल समाज की मंगलकामना से गृहीत हुई है। जो और साधनाओं द्वारा परमात्मा की उपासना नहीं कर सकता, उसके लिये ही प्रतिमापूजा की व्यवस्था है। यदि विद्वान और ज्ञानियों को प्रतिमापूजन करते देखा जाता है, तो उसका उद्देश्य लोक संरक्षण मात्र है, क्योंकि बुद्धि भेद, सर्वसाधारण को भ्रान्त कर सकता है। भारतवर्ष के धर्म्मनेताओं ने हिंदूधर्म्म के प्रधान और व्यापक सिद्धांतों पर आरूढ होकर सदा इस बात की चेष्टा की है कि धर्म्मांधता से किसी तत्व का तिरस्कार न हो। यदि कोई कार्य्य सद्बुद्धि और सदुद्देश्य से किया जाता है, तो उस पर उन्होंने बलात् दोषारोपण करना उचित नहीं समझा। वे समझते थे कि संसार में समस्त मानव ही समान विचार के नहीं हैं, वे देखते थे कि

बुद्धि का तारतम्य स्वाभाविक है, इसीलिये उन्होंने अधिकारी भेद स्वीकार किया। उन्होंने उन सोपानों को नहीं तोड़ा जो ऊंचे चढ़ने के साधन हैं, किंतु यह अवश्य देखा कि किस सोपान पर चढ़ने का अधिकारी कौन है। उन्होंने विभिन्न विचारों, नाना आचार व्यवहारों, और अनेक उपासना पद्धतियों में सामञ्जस्य स्थापन किया, अनेक में एक को देखा, विरोध में अविरोध की महिमा दिखलाई, और दूसरों के अभावमयी वृत्ति को भावमयी बना दिया। उनको अनेक कंटकाकीर्ण पथों में चलना पड़ा, उनके सामने अनेक भयंकर प्रवाह आए उन्होंने सामयिक परिवर्त्तनों की रोमांचकरी मूर्तियां देखीं, उन्होंने अनार्य्यों की अभद्र कल्पनाएँ अवलोकन कीं, किंतु सबको सहानुभूति के साथ आलिंगन किया, और सब में उसी सर्वव्यापक की सत्ता स्थापित की। असाधारण प्रतिभावान विद्वान् श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर ब्रह्मसमाजी हैं, प्रतिमापूजक नहीं, किंतु वे क्या कहते हैं सुनिए—

"विदेशी लोग जिसे मूर्तिपूजा या बुतपरस्ती कहते हैं, उसे देखकर भारतवर्ष डरा नहीं, उसने उसे देखकर नाक भौं नहीं सिकोड़ी। भारतवर्ष ने पुलिन्दशबर व्याध आदि से भी वीभत्स सामग्री ग्रहण करके उसे शिव (कल्याण) बना लिया है—उसमें अपना भाव स्थापित कर दिया है—उसके भीतर भी अपनी आध्यात्मिकता को अभिव्यक्त कर दिखाया

है। भारत ने कुछ भी नहीं छोड़ा, सब को ग्रहण करके अपना बना लिया।"

सरस्वती भाग १५ खंड १ स० ६ पृ ३०६

यही तो तत्त्वज्ञता है, यही तो धार्मिकता है। कबीर साहब किसी मुल्ला को मस्जिद में बांग देते देखते हैं तो कहते हैं—

कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई चुनाय।
ना चढ़ि मुल्ला बाँगदे (क्या) बहिरा हुआ खोदाय॥

परन्तु क्या मुल्ला के बांग देने का यही अभिप्राय है, कि वह समझता है कि खुदा बिना गला फाड़ कर चिल्लाए उसकी प्रार्थनाओं को न सुनेगा? यह तो उसका अभिप्राय नहीं है। उसकी बाँग का तो केवल इतना ही अर्थ है कि वह बाँग द्वारा अपने सहधर्म्मियों को ईश्वरोपासना का समय हो जाने की सूचना देता है, और उनको ईश्वर की आराधना के लिये सावधान करता है, फिर उस पर यह व्यंग्य करना कि क्या खुदा बहरा है जो वह यों चिल्लाता है, कितना असंगत है।

परमहंस रामकृष्ण का पवित्र नाम भारत में प्रसिद्ध है, उन्नीसवीं शताब्दी के आप भारतभूमि के आदर्श महात्मा हैं। सुविख्यात विद्वान् और दार्शनिक श्रीयुत मैक्समूलर ने एक स्थान पर कहा है कि "यदि कहीं एकाधार में ज्ञान और भक्ति का समान रूप से विकाश दृष्टिगत हुआ तो पर-

महंस रामकृष्ण में" ऐसे महापुरुष पर बाँग का अद्भुत प्रभाव होता। जब कभी इस महात्मा के कानों में, पवित्र गिरजाघरों के उपासना कालिक घटों की लहर, या पुनीत मंदिरों में ध्वनित शखों का निनाद, या पाक मसजिद से उठी मुल्ला की बाँग, पड़ती, तो इस प्रबलता से उनके हृदय में भक्ति का उद्रेक होता कि राह चलते समाधि लग जाती। क्यों ऐसा होता, इसलिये कि उनको उस ध्वनि, निनाद और बाँग में ईश्वर प्रेम की एक अपूर्व धारा मिलती।

कबीर साहब कहते हैं—

हिंदु एकादसि चौबिस रोजा मुसलिम तीस बनाये।
ग्यारह मास कहो किन टारो ये केहि माँहिं समाये॥
पूरब दिशि में हरि को बासा पश्चिम अलह मुकामा।
दिल में खोज दिलै में देखो य है करीमा रामा॥
जो खोदाय मसजिद में बसत है और मुलुक केहि केरा।

क. बी. पृ ३==

हिंदुओं की चौबीस एकादशी और मुसल्मानों के तीस रोज़ा का यह अर्थ नहीं है कि ऐसा करके वे शेष ग्यारह महीने को व्यर्थ सिद्ध करते हैं, यदि कोई बराबर तीन सौ साठ दिन अपना धर्म्म कृत्य नहीं कर सकता, या यदि कुछ ऐसे धर्म्म कृत्य हैं जो लगातार तीन सौ साठ दिन नहीं हो सकते, तो उनके लिये यदि कुछ विशेष दिन नियत किए जांय तो क्या यह युक्तिसंगत नहीं? यदि हिंदू एवं मुस

और मुसलमान पश्चिम मुख बैठ कर उपासना करता है, तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह परमात्मा का ध्यान हृदय में नहीं करना चाहता, वह पूर्व या पश्चिम मुख बैठ कर यही तो करता है ! उपासना काल में उसे किसी मुख बैठना ही पड़ेगा, फिर यदि उसने कोई मुख्य दिशा उपासना को सुलभ करने के लिये नियत कर ली तो इसमें क्षति क्या? मसजिद, मन्दिर, गिरजा बनाने का यह अर्थ नहीं है कि ऐसा करके सर्व-स्थल निवासी परमात्मा की व्यापकता अस्वीकार की जाती है, उपासना की सुकरता ही उनके निर्माण का हेतु है, जो सर्वव्यापक भाव से उपासना नहीं कर सकता उसके लिये स्थान विशेष नियत कर देना क्या अल्पज्ञता है ? धर्मकृत्यों के पुनीत दिनों को छोड़ दीजिए, उपासना के लिये कोई समय और पद्धति न नियत कीजिए मसजिद, मन्दिर, गिरजाघरों को तुड़वा डालिए, देखिए देश और समाज का कितना उपकार होता है ? वास्तव में इन बातों में कुछ तत्व है, तब यह प्रणाली सर्वसम्मत है । व्यासदेव कहते हैं —

> रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यद्कल्पितम् ।
> स्तुत्या निर्वचनीयता खिल गुरो दूरीकृता यन्मया ।
> व्यापित्वञ्च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना ।
> क्षंतव्यं जगदीश तद्विकलता दोषत्रयं मत्कृतम् ॥

हे परमात्मन् ! तुम अरूप हो परन्तु ध्यान द्वारा मैंने तुम्हारे रूप की कल्पना की, स्तुति द्वारा तुम्हारी अनिर्वच-

नीयता दूर की, तीर्थयात्रा करके तुम्हारी व्यापकता निरादृत की, अतएव तुम इन तीनों विकलता (अस्वाभाविकता या असपूर्णता) दोषों को क्षमा करो। किंतु इतना ज्ञान होने पर भी उन्होंने ध्यान किया, स्तुति और तीर्थयात्रा की, तब तो क्षमा माँगने की आवश्यकता हुई। क्यों की ? इसलिये कि उपासना का मार्ग यही तो है। ध्यानधारणा भी सदोष, स्तुतिप्रार्थना भी सदोष, मूर्त्तिपूजा भी सदोष, फिर उपासना परमात्मा की कैसे हो ? आप कहेंगे उपासना की आवश्यकता ही क्या ? ब्रह्म सद्भाव ही ठीक है, जो कि उत्तम और निर्दोष है। परंतु ब्रह्म सद्भाव दस पाच करोड मनुष्यों में भी किसी एक को होता है, फिर शेष लोग क्या करें ? वही ध्यान धारणा, स्तुतिप्रार्थना आदि उनको करनी ही पडेगी, चाहे वह सदोष हो, परंतु इसी क्रिया द्वारा उनको परमपुरुष की प्राप्ति होगी। अध्यापक रेखागणित की शिक्षा के लिये खडा होकर एक रेखा खींचता है, और एक बिंदु बनाता है और कहता है देखो यह एक खडी रेखा है, और यह एक बिंदु है। परंतु वास्तव में रेखा और बिंदु की परिभाषा के अनुसार न तो वह रेखा है और न यह बिंदु। किंतु उसी कल्पित रेखा और बिंदु के आधार से शिष्य अंत में रेखा गणित शास्त्र में पारंगत होता है, उसी प्रकार कल्पित धर्म साधनों से परमात्मा की प्राप्ति होती है। जैसे उस सदोष रेखा और बिंदु का त्याग करने से कोई रेखागणित नहीं

सीख सकता, उसी प्रकार धर्म्म के कल्पित साधनों का त्याग करने से चाहे वह किसी अंश में सदोष ही क्यों न हों, कोई परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता, और यही तत्त्वज्ञता है।

धर्म्मग्रंथों और धर्म्मसाधनों के बंधन से स्वतन्त्रता प्रदान मूलक विचार प्यारा लगता है, क्योंकि मनुष्य स्वभाव से स्वतन्त्रताप्रिय है। वह बंधन को अच्छी आँख से नहीं देखता, जहाँ तक उसको बंधन छिन्न करने का अवसर हाथ आवे, उतना ही वह आनंदित होता है। किंतु बंधन ही समाज और स्वयं उसकी आत्मा और शरीर के लिये हितकर है। वह आहार विहार में ही उच्छृंखलता ग्रहण करके देखे क्या परिणाम होता है। जैसे राजनियमों का बंधन छिन्न होने पर देश में विप्लव हो जाता है, उसी प्रकार धर्म्मनियमों का बंधन टूटने पर आध्यात्मिक जगत में विप्लव उपस्थित होता है। अतएव धर्म्मग्रंथों और धर्म्मसाधनों को बंधन कहकर उनसे सर्वसाधारण को मुक्त करने की उत्कंठा से उसके तत्त्वों की ओर उनका दृष्टि आकर्षण विशेष उपकारी है।

मेरा विचार है कि कबीर साहब अंत में वेदांत धर्म्मावलंबी हो गए थे। इस ग्रंथ के वेदांतवाद शीर्षक शब्दों को पढ़िए, देखिए उनमें विचार की कितनी प्रौढ़ता है, बिना पूर्ण तथा उस सिद्धांत पर आरूढ़ हुए विचार में इतनी प्रौढ़ता नहीं आसकती। प्रोफेसर वी वी राय लिखते हैं—

"कबीरपंथियों की मुख़्तलिफ़ किताबों से और आदि ग्रंथ में जो कबीर की बातें इक्तियास हैं, उनसे साफ़ ज़ाहिर होता है कि कबीरपंथी तालीम वेदांती तालीम की एक दूसरी सूरत है। इस अम्र में सूफ़ियों से भी उनको बड़ी मदद मिली, क्योंकि दोनों तालीम क़रीब यकसां हैं।"

"आदि ग्रंथ में जो कबीर की बातें पाई जाती हैं, उनसे ज़ाहिर होता है कि आवागौन, ब्रह्म, माया, मुक्ति और ब्रह्म में लीन हो जाने की निस्वत कबीर की तालीम वही है, जो वेदान्ती लोग देते हैं"।

संप्रदाय पृष्ठ ६६

वैष्णव और वेदांतधर्म्म दोनों प्रकांड वैदिक धर्म्म अर्थात् हिंदूधर्म्म की विशाल शाखाएँ हैं। यह वही उदार और महान धर्म्म है कि जिससे वसुंधरा के समग्र पुनीत ग्रंथों ने कतिपय व्यापक सार्वभौम सिद्धांतों को संग्रह कर के अपने अपने कलेवर को समुज्वल किया है। कबीर साहब चाहे वैष्णव हों या वेदांती, चाहे संत मत के हों, चाहे अपने को और कुछ बतलावें, किंतु वे भी उसी धर्म्म के ऋणी हैं, और उसी के आलोक से उन्होंने अपना प्रदीप प्रज्वलित किया है।

शेषवक्तव्य

श्रीयुत मैक्समूलर जैसे असाधारण विदेशी विद्वान् और श्रीमती एनी बेसेंट जैसी परमविदुषी विजातीय महिला

ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि हिंदूधर्म्म के सिद्धांत बहुत ही उदार, व्यापक, और सर्व देश-दर्शी हैं। वास्तव में जैसे ही हिंदूधर्म्म के सिद्धांत महान और गंभीर हैं, वैसे ही पूर्ण सार्वभौम और सार्वजानिक भी हैं। वैशेषिक दर्शन के निम्नलिखित सूत्र जैसी व्यापक और उदात्त परिभाषा धर्म्म की कहाँ मिलेगी।

यतोऽभ्युदयनि श्रेयस सिद्धि स धर्म्म

जिससे अभ्युदय और कल्याण अथवा परमार्थ की सिद्धि हो वह धर्म्म है।

हिन्दू धर्म्म को छोड कर कौन कह सकता है—

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानातु वसुधैव कुटुम्बकम॥

यह अपना और यह पराया है, यह लघुचेतसों का विचार है, जो उदारचरित हैं वसुधा ही उनका कुटुम्ब है। क्या इस से भी बढ़कर भ्रातृभाव की कोई शिक्षा हो सकती है? हिंदूधर्म्म इससे भी ऊंचा उठा उसने भ्रातृभाव में कुछ विभेद देखा अतएव मुक्तकंठ से कहा 'आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पंडित' मनुष्य मात्र ही की नहीं सर्व भूत की आत्मा को जो अपनी आत्मा समान देखता है, वही पंडित है। एक धर्म्मवाला दूसरे धर्म्म को बाधा पहुँचा कर ही आत्मप्रसाद लाभ करता है, परन्तु हिंदूधर्म्म इसको युक्तिसंगत नहीं समझता, वह धीर गंभीर भाव से कहता है।

धर्म्मः यो बाधते धर्म्मं न स धर्म्म• कुधर्म्म तत् ।
धर्म्माविरोधी यो धर्म्म• स धर्म्म• सत्यविक्रम ॥

जो धर्म्म दूसरे धर्म्म को बाधा पहुँचाता है, वह धर्म्म नहीं कुधर्म्म है, जो धर्म्म दूसरे धर्म्म का अविरोधी है सत्य पराक्रम शील धर्म्म वही है। इतना ही नहीं वह अपना हृदय और उदार एवं उन्नत बनाकर कहता है—

रुचीनाम् वैचिञ्यात् कुटिलऋजुनानापथयुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णवमिव ॥

नाना प्रकार की रुचि होने के कारण ऋजु और कुटिल नाना पथ भी हैं, किंतु हे परमात्मा सब का गम्य तू ही है, जैसे सर्व स्थानों से जल समुद्र में ही पहुँचता है। उसी के शास्त्र समूह का, विश्व प्रेम का आधार स्वरूप यह वाक्य है—

सर्वे भवतु सुखिन• सर्वे संतु निरामया• ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दु•खभाग् भवेत् ॥

सब सुखी हों, सब सकुशल रहें, सबका कल्याण हो, कोई दुःखभागी न हो। वही ससार के सम्मुख खड़े होकर तार स्वर से कहता है—

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिंतयेत् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

जो जो अपनी आत्मा के लिये चाहते हो वही दूसरों के लिये भी चाहो, जिसको अपनी आत्मा के प्रतिकूल समझते हो उसको दूसरों के लिये मत करो। इतना लिखकर मैं

आप लोगों का ध्यान कबीर साहब की शिक्षाओं की ओर आकर्षित करता हूँ। हिंदूधर्म के उक्त विचारों की सार्थकता तभी है जब हम लोग भी वास्तव में उनके अनकूल चलने की चेष्टा करें, यदि हम उन विचारो को सामने रखकर केवल गर्व करते हैं, और उसके अनकूल आचरण करना नहीं चाहते, तो न केवल हम लोग अपनी आत्मा को कुलषित करते हैं, वरन् लोगों की दृष्टि में अपने शास्त्रों की भी मर्य्यादा घटाते हैं। कबीर साहब की शिक्षाओं को आप पढ़िए, मनन कीजिए, उनके मिथ्याचार खंडन के अदम्य, और निर्भीक भाव को देखिए, उनकी सत्यप्रियता अवलोकन कीजिए, उनमें अधिकांश आपको हिंदू भावों की ही प्रभा मिलेगी। यदि आप की रुचि और विचार के प्रतिकूल कुछ बातें उसमें मिलें तो भी उसे आप देखिए, और उसमें से तत्व ग्रहण कीजिए, क्योंकि विवेकशील सज्जनों का मार्ग यही है। नाना विचार देखने से ही मनुष्य को अनुभव होता है। कबीर साहब भी मनुष्य थे, उनके पास भी हृदय था, कुछ संस्कार उनका भी था, अतएव समय प्रवाह में पड़ कर, हृदय पर आघात होने पर, ससार के प्रबल पड़ जाने पर उनके स्वर का विकृत हो जाना असभव नहीं. उनका कटु बातें कहना चकितकर नहीं। किंतु यदि आप उन्हें नहीं पढ़ेंगे, तो अपने विचारों को मर्य्यादापूर्ण करना कैसे सीखेंगे। वे प्रतिमा पूजन के कट्टर विरोधी हैं, अवतारवाद को नहीं

मानते, परन्तु इस से क्या! परमात्मा की भक्ति करना भी बतलाते हैं, ईश्वर विमुख तो आप को नहीं करते, हिंदू धर्म का चरम लक्ष्य यही तो है! आप के कुल साधनों को वे काम में नहीं लाना चाहते, न लावें, परन्तु जिन साधनों को वे काम में लाते हैं, वे भी तो आप ही के हैं, यह रुचिवैचित्र्य है, रुचिवैचित्र्य स्वाभाविक है, हिंदूधर्म इसको ग्रहण करता है, इससे घबराता नहीं। वे वेद शास्त्र की निंदा करते हैं हिंदू महापुरुषों को उन्मार्गगामी बतलाते हैं, हिंदू धर्मनेताओं की धूल उड़ाते हैं, यह सत्य है। परन्तु उनके पथवालों से साथ आप ऐक्य कैसे स्थापन करेंगे जब तक इन विचारों को न जानेंगे।

इसके अतिरिक्त जब वे वेद शास्त्रों के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन करते हैं हिंदू महापुरुषों के प्रदर्शित पथ पर ही चलते हैं हिंदू धर्मनेताओं की प्रणाली का ही अनुसरण करते हैं, तो उनका उक्त विचार स्वयं एकदेशी हो जाता है और रूपांतर से आपको ही इष्टप्राप्ति होती है। विवेकी पुरुष काम चाहता है नाम नहीं, परमार्थ के लिये वह अपमान की परवाह नहीं करता। वे मिथ्याचारों का प्रतिवाद तीव्र और असंयत भाषा में करते हैं, परन्तु उसे हमें सहन करना चाहिए दो विचारों से-एक तो यह कि यदि हमने वास्तव में धर्म के साधनों को आडंबर बना लिया है, तो किसी न किसी के मुख से हमको ऐसी बातें सुननी ही पड़ेंगी-दूसरे

यह कि यदि ये अधिकांश अमूलक हैं, तो भी कोई क्षति नहीं, क्योंकि देखिए भगवान मनु क्या कहते हैं—

सन्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेतविषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदपमानस्य सर्वदा॥

ब्राह्मण को चाहिए कि सम्मान से विष के समान बचे, और अपमान को अमृत के तुल्य इच्छा करे।

इससे अधिक मुझे कुछ और नहीं कहना है। आशा है, आपलोग 'कबीर वचनावली' का उचित समादर करेंगे। और प्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती भाग १५ खंड १ संख्या ६ पृष्ठ ३०७ में प्रकाशित विद्वद्वर श्रीयुत रवींद्रनाथ ठाकुर के निम्नलिखित वाक्य को सदा स्मरण रखेंगे।

" भारत की चिरकाल से यही चेष्टा देखी जाती है, कि वह अनेकता में एकता स्थापित करना चाहता है, वह अनेक मार्गों को एक लक्ष्य की तरफ अभिमुख करना चाहता है; वह बहुत के बीच किसी एक को निःसंशय रूप से-अंतरतर रूप से-उपलब्ध करना चाहता है। उसका सिद्धांत या उद्देश्य यह है कि बाहर जो विभिन्नता देख पड़ती है, उसे नष्ट करके उसके भीतर जो निगूढ संयोग देख पड़ता है वह उसे प्राप्त करे "।

कबीर वचनावली की आधारभूत पुस्तकों का विवरण।

संख्या	नाम पुस्तक	विवरण
१	आदि ग्रंथ	उपनाम ग्रंथसाहब, गुरुमुखी पुस्तक, गुरु अर्जुनदेव संग्रहीत, सन् १६०३ में नवलकिशोर प्रेस में नागरी अक्षरों में मुद्रित।
२	कबीर बीजक	हिंदी पुस्तक—महाराज विश्वनाथसिंह कृत टीका सहित, सन् १६०० में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में मुद्रित।
३	कबीर शब्दावली प्रथम भाग	हिंदी पुस्तक—स्वामी बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद संगृहीत—सन् १६११ में उक्त प्रेस में मुद्रित।
४	कबीर शब्दावली द्वितीय भाग	अज्ञन सन् १६०८ में मुद्रित।
५	कबीर शब्दावली तृतीय भाग	अज्ञन सन् १६१३ में मुद्रित।
६	कबीर शब्दावली चतुर्थ भाग	अज्ञन सन् १६१४ में मुद्रित।
७	कबीर कसौटी	हिंदी पुस्तक—बाबू लहनासिंह कबीरपंथी डिप्टी कंसरवेटर जंगलात कृत, सन् १६०६ में श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित।
८	कबीर एंड दी कबीर पंथ	अंगरेज़ी पुस्तक-रवरेंड जी एच वेस्टकट एम ऐ विरचित, सन् १६०७ में क्राइस्ट चर्च मिशन प्रेस कानपुर में मुद्रित।
९	चौरासी अंग की साखी	प्राचीन हस्तलिखित हिंदी पुस्तक—कबीर पंथी साधु बिहारीदास आज़मगढ़ निवासी से प्राप्त।

सख्या	नाम पुस्तक	विवरण
१०	भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय	बँगला पुस्तक—श्रीयुत अक्षयकुमारदत्त प्रणीत—सन् १८८८ में नूतन यत्रालय कलकत्ता में मुद्रित।
११	भक्ति सुधाबिंदु स्वाद	हिंदी पुस्तक—महात्मा सीतारामशरण भगवान प्रसाद विरचित—सवत १९६४,६६ में चितचिंतक प्रेस बनारस में मुद्रित।
१२	मिश्रबंधु विनोद प्रथम खड	हिंदी पुस्तक—मिश्रबंधु विरचित, इडियन प्रेस इलाहाबाद में सवत् १९७० में मुद्रित।
१३	रहनुमायान हिंद	उर्दू पुस्तक—श्रीयुत मन्मथनाथदत्त एम ए की अगरजी पुस्तक प्राफेट्स आफ इडिया का अनुवाद, बाबू नारायणप्रसाद वर्म्मा अनुवादित—अहमदी प्रेस अलीगढ में सन् १९०४ में मुद्रित।
१४	सटीक कबीर बीजक	हिंदी पुस्तक—कबीरपंथी साधु पूरनदास विरचित, सवत १९६७ में श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में मुद्रित।
१५	सम्प्रदाय	उर्दू पुस्तक—क्रिश्चियन विद्वान प्रोफ़ेसर वी बी राय रचित, मिशन प्रेस लुधियाना में सन् १९०६ में मुद्रित।
१६	साखी सग्रह	हिंदी पुस्तक—स्वामी बेलवडियर प्रेस इलाहाबाद सगृहीत—उक्त प्रेस में सन् १९१२ में मुद्रित।
१७	सानगुदड़ी वो रसाले	अंग्रेज़न सन् १९१० में मुद्रित।

कबीर वचनावली

प्रथम खंड

कर्त्ता-निर्णय

दोहा

अछे पुरुष इक पेड़ है निरंजन वाकी डार।
तिरदेवा साखा भये पात भया संसार॥ १॥
साहेब मेरा एक है दूजा कहा न जाय।
दूजा साहेब जो कहूँ साहेब खरा रिसाय॥ २॥
जाके मुँह माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास तें पातरा ऐसा तत्त्व अनूप॥ ३॥
देहीं माहिं बिदेह है साहेब सुरति सरूप।
अनंत लोक में रमि रहा जाके रंग न रूप॥ ४॥
चार भुजा के भजन में भूलि परे सब संत।
कबिरा सुमिरै तासु को जाके भुजा अनंत॥ ५॥
जनम मरन से रहित है मेरा साहेब सोय।
बलिहारी वहि पीव की जिन सिरजा सब कोय॥ ६॥
एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहै कहै कबीर बिचारि॥ ७॥

रेस रूप जहि हैं नहां अधर धरो नहिं देह।
गगन मँडल के मध्य में रहता पुरुष विदेह॥ ८॥
सोई मेरा एक तू और न दूजा कोइ।
जो साहब दूजा कहैं दूजा कुल को होय॥ ९॥
सगुँण की सेवा करो निर्गुँण का करु ज्ञान।
निर्गुँण सगुँण के परे तहैं हमारा ध्यान॥ १०॥

— ० —

शक्तिमत्ता

साहेब सों सब होत है बंदे तें कछु नाहिँ।
राई ते पर्वत करे पर्वत राई हिँ॥ ११॥
बहुत बहुतर थल करैं थल कर उहर होय।
साहब हाथ बडाइया जस भावै तस होय॥ १२॥
साहेब सा समरथ नहीँ गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छाँडै गुन गहै छिनक उतारैं तीर॥ १३॥
जो कुछ किया सो तुम किया मैं कछु कीया नाहिँ।
कहो कहीं जो मैं किया तुम ही थे मुझ माहिँ॥ १४॥
जाको राखै साँइयाँ मारि न सकै कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥ १५॥
साँई मेरा बानिया सहज करै ब्योपार।
बिन डाँडी बिन पालरे तौलै सब संसार॥ १६॥
साँई तुझ से बाहिरा कौडी नाहि बिकाय।
जा के सिर पर तू धनी लाखौं मोल कराय॥ १७॥

सर्वघट-व्यापकता

तेरा साँई तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर ढूँढ़े घास ॥ १८ ॥
जा कारन जग ढूँढ़िया सो ता घट ही माहिँ।
परदा दीया भरम का ता तेँ सूझै नाहिँ ॥ १९ ॥
समझै तो घर में रहे परदा पलक लगाय।
तेरा साहेब तुज्झ में अनत कहूँ मत जाय ॥ २० ॥
जेता घट तेता मता बहु बानी बहु भेख।
सब घट व्यापक ह्वै रहा सोई आप अलेख ॥ २१ ॥
भूला भूला क्या फिरै सिर पर बँधि गइ बेल।
तेरा साँई तुज्झ में ज्यों तिल माहीं तेल ॥ २२ ॥
ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साँई तुज्झ में जागि सकै तो जागि ॥ २३ ॥
ज्यों नैनन में पूतरी योँ खालिक घट माहिँ।
मूरख लोग न जानहीँ बाहर ढूँढ़न जाहिँ ॥ २४ ॥
पावक रूपी साँइयाँ सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं तातेँ बुझि बुझि जाय ॥ २५ ॥

—:o:—

शब्द

कबिरा सब्द सरीर में बिन गुन बाजै ताँत।
बाहर भीतर रमि रहा ता तेँ छूटी भ्राँत ॥ २६ ॥

सब्द सब्द बहु अंतरा सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहेब मिलै सोइ सब्द गहि लेय ॥ २७ ॥
एक सब्द सुखरास है एक शब्द दुखरास।
एक सब्द बंधन कटै एक सब्द गलफाँस ॥ २८ ॥
सब्द सब्द सब कोइ कहै सब्द के हाथ न पाँव।
एक सब्द औषधि करै एक सब्द कर घाव ॥ २९ ॥
सब्द बराबर धन नहीं जो कोई जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै सब्दहिं मोल न तोल ॥ ३० ॥
मता हमारा मंत्र है हम सा होय सो लेय।
सब्द हमारा कल्प-तरु जो चाहै सो देय ॥ ३१ ॥
सीतल सब्द उचारिए अह आनिए नाहिँ।
तेरा प्रीतम तुज्झ में सत्रू भी तुझ माहिँ ॥ ३२ ॥
यह मोती मत जानियो पूहै पोत के साथ।
यह तौ मोती सब्द का बेधि रहा सब गात ॥ ३३ ॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है मत भरमो जग कोय।
सार सब्द जाने बिना कागा हंस न होय ॥ ३४ ॥

नाम

आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया छूटा बंधन मोह ॥ ३५ ॥
आदि नाम निज सार है बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को अमर भयो सो बंस ॥ ३६ ॥

आदि नाम निज मूल है और मंत्र सब डार।
कह कबीर निज नाम बिनु बूड़ि मुआ संसार ॥ ३७ ॥
नाम रतन धन पाइकै गाँठी बाँध न खोल।
नाहीं पन नहिं पारखू नहिं गाहक नहिं मोल ॥ ३८ ॥
सभी रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै सब तन कंचन होय ॥ ३९ ॥
जबहिं नाम हिरदे धरा भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की परी पुरानी घास ॥ ४० ॥
ज्ञान दीप परकास करि भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को सहज समाधि लगाय ॥ ४१ ॥
सुपनहुँ में बर्राइ के धोखेहुँ निकरै नाम।
वाके पग की पैंतरी मेरे तन को चाम ॥ ४२ ॥
जैसा माया मन रम्यो तैसो नाम रमाय।
तारा मंडल बेधि कै तब अमरापुर जाय ॥ ४३ ॥
पावक रूपी नाम है सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं धूआँ है है जाय ॥ ४४ ॥
नाम बिना बेकाम है छप्पन कोटि बिलास।
का इंद्रासन बैठिबो का बैकुंठ निवास ॥ ४५ ॥
लूटि सकै तो लूटि ले सत नाम की लूटि।
पाछे फिरि पछिताहुगे प्रान जाहिं जब छूटि ॥ ४६ ॥
शून्य मरै अजपा मरै अनहदहू मरि जाय।
राम सनेही ना मरै कह कबीर समुझाय ॥ ४७ ॥

परिचय

लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मे भी होगइ लाल ॥ ४८ ॥
जिन पावन भुइँ बहु फिरे घूमे देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया आँगन भया बिदेस ॥ ४६ ॥
उलटि समाना आप में प्रगटी जोति अनंत।
साहेब सेवक एक सँग खेलें सदा बसंत ॥ ५० ॥
जोगी हुआ भलक लगी मिटि गया ऐंचातान।
उलटि समाना आप में हुआ ब्रह्म समान ॥ ५१ ॥
नोन गला पानी मिला बहुरि न भरिहै गौन।
सुरत सब्द मेला भया काल रहा गहि मौन ॥ ५२ ॥
कहना था सो कह दिया अब कछु कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया दरिया लहर समाय ॥ ५३ ॥
उन मुनि सों मन लागिया गगनहिँ पहुँचा जाय।
चाँद बिहूना चाँदना अलख निरंजन राय ॥ ५४ ॥
मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास।
अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥ ५५ ॥
सुरति समानी निरति में अजपा माहीं जाप।
लेख समाना अलख में आपा माहीं आप ॥ ५६ ॥
पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिये की सोभा नहीं देखे ही परमान ॥ ५७ ॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया अंतर भया उजास।
सुख करि सूती महल में बानी फूटी बास ॥ ५८ ॥
आया था संसार में देखन को बहु रूप।
कहै कबीरा संत हो परि गया नजर अनूप ॥ ५९ ॥
पाया था सो गहि रहा रसना लागी स्वाद।
रतन निराला पाइया जगत ढंढोला बाद ॥ ६० ॥
कबिरा देखा एक अँग महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी नैनों रहा समाय ॥ ६१ ॥
गगन गरजि बरसै अमी बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी भीजै दास कबीर ॥ ६२ ॥
दीपक जोया ग्यान का देखा अपर देव।
चार बेद की गम नहीं जहाँ कबीरा सेव ॥ ६३ ॥
अब गुरु दिल में देखिया गावन को कछु नाहिं।
कबिरा जब हम गावते तब जाना गुरु नाहिं ॥ ६४ ॥
मान सरोवर सुगम जल हंसा केलि कराय।
मुकताहल मोती चुगैं अब उडि अन न जाय ॥ ६५ ॥
सुन्न मँडल में घर किया बाजै सब्द रसाल।
रोम रोम दीपक भया प्रगटे दीनदयाल ॥ ६६ ॥
सुरति उडानी गगन को चरन बिलंबी जाय।
सुख पाया साहेब मिला आनँद उर न समाय ॥ ६७ ॥
पानी ही तें हिम भया हिम ह्वै गया बिलाय।
कबिरा जो था सोई भया अब कछु कहा न जाय ॥ ६८ ॥

सुन्न सरोवर मीन मन नीर तीर सब देव।
सुधा सिंधु सुख विलस ही विरला जाने भेव ॥ ६९ ॥
मैं लागा उस एक से एक भया सब माहिं।
सब मेरा मैं सबन का तहाँ दूसरा नाहिं ॥ ७० ॥
गुन इन्द्री सहज गए सत गुर करी सहाय।
घट मैं नाम प्रगट भया बकि बकि मरै बलाय ॥ ७१ ॥
कबिरा भरम न भाजिया बहु विधि धरिया भेख।
साईं के परिचय बिना अंतर रहिगो रेख ॥ ७२ ॥

अनुभव

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै कहै कौन मुख स्वाद ॥ ७३ ॥
ज्यौं गूँगे के सैन को गूँगा ही पहिचान।
त्यौं ज्ञानी के सुक्ख को ज्ञानी होय सो जान ॥ ७४ ॥
कागद लिखे सो कागदी की व्योहारी जीव।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै जित देखै तित पीव ॥ ७५ ॥
लिखा लिखी की है नहीं देखा देखी बात।
दुलहा दुलहिन मिलि गए फीकी पड़ी बरात ॥ ७६ ॥
भरो होय सो रीतई रीतो होय भराय।
रीतो भरो न पाइए अनुभव सोइ कहाय ॥ ७७ ॥

सारग्राहिता

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे थोथा देइ उडाय ॥ ७८ ॥
औगुन को तो ना गहे गुनही को लै बीन।
घट घट महँके मधुप ज्यों परमातम ले चीन ॥ ७९ ॥
हंसा पय को काढि ले छीर नीर निरवार।
ऐसे गहै जो सार को सो जन उतरे पार ॥ ८० ॥
छीर रूप सतनाम है नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है तत का छाननहार ॥ ८१ ॥

समदर्शिता

समदृष्टी सतगुरु किया दीया अविचल ज्ञान।
जहँ देखौं तहँ एक ही दूजा नाहीं आन ॥ ८२ ॥
समदृष्टी सतगुरु किया मेटा भरम विकार।
जहँ देखौं तहँ एक ही साहेब का दीदार ॥ ८३ ॥
समदृष्टी तब जानिए शीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा लखै एक सी सोय ॥ ८४ ॥

भक्ति

जब लग नाता जगत का तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ै हरि भजै भक्त कहावै सोय ॥ ८५ ॥

भक्ति भेष बहु अंतरा जैसे धरनि, अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में भेष जगत की आस॥ ८६॥
देखा देखी भक्ति को कबहुँ न चढ़सी रंग।
विपति पड़े यौं छाँड़सी ज्यौं कँचुली भुजंग॥ ८७॥
ज्ञान सँपूरन ना भिदा हिरदा नाहिं जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का रंग नहीं ठहराय॥ ८८॥
खेत बिगाखो खरतुआ सभा बिगारी कूर।
भक्ति बिगारी लालची ज्यौं केसर में धूर॥ ८९॥
कामी क्रोधी लालची इन तें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय॥ ९०॥
जल ज्यों प्यारा माछरी लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका भक्त पियारा नाम॥ ९१॥
जब लगि भक्ति सकाम है तब लग निस्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिलै निःकामी निज देव॥ ९२॥
भक्ति गेंद चौगान की भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं कहा रंक कहा राय॥ ९३॥
लव लागी तब जानिए छूटि कभूँ नहिं जाय।
जीवत लव लागी रहै मूए तहँहि समाय॥ ९४॥
लगी लगन छूटै नहीं जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में जाहि चकोर चबाय॥ ९५॥
सोओं तो सुपने मिलै जागौं तो मन माहिं।
लोयन राता सुधि हरी बिछुरत कबहूँ नाहिं॥ ९६॥

तूँ तूँ करता तूँ भया तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा अब कहुँ अनत न जाय ॥९७॥
अर्ब खर्ब लौं दर्ब है उदय अस्त लौं राज।
भक्ति महातम ना तुलै ये सब कौने काज ॥ ९८ ॥
अंध भया सब डोलई यह नहिं करै विचार।
हरि कि भक्ति जाने बिना बूड़ि मुआ संसार ॥ ९९ ॥
और कर्म सब कर्म हैं भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहै कबीर पुकारि कै भक्ति करो तजि भर्म ॥ १०० ॥

प्रेम

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै तब पैठै घर माहिं ॥ १०१ ॥
सीस उतारै भुइँ धरै ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तो आव ॥ १०२ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय ॥ १०३ ॥
प्रेम पियाला जो पियै सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै नाम प्रेम का लेय ॥ १०४ ॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावै सोय ॥ १०५ ॥
जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता में दो न समाहिं ॥ १०६ ॥

जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की साँस लेत बिनु प्रान ॥ १०७ ॥
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला तिन का तिन के पास ॥ १०८ ॥
सौ जोजन साजन बसै मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आँगने जानु समुंदर पार ॥ १०९ ॥
यह तत वह तत एक है एक प्रान दुइ गात।
अपने जिय से जानिए मेरे जिय की बात ॥ ११०
हम तुम्हरो सुमिरन करैं तुम मोहिं चितवौ नाहिं।
सुमिरन मन की प्रीति है सो मन तुमहीं माहिं ॥ १११ ॥
प्रीति जो लागी घुल गई पैठि गई मन माहिं।
रोम रोम पिउ पिउ करै मुख की सरधा नाहिं ॥ ११२ ॥
जो जागत सो स्वप्न में ज्यों घट भीतर स्वाँस।
जो जन जाको भावता सो जन ताके पास ॥ ११३ ॥
पीया चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग देखा सुना न कान ॥ ११४ ॥
कबिरा प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा और अमल क्या खाय ॥ ११५ ॥
कबिरा हम गुरु रस पिया बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़सी चाक ॥ ११६ ॥
सबै रसायन मैं किया प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में संचरै सब तन कंचन होय ॥ ११७ ॥

राता माता नाम का पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का माँगै मुक्ति बलाय ॥ ११८
मिलना जग में कठिन है मिलि बिछुड़ो जनि कोय ।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै जिन माथे मनि होय ॥ ११६ ॥
जोई मिलै सो प्रीति में और मिलै सब कोय ।
मन सोँ मनसा ना मिले देँह मिले का होय ॥ १२० ॥
नैनों की करि कोठरी पुतली पलँग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाय ॥ १२१ ॥
जब लगि मरने से डरै तब लगि प्रेमी नाहिं ।
बडी दूर है प्रेम घर समझ लेहु मन माहिं ॥ १२२ ॥
हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत ।
माल मुलुक हरि देत हे हरिजन हरिहीं देत ॥ १२३ ॥
कहा भयो तन बीछुरे दूरि बसे जे बास ।
नैनाहीं अंतर परा प्रान तुम्हारे पास ॥ १२४ ॥
जल में बसै कमोदिनी चदा बसै अकास ।
जो है जाका भावता सो ताही के पास ॥ १२५ ॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ जो कहुं होय बिदेस ।
तन में मन में नैन में ताको कहा सँदेस ॥ १२६ ॥
अगिनि आँच सहना सुगम सुगम खडग की धार ।
नेह निभावन एक रस महा कठिन ब्योहार ॥ १२७ ॥
नेह निभाए ही बनै सोचे बनै न आन ।
तन दे मन दे सीस दे नेह न दीजै जान ॥ १२८ ॥

काँच कथीर अधीर नर ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी सहै कै हीरा कै हेम॥ १२९॥
कसत कसौटी जो टिके ताको सब्द सुनाय।
सोई हमरा बंस है कह कबीर समुझाय॥ १३०॥

स्मरण

दुख में सुमिरन सब करे सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुख काहे होय॥ १३१॥
सुख में सुमिरन ना किया दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की कौन सुने फिरियाद॥ १३२॥
सुमिरन की सुधि यों करो जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं निस दिन आठो जाम॥ १३३॥
सुमिरन सों मन लाइए जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं प्रान तजे तेहि संग॥ १३४॥
सुमिरन सुरत लगाइ के मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के अंतर के पट खोल॥ १३५॥
माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर॥ १३६॥
कबिरा माला मनहिं की और सँसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलें गले रहँट के देख॥ १३७॥
कबिरा माला काठ की बहुत जतन का फेर।
माला स्वास उसास की जामें गाँठ न मेर॥ १३८॥

सहजेही धुन होत है हर दम घट के माहिं ।
सुरत सब्द मेला भया मुख की हाजत नाहिं ॥ १३६ ॥
माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख माहिं ।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं ॥ १४० ॥
तन थिर मन थिर वचन थिर सुरत निरत थिर होय ।
कह कबीर इस पलक को कलप न पावै कोय ॥ १४१ ॥
जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मरि जाय ।
सुरत समानी सब्द में ताहि काल नहिं खाय ॥ १४२ ॥
कबिर छुधा है कूकरी करत भजन में भंग ।
याको टुकडा डारि कर सुमिरन करो निसंक ॥ १४३ ॥
तूँ तूँ करता तूँ भया मुझ में रही न हूँ ।
वारी तेरे नाम पर जित देखूँ तित तू ॥ १४४ ॥

विश्वास

कबिरा क्या मैं चिंतहूँ मम चिंते क्या होय ।
मेरी चिंता हरि करे चिंता मोहिं न कोय ॥ १४५ ॥
साधू गाँठि न बाँधई उदर समाता लेय ।
आगे पाछे हरि खड़े जब माँगै तब देय ॥ १४६ ॥
पौ फाटी पगरा भया जागे जीवा जून ।
सब काहू को देत है चोंच समाना चून ॥ १४७ ॥
कर्म करीमा लिखि रहा अब कुछ लिखा न होय ।
मासा घटै न तिल बढ़ै जो सिर फोड़ै कोय ॥ १४८ ॥

साँई इतना दीजिए जामें कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय ॥ १४६ ॥
पाँटर पिंजर मन भँवर अरथ अनूपम बास।
एक नाम सींचा अमी फल लागा विश्वास ॥ १५० ॥
गाया जिन पाया नहीं अनगाये तें दूरि।
जिन गाया विश्वास गहि ताके सदा हजूरि ॥ १५१ ॥

विरह

विरहिन देय सँदेसरा सुनो हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जिये पानी में का जीव ॥ १५२ ॥
अँखियाँ तो झाँई परी पंथ निहार निहार।
जीहड़ियाँ छाला परा नाम पुकार पुकार ॥ १५३ ॥
नैनन तो झरि लाइया रहट बहै निसु बास।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै पिया मिलन की आस ॥ १५४ ॥
बहुत दिनन की जोवती रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को मन नाहीं बिस्राम ॥ १५५ ॥
विरह भुवगम तन डसा मंत्र न लागै कोय।
नाम वियोगी ना जिये जिये तो बाउर होय ॥ १५६ ॥
विरह भुवगम पैठि कै किया कलेजे घाव।
विरही अंग न मोडि है ज्यों भावै त्यों खाव ॥ १५७ ॥
कै विरहिन को मीच दे कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय ॥ १५८ ॥

बिरह कमंडल कर लिये बैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी छके रहैं दिन रैन ॥ १५६ ॥
येहि तन का दिवला करौं बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यौं कब मुख देखौं पीव ॥ १६० ॥
बिरहा आया दरस को कड़ुवा लागा काम।
काया लागी काल होय मीठा लागा नाम ॥ १६१ ॥
हँस हँस कंत न पाइया जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिय मिलैं कौन दुहागिन होय ॥ १६२ ॥
माँस गया पिंजर रहा ताकन लागे काग।
साहेब अजहुँ न आइया मंद हमारे भाग ॥ १६३ ॥
अँखियाँ प्रेम बसाइया जनि जाने दुखदाय।
नाम सनेही कारने रो रो रात बिताय ॥ १६४ ॥
हवस करै पिय मिलन की औ सुख चाहै अंग।
पीर सहे बिनु पदमिनी पूत न लेत उछंग ॥ १६५ ॥
बिरहिन ओदी लाकड़ो सपचे औ धुँधुआय।
छूट पड़ौं या बिरह,से जो सिगरो जरि जाय ॥ १६६ ॥
परबत परबत मैं फिरी नैन गँवायो रोय।
सो बूटी पायौं नहीं जातें जीवन होय ॥ १६७ ॥
हिरदे भीतर दव बलै धुआँ न परगट होय।
जाके लागी सो लखै की जिन लाई सोय ॥ १६८ ॥
सबही तरु तर जाइ के सब फल लीन्हो चीख।
फिरि फिरि माँगत कबिर है दरसन ही की भीख ॥ १६९ ॥

पिय बिन जिय तरसत रहै पल पल बिरह सताय ।
रैन दिवस मोहिँ कल नहीं सिसक सिसक जिय जाय ॥१६०॥
साँई सेवत जल गई मास न रहिया देह ।
साँई जब लगि सेइहौं यह तन होय न खेह ॥ १६१ ॥
बिरहा बिरहा मत कहो बिरहा है सुलतान ।
जा घट बिरह न सचरै सो घट जान मसान ॥ १६२ ॥
देखत देखत दिन गया निस भी देखत जाय ।
बिरहिन पिय पावै नहीं बेकल जिय घबराय ॥ १६३ ॥
सो दिन कैसा होयगा गुरू गहेंगे बाँहि ।
अपना कर बैठा बही चरनकँवल की छाँहि ॥ १६४ ॥
जो जन बिरही नाम के सदा मगन मन माहिँ ।
ज्यों दरपन की सुदरी किनहूँ पकड़ी नाहिँ ॥ १६५ ॥
चकई बिछुरी रैन की आय मिली परभात ।
सतगुरु से जो बीछुरे मिलै दिवस नहिँ रात ॥ १६६ ॥
बिरहिन उठि उठि भुइँ परै दरसन कारन राम ।
मूए पाछे देहुगे सो दरसन केहि काम ॥ १६७ ॥
मूए पीछे मत मिलो कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया तब पारस केहि काम ॥ १६८ ॥
सब रग ताँत रबाब तन बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुनि सकै कै साँई कै चित्त ॥ १६९ ॥
तूँ मति जानै बीसरूँ प्रीति घट मम चित्त ।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥ १८० ॥

विरह अगिन तन मन जला लागि रहा तत जीव।
कैचा जाने विरहिनी के जिन भेंटा पीव ॥ १८१॥
विरह कुल्हारी तन वहै घाव न बाँधे रोह।
मरने का ससय नहीं छूटि गया भ्रम मोह ॥ १८२ ॥
कबिरा वेद बुलाइया पकरि के देखी बाँहि।
वैद न वेदन जानई करक करेजे माहिं ॥ १८३ ॥
विरह बान जेहि लागिया औषध लगत न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिये उठै कराहि कराहि ॥ १८४ ॥

विनय

सुरति करो मेरे साँइयाँ हम है भवजल माहि।
आपे ही बहि जांयगे जो नहि पकरौ बाहिं ॥ १८५ ॥
क्या मुख ले विनती करों लाज अवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करों कैसे भावों तोहिं ॥ १८६ ॥
मैं अपराधी जनम का नख सिख भरा विकार।
तुम दाता दुखभंजना मेरी करो सम्हार ॥ १८७ ॥
अवगुन मेरे बाप जी बकस गरीब निवाज।
जो मैं पूत कपूत हों तऊ पिता को लाज ॥ १८८ ॥
औगुन किए तो बहु किए करत न मानी हार।
भावें बंदा बकसिये भावें गरदन मार ॥ १८९ ॥
साहेब तुम जनि बीसरो लाख लोग लगि जाहिं।
हमसे तुमरे बहुत हैं तुम सम हमरे नाहिं ॥ १९० ॥

अंतरजामी एक तुम आतम के आधार।
जो तुम छोड़ी हाथ तो कौन उतारै पार ॥ १९१ ॥
मेरा मन जो तोहि सों तेरा मन कहिं और।
कह कबीर कैसे निभै एक चित्त दुइ ठौर ॥ १९२ ॥
मन परतीत न प्रेम रस ना कछु तन में ढंग।
ना जानों उस पीव से क्योंकर रहसी रंग ॥ १९३ ॥
मेरा मुझ में कछु नहीं जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते का लागत है मोर ॥ १९४ ॥
तुम तो समरथ साँइयाँ दृढ़ करि पकरो बाँहि।
धुरही लै पहुँचाइयो जनि छाँडो मग माहिं ॥ १९५ ॥

— ० —

सूक्ष्ममार्ग

उत तें कोई न बाहुरा जासे बूझूं धाय।
इत तें सबही जात हैं भार लदाय लदाय ॥ १९६ ॥
यार बुलावै भाव सों मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला लागि न सकौं पाय ॥ १९७ ॥
नाँव न जानें गांव का बिन जाने कित जाँव।
चलता चलता जुग भया पाव कोस पर गाँव ॥ १९८ ॥
चलन चलन सब कोइ कहै मोहिं अँदेसा और।
साहेब सो परिचय नहीं पहुँचैंगे केहि ठौर ॥ १९९ ॥
जहा न चींटी चढ़ि सकै राई ना ठहराय।
मनुवाँ तहँ ले राखिया तहँ पहुँचे जाय ॥ २०० ॥

बाट बिचारी क्या करे पथी न चले सुधार।
राह आपनी छांड़ि के चले उजार उजार॥ २०१॥
मरिये तो मरि जाइये छूटि परे जजार।
ऐसा मरना को मरे दिन में सौ सौ बार॥ २०२॥

परीक्षक (पारखी)

हीरा तहाँ न खोलिए जह खोटी है हाट।
कस करि बाँधो गाठरी उठ करि चालो बाट॥ २०३॥
हीरा पाया परखि के धन में दीया आन।
चोट सही फूटा नहीं तब पाई पहिचान॥ २०४॥
जो हसा मोती चुगै काँकर क्यों पतियाय।
काँकर माथा न नवे मोती मिले तो खाय॥ २०५॥
हंसा बगुला एकसा मानसरोवर माहिं।
बगा ढँढोरे माछरी हसा मोती खाहिं॥ २०६॥
चदन गया बिदेसड़े सब कोई कहे पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया त्यों त्यों अधकी बास॥ २०७॥
एक अचंभो देखिया हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहिरी कौड़ी बदले जाय॥ २०८॥
नाम रतन धन पाइके गाँठि बांधि ना खोल।
नाहिं पटन नहिं परखी नहिं गाहक नहिं मोल॥ २०९॥
पारसरूपी जीव है लोह रूप संसार।
पारस ते पारस भया परख भया टकसार॥ २१०॥

अमृत केरी पुरिया बहु बिधि लीन्हे छोरि।
आप सरीखा जो मिलै ताहि पियत्र्याऊं घोरि ॥ २११ ॥
काजर ही की कोठरी काजर ही का कोट।
तौ भी कारी ना भई रही जो ओटहिं ओट ॥ २१२ ॥
ज्ञान रत्न की कोठरी चुप करि दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए कुंजी बचन रसाल ॥ २१३ ॥
नग पषाण जग सकल है लखि आवै सब कोइ।
नग ते उत्तम पारखी जग में बिरला कोइ ॥ २१४ ॥
बलिहारी तिहि पुरुष की पर चित परखन हार।
साईं दीन्हों खाँड़ को खारी बूझ गँवार ॥ २१५ ॥
हीरा वही सराहिए सहै घनन की चोट।
कपट कुरंगी मानवा परखत निकसा खोट ॥ २१६ ॥
हरि हीरा जन जौहरी सबन पसारी हाट।
जब आवै जन जौहरी तब हीरों की साट ॥ २१७ ॥
हीरा परा बजार में रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए पारिख लिया उठाय ॥ २१८ ॥
कलि खोटा; जग आंधरा शब्द न मानै कोइ।
जाहि कहौं हित आपना सो उठि बैरी होइ ॥ २१९ ॥

जिज्ञासु

ऐसा कोऊ न मिला हमको दे उपदेस।
भवसागर में बूड़ता कर गहि काढ़ै केस ॥ २२० ॥

ऐसा कोई ना मिला जासे रहिए लाग।
सब जग जलता देखिया अपनी अपनी आग ॥ २२१ ॥
जैसा ढूँढ़त मैं फिरौं तैसा मिला न कोय।
ततवेता तिरगुन रहित निरगुन से रत होय ॥ २२२ ॥
सर्पहिं दूध पियाइए सोई विष है जाय।
ऐसा कोई ना मिला आपे ही विष खाय ॥ २२३ ॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया गहिरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा रहा किनारे पैठि ॥ २२४ ॥
हेरत हेरत हेरिया रहा कबीर हिराय।
बुंद समानी समुँद में सो कित हेरी जाय ॥ २२५ ॥
एक समाना सकल में सकल समाना ताहि।
कबिर समाना बूझ में तहाँ दूसरा नाहिँ ॥ २२६ ॥

—:o:—

दुविधा

हिरदे माहीं आरसी मुख देखा नहिँ जाय।
मुख तौ तबहीं देखई दुविधा देइ बहाय ॥ २२७ ॥
पढ़ा गुना सीखा सभी मिटी न संसय सूल।
कह कबीर कासों कहूँ यह सब दुख का मूल ॥ २२८ ॥
चींटी चावल लै चली बिच में मिलि गइ दार।
कह कबीर दोउ ना मिलै इक ले दूजी डार ॥ २२९ ॥
मच्छ नाम कडुवा लगै मीठा लागै दाम।
दुविधा में दोऊ गये माया मिली न राम ॥ २३० ॥

कथनी और करनी

कथनी मीठी खाँड़ सी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय ॥ २३१ ॥
कथनी बदनी छाँड़ि के करनी सों चित लाय।
नरहिँ नीर प्याये बिना कबहुँ प्यास न जाय ॥ २३२ ॥
करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्योँ भूँसत फिरै सुनी सुनाई बात ॥ २३३ ॥
लाया साखि बनाय कर इत उत अच्छर काट।
कह कबीर कब लग जिये जूठी पत्तल चाट ॥ २३४ ॥
पानी मिलै न आप को औरन बकसत छीर।
आपन मन निसचल नहीं और बँधावत धीर ॥ २३५ ॥
कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल उतरै भौजल पार ॥ २३६ ॥
पद जोरै साखी कहै साधन परि गई रोस।
काढ़ा जल पीवै नहीं काढ़ि पियन की हौस ॥ २३७ ॥
साखी कहै गहै नहीं चाल चली नहिं जाय।
सलिल मोह नदिया बहै पाँव नहीं ठहराय ॥ २३८ ॥
मारग चलते जो गिरै ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै ता सिर करड़े कोस ॥ २३९ ॥
कहता तो बहुता मिला गहता मिला न कोइ।
सो कहता बहि जान दे जो नहिं गहता होइ ॥ २४० ॥

एक एक निरवारिया जो निरवारी जाय।
दुइ दुइ मुख का बोलना घने तमाचा खाय ॥ २४१ ॥
मुख की मीठी जे कहं हृदया है मति आन।
कह कवीर तेहि लोग सों रामो बड़े सयान ॥ २४२ ॥
जस कथनी तस करनियो जस चुंबक तस नाम।
कह कवीर चुंबक विना क्यों छूटै संग्राम ॥ २४३ ॥
श्रोता तो घरही नहीं बक्ता बदै सो बाद।
श्रोता बक्ता एक घर तब कथनी को स्वाद ॥ २४४ ॥

सहज भाव

सहज सहज सब कोउ कहै सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै साहेब मिलै सहज कहावे सोय ॥ २४५ ॥
सहजे सहजै सब गया सुत बित काम निकाम।
एक मेक ह्वै मिलि रहा दास कबीरा नाम ॥ २४६ ॥
जो कछु आवै सहज में सोई मीठा जान।
कडुवा लागै नीम सा जामें ऐंचातान ॥ २४७ ॥
सहज मिलै सो दूध सम माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम जामें ऐंचातानि ॥ २४८ ॥

मौन भाव

भारी कहूँ तो बहु डरूँ हलुका कहूँ तो झीठ।
मैं क्या जानूँ पीव को नैना कछू न दीठ ॥ २४९ ॥

दीठा है तो कस्न कहूँ कहूँ तो को पतियाय।
साँई जस तैसा रहो हरखि हरखि गुन गाय ॥ २५० ॥
ऐसो अद्भुत मत कथो कथो तो धरो छिपाय।
वेद कुराना न लिखी कहूँ तो को पतियाय ॥ २५१ ॥
जो देखै सो कहै नहीं कहै सो देखै नाहिं।
सुने सो समझावे नहीं रसना दृग श्रुति काहिं ॥ २५२ ॥
बाद बिवादे बिष घना बोले बहुत उपाध।
मौन गहे सब की सहै सुमिरे नाम अगाध ॥ २५३ ॥

जीवन्मृत (मरजीवा)

मैं मरजीवा समुँद का डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक ॥ २५४ ॥
डुबकी मारी समुँद में निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया हीरा पाया दास ॥ २५५ ॥
हरि हीरा क्यौं पाइहै जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया सोँ काढ़सी कोइ मरजीवा दास ॥ २५६ ॥
खरी कसौटी नाम की खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै जीवत मिरतक होय ॥ २५७ ॥
मरते मरते जग मुआ औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ बहुरि न मरना होय ॥ २५८ ॥
जा मरने से जग डरै मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरन परमानंद ॥ २५९ ॥

घर जारे घर ऊबरै घर राखे घर जाय।
एक अचभा देखिया मुआ काल को खाय ॥ २६० ॥
रोडा भया तो क्या भया पथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिए ज्यौं पैडे की खेह ॥ २६१ ॥
खेह भई तो क्या भया उडि उडि लागै अग।
साधू ऐसा चाहिए जैसे नीर निपग ॥ २६२ ॥
नीर भया तो क्या भया ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिए जो हरि जैसा होय ॥ २६३ ॥
हरी भया तो क्या भया करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिए हरि भज निरमल होय ॥ २६४ ॥
निरमल भया तो क्या भया निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल से रहित है ते साधू कोइ और ॥ २६५ ॥
दादस लखु मरजीव को धँसि के पैठि पताल।
जीव अटकं मानै नहीं गहि लै निकस्यो लाल ॥ २६६ ॥

मध्यपथ

पाया कहैं ते बावरे खोया कह ते कूर।
पाया खोया कछु नहीं ज्यों का त्यों भरपूर ॥ २६७ ॥
भजूँ तो को है भजन को तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में सो कबीर मन मान ॥ २६८ ॥
अति का भला न बोलना अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना अति की भली न धूप ॥२६९॥

शूरधर्म्म

गगन दमामा बाजिया पड़त निसाने घाव।
खेत पुकारै सूरमा अब लड़ने का दाँव ॥ २७० ॥
सूरा सोइ सराहिए लड़ै धनी के हेत।
पुरजा पुरजा होइ रहे तऊ न छाँड़े खेत ॥ २७१ ॥
सूरा सोइ सराहिए अग न पहिरै लोह।
जूझै सब बंद खोलि कै छाँड़े तन का मोह ॥ २७२ ॥
खेत न छाँड़ै सूरमा जूझै दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की मन में आनै नाहिं ॥ २७३ ॥
अब तो जूझे ही बने मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहेब को सौंपते सोच न कीजै सूर ॥ २७४ ॥
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की कटि उजियारा होय ॥ २७५ ॥
जो हारों तो सेव गुरु जो जीतों तो दाँव।
सत्तनाम से खेलता जो सिर जाय तो जाव ॥ २७६ ॥
खोजी को डर बहुत है पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरे सो तन साहेब जोग ॥ २७७ ॥
तीर तुपक से जो लड़ै सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै सूर कहावै सोय ॥ २७८ ॥

पातिव्रत

पतिबरता मैली भली काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर वारौं कोटि सरूप ॥ २७९ ॥

पतिबरता पति को भजै और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना तौभी घास न खाय ॥ २८० ॥
नैनों अंतर आव तू नैन झाँपि तोहि लेंव।
ना मैं देखौं और को ना तोहि देखन देंव २८१ ॥
कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै स्वाँति बूँद की आस ॥ २८२ ॥
पपिहा का पन देखकर धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच ॥ २८३ ॥
सुंदर तो साँईं भजै तजै आन की आस।
ताहि न कबहूँ परिहरै पलक न छाँड़ै पास ॥ २८४ ॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी माँड़ा पिउ सों खेल।
दीपक जोया ज्ञान का काम जरै ज्यों तेल ॥ २८५ ॥
सूरा के तो सिर नहीं दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं सुरति बसै पिउ माहिं ॥ २८६ ॥
पतिबरता मैली भली गले काँच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै ज्यों रवि ससि की जोत ॥ २८७ ॥
पतिबरता पति को भजै पति पर धर बिस्वास।
आन दिसा चितवै नहीं सदा पीव की आस ॥ २८८ ॥
नाम न रटा तो क्या हुआ जो अंतर है हेत।
पतिबरता पति को भजै मुख से नाम न लेत ॥ २८९ ॥
जो यह एक न जानिया बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं सब तें एक न होय ॥ २९० ॥

सब आये उस एक में डार पात फल फूल।
अब कहु पाछे क्या रहा गहि पकड़ा जब मूल ॥ २६१ ॥
प्रीति अड़ी है तुझ से बहु गुनियाला कंत।
जो हँस बोलौं और से नील रँगाओं दंत ॥ २६२ ॥
कबिरा रेख सिँदूर अरु काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा दूजा कहाँ समाय ॥ २६३ ॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी मेरे और न कोय।
नैना माहीँ तू बसै नीँद को ठौर न होय ॥ २६४ ॥
अब तो ऐसी है परी मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का भय छाँड़ि के हाथ सिँधोरा लीन्ह ॥ २६५ ॥
सती बिचारी सत किया काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना चहुँ दिस अगिन लगाय ॥ २६६ ॥
सती न पीसै पीसना जो पीसै सो राँड़।
साधू भीख न माँगई जो माँगै सो भाँड़ ॥ २६७ ॥
सेज बिछावै सुंदरी अंतर परदा होय।
तन सौंपे मन दे नहीं सदा दुहागिन सोय ॥ २६८ ॥

सद्गुरु

सतगुरु सम को है सगा साधू सम को दात।
हरि समान को हितू है हरिजन सम को जात ॥ २६९ ॥
गुरु गोविँद दोऊ खड़े काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविँद दियो बताय ॥ ३०० ॥

बलिहारी गुरु आपने घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया करत न लागी बार॥ ३०१॥
सब धरती कागद करूँ लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय॥३०२॥
तन मन ताको दीजिये जाके विषया नाहिँ।
आपा सबही डारि कै राखै साहेब माहिँ॥ ३०३॥
तन मन दिया तो क्या हुआ निज मन दिया न जाय।
कह कबीर ता दास सों कैसे मन पतियाय॥ ३०४॥
गुरु सिकलीगर कीजिये मनहिँ मस्कला देह।
मन का मैल छुड़ाइ कै चित दरपन करि लेह॥ ३०५॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये निकसै जोति अपार॥ ३०६॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै बाहर बाहै चोट॥ ३०७॥
कबिरा ते नर अंध हैं गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर हैं गुरु रूठे नहिँ ठौर॥ ३०८॥
गुरु हैं बड़े गोविंद तें मन में देखु विचार।
हरि सुमिरै सो वार है गुरु सुमिरै सो पार॥ ३०९॥
गुरु पारस गुरु परस है चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को दीन्हा मुक्ति निवास॥ ३१०॥
पंडित पढ़ गुन पचि मुए गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है सत्त शब्द परमान॥ ३११॥

नीन लोक नौ खंड में गुरु तें बड़ा न कोइ।
करता करै न करि सकै गुरु करै सो होइ ॥ ३१२ ॥
कबिरा हरि के रूठ ते गुरु के सरने जाइ।
कह कबीर गुरु रूठते हरि नहिं होत सहाय ॥ ३१३ ॥
बस्तु कहीं ढूंढ़ै कहीं केहि विधि आवै हाथ।
कह कबीर तब पाइये भेदी लीजे साथ ॥ ३१४ ॥
यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलें तौभी सस्ता जान ॥ ३१५ ॥
कोटिन चंदा ऊगवें सूरज कोटि हजार।
सतगुरु मिलिया बाहरे दीसत घोर अँधार ॥ ३१६ ॥
सतगुरु पारस के सिला देखो सोच विचार।
आइ पड़ोसिन लै चली दीयो दिया सँवार ॥ ३१७ ॥
चौंसठ दीवा जोय के चौदह चंदा माहिं।
तेहिं घर किसका चाँदना जेहिं घर सतगुरु नाहिं ॥ ३१८ ॥
ताकी पूरी क्यों परे गुरु न लखाई बाट।
ताको बेरा बूड़िहै फिरि फिरि अवघट घाट ॥ ३१९ ॥

असद्गुरु

गुरू मिला ना सिष मिला लालच खेला दाव।
दोऊ बूड़े धार में चढ़ि पाथर की नाव ॥ ३२० ॥
जानंता बुझा नहीं बूझि किया नहिं गौन।
अंधे को अंधा मिला राह बतावै कौन ॥ ३२१ ॥

बंधे को बधा मिले छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की पल में लेत छुड़ाय॥ ३२२॥
बात बनाई जग ठगा मन परमोधा नाहिं।
कह कबीर मन लै गया लख चौरासी माहिं॥ ३२३॥
नीर पियावत का फिरै घर घर सायर बारि।
तृषावंत जो होइगा पीवैगा झख मारि॥ ३२४॥
सिष साखा बहुते किये सतगुरु किया न मित्त।
चाले थे सतलोक को बीचहिं अटका चित्त॥ ३२५॥

संतजन

साध बडे परमारथी घन ज्यों बरसै आय।
तपन बुझावैं और की अपनो पारस लाय॥ ३२६॥
सिंहों के लेहंड़े नहीं हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहि बोरियां साध न चलैं जमात॥ ३२७॥
सब बन तो चदन नहीं सूरा का दल नाहिं।
सब समुद्र मोती नहीं यों साधू जग माहिं॥ ३२८॥
साध कहावन कठिन है लंबा पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखै प्रेमरस गिरै तो चकनाचूर॥ ३२९॥
गाँठी दाम न बाँधई नहिं नारी सौं नेह।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह॥ ३३०॥
वृच्छ कबहुं नहि फल भखैं नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर॥ ३३१॥

साधु साधु सबही बड़े अपनी अपनी ठार।
सब्द बिबेकी पारखी ते माथे के मौर ॥ ३३२ ॥
साधु साधु सब एक है ज्यों पोस्ते का खेत।
कोइ बिबेकी लाल है नहीं सेत का सेत ॥ ३३३ ॥
निराकार की आरसी साधों ही की देह।
लखा जो चाहै अलख को इनही में लखि लेह ॥ ३३४ ॥
कोई आवै भाव ले कोई आव अभाव।
साध दोऊ को पोषते गिनै न भाव अभाव ॥ ३३५ ॥
नहिं सीतल है चद्रमा हिम नहिं सीतल होय।
कबिरा सीतल सत जन नाम सनेही सोय ॥ ३३६ ॥
जाति न पूछो साध की पूछि लीजिय ज्ञान।
मोल करो तरवार का पड़ा रहन दो म्यान ॥ ३३७ ॥
सत न छोडे सतई कोटिक मिलै असत।
मलया भुयँगहि बेधिया सीतलता न तजत ॥ ३३८ ॥
साधू ऐसा चाहिये दुखै दुखावै नाहिं।
पान फूल छेडे नहीं बसै बगीचा माहिं ॥ ३३६ ॥
साध सिद्ध बड अतरा जैसे आंम बबूल।
वाकी डारी अमी फल याकी डारी सूल ॥ ३४० ॥
हरि दरिया सूभर भरा साधों का घट सीप।
तामें मोती नीपजै चढ़ै देसावर दोप ॥ ३४१ ॥
साधू भूखा भाव का धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै सा ते। साधू नाहिं ॥ ३४२ ॥

साधु समुंदर जानिये माही रतन भराय।
मंद भाग मूठी भरै कर कंकर चढ़ि जाय ॥ ३४३ ॥
चंदन की कुटकी भली नहिं बबूल लखरॉव।
साधन की झुपड़ी भली ना साकट को गाँव ॥ ३४४ ॥
हरि सेती हरिजन बड़े समझि देखु मन माहिं।
कह कबीर जग हरि बिषे सो हरि हरिजन माहिं ॥ ३४५ ॥
जो चाहै आकार तू साधू परतछ देव।
निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति से सेव ॥ ३४६ ॥
पच्छापच्छी कारखे सब जग रहा भुलान।
निरपच्छी है हरि भजैं तेई संत सुजान ॥ ३४७ ॥
समुझि बूझि जड़ ह्वै रहे बल तजि निर्बल होय।
कह कबीर ता संत को पला न पकरै कोय ॥ ३४८ ॥
हद चलै सो मानवा बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै ताको मता अगाध ॥ ३४९ ॥
सोना सज्जन साधु जन टूटि जुटै सौ बार।
दुर्जन कुंभ कुम्हार के एकै धका दरार ॥ ३५० ॥
जीवन्मुक्त ह्वै रहै तजै खलक की आस।
आगे पीछे हरि फिरैं क्यों दुख पावै दास ॥ ३५१ ॥

असज्जन

संगति भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ै तऊ न भीजै कोर ॥ ३५२ ॥

हरिया जानै रूखड़ा जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही केतहु बूड़ा मेह ॥ ३५३ ॥
कबिरा मूढ़क प्रानियां नख सिख पाखर आहि।
बाहनहारा क्या करै बान न लागै ताहि ॥ ३५४ ॥
पसुवा सों पाला परयो रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी घालै दूना बीज ॥ ३५५ ॥
कबिरा चंदन के निकट नीम भी चंदन होय।
बूड़े बाँस बड़ाइया यों जनि बूड़ो कोय ॥ ३५६ ॥
चाल बकुल की चलत हैं बहुरि कहावें हंस।
ते मुक्ता कैसे चुगैं परैं काल के फंस ॥ ३५७ ॥
साधू भया तो क्या हुआ माला पहिरी चार।
बाहर भेस बनाइया भीतर भरी भँगार ॥ ३५८ ॥
माला तिलक लगाइ के भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के चले दुनी के साथ ॥ ३५६ ॥
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के हुआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूड़िये जामें भरिया खोट ॥ ३६० ॥
मूंड मुड़ाये हरि मिलैं सब कोई लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ते भेड़ न बैकुँठ जाय ॥ ३६१ ॥
केसन कहा बिगारिया जो मूँडो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये जामें विषै विकार ॥ ३६२ ॥
बाँबी कूटे बावरे साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसै सर्प सबन को खाय ॥ ३६३ ॥

जो विभूति साधुन तजी तेहि विभूति लपटाय।
जोन वमन करि डारिया स्वान स्वाद करि खाय ॥ ३६४ ॥
हम जाना तुम मगन हौ रहे प्रेम रस पागि।
रँचक पवन के लागते उठे नाग से जागि ॥ ३६५ ॥
सज्जन तो दुर्जन भया सुनि काहु को बोल।
काँसा ताँबा है रहा नहिं हिरण्य का मोल ॥ ३६६ ॥
लोहे केरी नावरी पाहन गरुवा भार।
सिर में विष की मोटरी उतरन चाहै पार ॥ ३६७ ॥
सकली दुरमति दूरि करु अच्छा जन्म बनाउ।
काग गवन बुधि छोडि दे हंस गवन चलि आउ ॥ ३६८ ॥
चंदन सर्प लपेटिया चदन काह कराय।
रोम रोम विष भीनिया अमृत कहाँ समाय ॥ ३६९ ॥
मलयागिरि के बास में बेधा ढाक पलास।
बेना कबहुँ न बेधिया युग युग रहिया पास ॥ ३७० ॥
जहर जिमीं दै रोपिया अमि सींचै सौ बार।
कबिरा खलक ना तजै जामें जौन विचार ॥ ३७१ ॥
गुरू बिचारा क्या करै शिष्यहिं में है चूक।
शब्द बाण बेधै नहीं बाँस बजावै फूँक ॥ ३७२ ॥

सत्संग

कबिरा संगत साध की हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की आठो पहर उपाधि ॥ ३७३ ॥

कबिरा सगत साधु की जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड भोजन मिलै साकट सग न जाय ॥ ३७४ ॥
कबिरा सगत साधु की ज्यौं गधी का बास।
जो कछु गधी दे नहीं तौ भी बास सुबास ॥ ३७५ ॥
मथुरा भावै द्वारिका भावै जा जगनाथ।
साध सगति हरि भजन बिनु कछू न आवै हाथ ॥ ३७६ ॥
ते दिन गये अकारथी सगति भई न सत।
प्रेम बिना पसु जीवना भक्ति बिना भगवत ॥ ३७७ ॥
कबिरा मन पछी भया भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी सगति करै सो तैसा फल खाय ॥ ३७८ ॥
कबिरा खाई कोट की पानी पिवै न कोय।
जाय मिलै जब गग से सब गँगोदक होय ॥ ३७९ ॥

कुसंग

जानि बूझि साँची तजै करै झूठि सौँ नेह।
ताकी सगति हे प्रभू सपनेहु मति देह ॥ ३८० ॥
तोहि पीर जो प्रेम की पाका सेती खेल।
काँची सरसौं पेरि कै खली भया ना तेल ॥ ३८१ ॥
दाग जो लागा नील का सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिये कागा हस न होय ॥ ३८२ ॥
मारी मरै कुसंग की केरा के ढिग बेर।
वह हालै वह ऋँग चिरै बिधि ने संग निबेर ॥ ३८३ ॥

केरा तबहिँ न चेतिया जब ढिग लागी बेरि।
अब के चेते क्या भया काँटन लीन्हो घेरि॥ ३८४॥

सेवक और दास

द्वार धनी के पड़ि रहै धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाँड़ि न जाय॥ ३८५॥
दासा तन हिरदे नहीं नाम धरावै दास।
पानी के पीये बिना कैसे मिटै पियास॥ ३८६॥
भुक्ति मुक्ति माँगै नहीं भक्ति दान दै मोहिँ।
और कोई याचौं नहीं निस दिन याचौं तोहिँ॥ ३८७॥
काजर केरी कोठरी ऐसा यह संसार।
बलिहारी वा दास की पैठि के निकसन-हार॥ ३८८॥
अनराते सुख सोवना राते नींद न आय।
ज्यौं जल छूटे माछुरी तलफत रैन बिहाय॥ ३८९॥
जा घट में साँई बसै सो क्यौं छाना होय।
जतन जतन करि दाबिये तौ उँजियारा सोय॥ ३९०॥
सब घट मेरा साँइयाँ सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा दास की जा घट परगट होय॥ ३९१॥

भेष

सत्य तिलक माथे दिया सुरति सरवनों कान।
करनी कंठी कंठ में परस्या पद निर्वान॥ ३९२॥

मन माला तन मेखला भय की करै भभूत।
अलख मिला सब देखता सो जोगी अवधूत ॥ ३६३ ॥
तन को जोगी सब करै मन को विरला कोय।
सहजै सब सिधि पाइये जो मन जोगी होय ॥ ३६४ ॥
हम तो जोगी मनहिं के तन के हैं ते और।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और ॥ ३६५ ॥

चेतावनी

कबिरा गर्व न कीजिये काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै क्या घर क्या परदेस ॥ ३६६ ॥
झूंठे सुख को सुख कहैं मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद ॥ ३६७ ॥
कुसल कुसल ही पूछते जग में रहा न कोय।
जरा मुई ना भय मुआ कुसल कहाँ से होय ॥ ३६८ ॥
पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यौं तारा परभात ॥ ३६९ ॥
रात गँवाई सोय कर दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय ॥ ४०० ॥
आछे दिन पाछे गये गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥ ४०१ ॥
काल्ह करै सो आज कर आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी बहुरि करैगा कब्ब ॥ ४०२ ॥

पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारसी ज्यों तीतर को बाज ॥ ४०३ ॥
कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखौ आय ॥ ४०४ ॥
पाँचो नौबत बाजतीं होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा बैठन लागे काग ॥ ४०५ ॥
ऊजड़ खेड़े ठीकरी गढ़ि गढ़ि गये कुम्हार।
रावन सरिखा चलि गया लंका का सरदार ॥ ४०६ ॥
कबिरा गर्व न कीजिये अस जोबन की आस।
टेसू फूला दिवस दस खखर भया पलास ॥ ४०७ ॥
'कबिरा गर्व न कीजिये ऊँचा देख अवास।
काल्ह परों भुइँ लेटना ऊपर जमसी घास ॥ ४०८ ॥
ऐसा यह संसार है जैसा सेमर फूल।
दिन दस के ब्योहार में झूठे रंग न भूल ॥ ४०९ ॥
माटी कहै कुम्हार को तूँ क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा मैं रूँदूँगी तोहिं ॥ ४१० ॥
कबिरा यह तन जात है सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साध की कै गुरु के गुन गाव ॥ ४११ ॥
मोर तोर की जेवरी बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे जाके नाम अधार ॥ ४१२ ॥
दुर्लभ मानुष जनम है देह न बारंबार।
तरवर ज्यों पत्ता झड़ै बहुरि न लागै डार ॥ ४१३ ॥

आये हैं सो जाँयगे राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले इक बँधि जात जँजीर॥ ४१४॥
जो जानहु जिव आपना करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना मिलै न दूजी बार॥ ४१५॥
कबिरा यह तन जात है सकै ते। राख बहोर।
खाली हाथों वे गये जिन के लाख करोर॥ ४१६॥
आस पास जोधा खड़े सबी बजावैं गाल।
मांझ महल से ले चला ऐसा काल कराल॥ ४१७॥
तन सराँय मन पाहरू मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं देखा ठोंक बजाय॥ ४१८॥
भं भं खड़ी बलाय है सको ते। निकसो भाग।
कह कबीर कब लग रहै रुई लपेटी आग॥ ४१९॥
बासर सुख ना रैन सुख ना सुख सपने माहिँ।
जो नर बिछुड़े नाम से तिन का धूप न छाहिँ॥ ४२०॥
अपने पहरे जागिये ना पड़ि रहिये सोय।
ना जानैा छिन एक में किसका पहरा होय॥ ४२१॥
दीन गँवायो सँग दुनी दुनी न चाली साथ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया मूरख अपने हाथ॥ ४२२॥
मैं भँवरा तोहिँ बरजिया बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से तड़पि तड़पि जिय देय॥ ४२३॥
बाड़ी के बिच भँवर था कलियाँ लेता बास।
सो तो भँवरा उड़ि गया तजि बाड़ी की आस॥ ४२४॥

भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस रीति ॥ ४२५ ॥
भय से भक्ति करै सबै भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को निर्भय होय न कोय ॥ ४२६ ॥
ऐसी गति संसार की ज्यों गाड़र की ठाट।
एक पड़ा जेहि गाड़ में सबै जाँय तेहि बाट ॥ ४२७ ॥
इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिँ।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिँ ॥ ४२८ ॥
भँवर बिलंबे बाग में बहु फूलन की आस।
जीव बिलंबे विषय में अंतहुँ चले निरास ॥ ४२९ ॥
चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइ के साबित गया न कोय ॥ ४३० ॥
सेमर सुवना सेइया दुइ ढेंढ़ी की आस।
ढेंढ़ी फूटि चटाक दे सुवना चला निरास ॥ ४३१ ॥
धरती करते एक पग समुँदर करते फाल।
हाथन परबत तौल ते तिनहूँ खाया काल ॥ ४३२ ॥
आज काल्ह दिन एक में इस्थिर नाहिँ सरीर।
कह कबीर कस राखि हौ काँचे बासन नीर ॥ ४३३ ॥
माली आवत देखि कै कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुनि लिये काल्हि हमारी बार ॥ ४३४ ॥
काँची काया मन अथिर थिर थिर काज करत।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत त्यों त्यों काल हसंत ॥ ४३५ ॥

हम जानैं थे खॉयगे वहुत जमीं बहु माल।
ज्यौं का त्यौं ही रह गया पकरि लै गया काल ॥ ४३६ ॥
दव की दाही लाकडी ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जॉव लोहारघर डाहै दूजी वार ॥ ४३७ ॥
जरने हारा भी मुश्रा मुश्रा जरावन हार।
हैं है करते भी मुए कासौं करौं पुकार ॥ ४३८ ॥
भाई बीर बटाउश्रा भरि भरि नैनन रोय।
जाका था सो ले लिया दीन्हा था दिन दोय ॥ ४३९ ॥
तेरा सगी कोइ नहीं सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै जिव विस्वास न होय ॥ ४४० ॥
कबिरा रसरी पॉव में कह सोवै सुख चेन।
स्वाँस नगाडा कूच का बाजत है दिन रैन ॥ ४४१ ॥
पात झरता यो कहै सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिल दूर परैंगे जाय ॥ ४४२ ॥
कबिरा जन्त्र न बाजई टूटि गया सब तार।
जन्त्र बिचारा क्या करे चला बजावन हार ॥ ४४३ ॥
साथी हमरे चलि गये हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही तातें लागी वार ॥ ४४४ ॥
दस द्वारे का पींजरा तामें पक्षी पौन।
रहिबे को आचर्य है जाय तो अचरज कौन ॥ ४४५ ॥
सुर नर मुनि औ देवता सात द्वीप नव खंड।
कह कबीर सब भोगिया देह धरे का दंड ॥ ४४६ ॥

उपदेश

जो तोको काँटा बुवै ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है वाको है तिरसूल ॥ ४४७ ॥
दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय ॥ ४४८ ॥
कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है और ठगे दुख होय ॥ ४४९ ॥
या दुनिया में आइके छाँडि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले उठी जात है पैठ ॥ ४५० ॥
ऐसी बानी बोलिये मनका आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहु सीतल होय ॥ ४५१ ॥
जग में बैरी कोइ नहीं जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे दया करै सब कोय ॥ ४५२ ॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान को सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है भूसन दे झख मारि ॥ ४५३ ॥
बाजन देहु जंतरी कलि कुकही मत छेड़।
तुझे पराई क्या परी अपनी आप निबेड़ ॥ ४५४ ॥
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिये वही एक की एक ॥ ४५५ ॥
गारी ही सोँ ऊपजै कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है लागि मरै सो नीच ॥ ४५६ ॥
जैसा अनजल खाइये तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये तैसी बानी सोय ॥ ४५७ ॥

माँगन मरन समान है मति कोइ मागो भीख।
माँगन तें मरना भला यह सतगुरु की सीख ॥ ४५८ ॥
उदर समाता अन्न लै तनहिँ समाता चीर।
अधिकहिँ संग्रह ना करै ताका नाम फकीर ॥ ४५६ ॥
कहते को कहि जान दे गुरु की सीख तु लेइ।
साकट जन औ स्वान को फिर जवाब मत देइ ॥ ४६० ॥
जो कोइ समझै सैन में तासो कहिये बैन।
सैन बैन समझै नहीं तासों कछु कहै न ॥ ४६१ ॥
बहते को मत बहन दे कर गहि ऐंचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं वचन कहो दुइ और ॥ ४६२ ॥
सकल दुरमती दूर करि आछो जन्म बनाव।
काग गमन गति छाँडि दे हंस गमन गति आव ॥ ४६३ ॥
मधुर बचन है औषधी कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार है संचरै साले सकल सरीर ॥ ४६४ ॥
बोलत ही पहिचानिये साहु चोर को घाट।
अंतर की करनी सबै निकसै मुख की बाट ॥ ४६५ ॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये लिखि लिखि भये जो ईंट।
कबिरा अंतर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥ ४६६ ॥
नाम भजो मन बसि करो यही बात है तंत।
काहे को पढ़ि पचि मरो कोटिन ज्ञान गरंथ ॥ ४६७ ॥
करता था तो क्यों रहा अब करि क्यों पछिताय।
बोवे पेड़ बबूल का आम कहाँ तें खाय ॥ ४६८ ॥

कबिरा दुनिया देहरे सीस नवावन जाय।
हिरदे माहीं हरि बसे तू ताहा लौ लाय॥ ४६९॥
मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासी जान।
दस द्वारे का देहरा तामें जोति पिछान॥ ४७०॥
पूजा सेवा नेम व्रत गुड़ियन का सा खेल।
जब लग पिउ परसै नहीं तब लग संसय मेल॥ ४७१॥
तीरथ चाले दुइ जना चित चंचल मन चोर।
एको पाप न उतरिया मन दस लाये और॥ ४७२॥
न्हाये धाये क्या भया जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै धोये बास न जाय॥ ४७३॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय॥ ४७४॥
पढ़े गुने सीखे सुने मिटा न संसय सूल।
कह कबीर कासों कहूँ येही दुख का मूल॥ ४७५॥
पंडित और मसालची दोनो सूझै नाहिं।
औरन को करें चांदना आप अँधेरे माहिं॥ ४७६॥
ऊंचे गांव पहाड़ पर औ मोटे की बांह।
ऐसो ठाकुर सेइये उबरिये जाकी छांह॥ ४७७॥
हे कबीर तैं उतरि रहु सँबल परोह न साथ।
संबल घटे औ पग थके जीव बिराने हाथ॥ ४७८॥
अपा तजो औ हरि भजो नख सिख तजो बिकार।
सब जिउ ते निरबैर रहु साधु मता है सार॥ ४७९॥

वहु बधन ते बाँधिया एक विचारा जीव।
वा वल छूटै आपने जो न छुडावै पीव ॥ ४८० ॥
समुझाये समुझै नहीं परहथ आप विकाय।
मैं खेंचत हौं आप को चला सो यमपुर जाय ॥ ४८१ ॥
वोह तौ वैसहि भया तू मति होइ अयान।
तू गुणवंत वे निरगुणी मति एकै में सान ॥ ४८२ ॥
पूरा साहब सेइये सब विधि पूरा होइ।
श्रोछे नेह लगाइये मूलो श्रावै खोइ ॥ ४८३ ॥
पहिले बुरा कमाइ कै बाधी विष कै मोट।
कोटि कर्म मिट पलक में श्रावै हरि की श्रोट ॥ ४८४ ॥

काम

सह कामी दीपक दसा सोखे तेल निवास।
कबिरा हीरा सत्त जन सहजै सदा प्रकास ॥ ४८५ ॥
कामी क्रोधी लालची इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा जाति वरन कुल खोय ॥ ४८६ ॥
भक्ति बिगारी कामियाँ इद्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से जन्म गँवाया वाद ॥ ४८७ ॥
जहाँ काम तहँ नाम नहिं जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहू ना मिलैं रवि रजनी इक ठाम। ४८८ ॥
काम क्रोध मद लोभ की जब लग घट में खान।
कहा मुर्ख कह पंडिता दोनो एक समान ॥ ४८९ ॥

काम काम सब कोई कहे काम न चीन्हे कोय।
जेती मन की कल्पना काम कहावैं सोय ॥ ४६० ॥

क्रोध

कोटि करम लागे रहें एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया जब आया हंकार ॥ ४६१ ॥
दसो दिसा से क्रोध की उठी अपरबल आगि। *
सीतल संगति साध की तहाँ उबरिये भागि ॥ ४६२ ॥
कुबुधि कमानी चढ़ि रही कुटिल बचन का तीर।
भरि भरि मारै कान में साले सकल सरीर ॥ ४६३ ॥
कुटिल बचन सब से बुरा जारि करै तन छार।
साध बचन जल रूप है बरसै अमृतधार ॥ ४६४ ॥
करक करेजे गड़ि रही बचन बृक्ष की फाँस।
निकसाये निकसै नहीं रही सो काहू गाँस ॥ ४६५ ॥
मधुर बचन है ओषधी कटुक बचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर ॥ ४६६ ॥

लोभ

जब मन लागे लोभ सों गया विषय में सोय।
कहैं कबीर विचारि कै कस भक्ती धन होय ॥ ४६७ ॥
कबिरा त्रिस्ना पापिनी तासों प्रीति न जोरि।
पैंड पैंड पाछे परै लागै मोटी खोरि ॥ ४६८ ॥

कबिरा औंधी खोपरी कबहूँ धापे नाहिँ।
तीन लोक की सपदा कब आव घर माहिं ॥ ४९९ ॥
आव गई आदर गया नैनन गया सनेह।
ये तीनों तबही गये जबहिं कहा कछु देह ॥ ५०० ॥
बहुत जतन करि कीजिये सब फल जाय नसाय।
कबिरा सचय सूम धन अंत चोर ले जाय ॥ ५०१ ॥

मोह

मोह फद सब फाँदिया कोइ न सकै निरवार।
कोइ साधू जन पारखी बिरला तत्त्व विचार ॥ ५०२ ॥
मोह मगन ससार है कन्या रही कुमारि।
काहु सुरति जो ना करी फिरि फिरि ले अवतारि ॥५०३॥
जहँ लग सब ससार है मिरग सबन को मोह।
सुर नर नाग पताल अरु ऋषि मुनिवर सब जोह ॥५०४॥
सलिल मोह की धार में बहि गये गहिर गँभीर।
सुच्छम मछरी सुरति है चढ़िती उलटे नीर ॥ ५०५ ॥
अमृत केरी मोटरी सिर से धरी उतारि।
जाहि कहौं मैं एक हौ मोहिं कहै द्वै चारि ॥ ५०६ ॥
जाको मुनिवर तप करैं बेद पढ़ै गुन गाय।
सोइ देव सिखापना नहिं कोई पतिआय ॥ ५०७ ॥
भर्म परा तिहुँ लोक में भर्म बसा सब ठाउँ।
कहहि कबीर पुकारि के बसे भर्म के गाउँ ॥ ५०८ ॥

युवा जरा बालापन बीत्यो चौथि अवस्था आई।
जस मुसवा को तकै बिलैया तस यम घात लगाई ॥५०६॥
दर्पण केरी जो गुफा सोनहा पैठो धाय।
देखत प्रतिमा आपनी भूँकि भूँकि मरि जाय ॥ ५१० ॥
मनुष विचारा क्या करै कहे न खुलै कपाट।
स्वान चौक बैठाय कै पुनि पुनि ऐपन चाट ॥ ५११ ॥

अहंकार

माया तजी तो क्या भया मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनिवर गले मान सबन को खाय ॥ ५१२ ॥
मान बड़ाई कूकरी संतन खेदी जानि।
पांडव जग पूरन भया सुपच बिराजे आनि ॥ ५१३ ॥
मान बड़ाई जगत में कूकर की पहिचान।
मीत किये मुख चाटही बैर किये तन हानि ॥ ५१४ ॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागै अति दूर ॥ ५१५ ॥
कबिरा अपने जीव ते ये दो बातैं धोय।
मान बड़ाई कारने आछत मूल न खोय ॥ ५१६ ॥
प्रभुता को सब कोउ भजै प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय ॥ ५१७ ॥
जहँ आपा तहँ आपदा जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटै चारों दीरघ रोग ॥ ५१८ ॥

माया त्यागे क्या भया मान तजा नहिं जाय।
जेहि मानै मुनिवर ठगे मान सबन को खाय ॥ ५१९ ॥

कपट

कबिर तहाँ न जाइये जहाँ कपट का हेत।
जानो कली अनार की तन राता मन स्वेत ॥ ५२० ॥
चित कपटी सब सों मिलै माहीं कुटिल कठोर।
इक दुरजन इक आरसी आगे पीछे ओर ॥ ५२१ ॥
हेत प्रीति सों जो मिले ताको मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिले तासों मिले बलाय ॥ ५२२ ॥

आशा

आसा जीवै जग मरै लोक मरै मन जाहि।
धन सच्चै सो भी मरै उबरै सो धन खाहि ॥ ५२३ ॥
आसन मारे क्या भया मुई न मन की आस।
ज्यों तेली के बैल को घरही कोस पचास ॥ ५२४ ॥
आसा एक जो नाम की दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै सो भी मरै पियास ॥ ५२५ ॥
कबिरा जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै जगत गुरू वह दास ॥ ५२६ ॥
आसा का ईंधन करू मनसा करू भभूत।
जोगी फिरि फेरी करू यो बनि आवै सूत ॥ ५२७ ॥

तृष्णा

कबिरा सो धन संचिये जो आगे का होय।
सीस चढ़ाये गाठरी जात न देखा कोय ॥ ५२८ ॥
की त्रिस्ना है डाकिनी की जीवन का काल।
और और निस दिन चहै जीवन करै बिहाल ॥ ५२९ ॥

निद्रा

कबिरा सोया क्या करै उठि न भजो भगवान।
जमधर जब लै जाँयगे पड़ा रहेगा म्यान ॥ ५३० ॥
कबिरा सोया क्या करै जागन की करु चैाँप।
ये दम हीरा लाल है गिनि गिनि गुरु को सैाँप ॥ ५३१ ॥
नींद निसानी मीच की उट्ठ कबीरा जाग।
और रसायन छाँड़ि कै नाम रसायन लाग ॥ ५३२ ॥
पिउ पिउ कहि कहि कूकिये ना सोइय असरार।
रात दिवस के कूकते कबहुँक लगै पुकार ॥ ५३३ ॥
सोता साध जगाइये करै नाम का जाप।
यह तीनों सोते भले साकत सिंह औ साँप ॥ ५३४ ॥
जागन में सोवन करै सोवन में लौ लाय।
सुरति डोर लागी रहै तार टूटि नहिं जाय ॥ ५३५ ॥

निंदा

निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय ॥ ५३६ ॥

तिनका कबहुँ न निंदिये जो पाँवन तर होय।
कबहूँ उडि आँखिन परै पीर घनेरी होय ॥ ५३७ ॥
साता सायर मैं फिरा जंबुदीप दै पीठ।
निंद पराई ना करै सो कोइ विरला दीठ ॥ ५३८ ॥
दोष पराया देख करि चले हसत हसत।
अपने याद न आवई जाका आदि न अंत ॥ ५३९ ॥
निंदक एकहु मति मिलै पापी मिलौ हजार।
इक निंदक के सीस पर कोटि पाप को भार ॥ ५४० ॥

माया

माया छाया एक सी बिरला जानै कोय।
भगतों के पाछे फिरै सनमुख भागै सोय ॥ ५४१ ॥
माया तो ठगनी भई ठगत फिरै सब देस।
जा ठग या ठगनी ठगी ता ठग को आदेस ॥ ५४२ ॥
कबिरा माया रूखडी दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति भै सचत नरक दुवार ॥ ५४३ ॥
माया तो है राम की मोदी सब ससार।
जाको चिट्ठी ऊतरी सोई खरचनहार ॥ ५४४ ॥
माया सचै सग्रहै यह दिन जानै नाहिं।
सहस बरस की सब करै मरै महूरत माहिं ॥ ५४५ ॥
कबिरा माया मोहिनी मोहे जान सुजान।
भागे हूँ छूटै नहीं भरि भरि मारै बान ॥ ५४६ ॥

माया के झक जग जरै कनक कामिनी लागि।
कह कबीर कस बाँचिहै रुई लपेटी आगि ॥ ५४७ ॥
मैं जानूं हरि से मिलूं मो मन मोटी आस।
हरि बिच डारै अंतरा माया बड़ी पिचास ॥ ५४८ ॥
आँधी आई ज्ञान की ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई लगी नाम से प्रीति ॥ ५४९ ॥
मीठा सब कोइ खात है बिष ह्वै लागै धाय।
नीब न कोई पीवसी सर्व रोग मिटि जाय ॥ ५५० ॥
माया तरवर त्रिविधि का साख विषय संताप।
सीतलता सपने नहीं फल फीका तन ताप ॥ ५५१ ॥
जिन को साँईं रँग दिया कभी न होइ कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी चढ़ै सवाया रंग ॥ ५५२ ॥
माया दीपक नर पतँग भ्रमि भ्रम माहिं परंत।
कोई एक गुरु ज्ञान तें उबरे साधू संत ॥ ५५३ ॥

कनक और कामिनी

चलौं चलौं सब कोई कहै पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी दुरगम घाटी दोय ॥ ५५४ ॥
नारी की झाँईं परत अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिन की कौन गति नित नारी के संग ॥ ५५५ ॥
पर नारी पैनी छुरी मति कोइ लावो अंग।
रावन के दस सिर गये पर नारी के संग ॥ ५५६ ॥

पर नारी पैनी छुरी बिरला बाँचै कोय।
ना वहि पेट सँचारिये सर्व सोन की होय॥ ५५७॥
दीपक सुंदर देखि कै जरि जरि मरै पतग।
बढी लहर जो विषय की जरत न मोडे अग॥ ५५८॥
सांप बींछि को मत्र है माहुर भारे जात।
विकट नारि पाले परा काटि करेजा खाय॥ ५५६॥
कनक कामिनी देखि कै तू मति भूल सुरग।
बिछुरन मिलन दुलेहरा केंचुलि तजै भुजग॥ ५६०॥

मादक द्रव्य

मद तो बहुतक भाँति का ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद माया मद सब लोय॥ ५६१॥
विद्या मद और गुनहुँ मद राज मद उनमद।
इतने मद को रद करै तब पावै अनहद॥ ५६२॥
कबिरा माता नाम का मद मतवाला नाहिँ।
नाम पियाला जो पियै सो मतवाला नाहिँ॥ ५६३॥

शील

सील छिमा जब ऊपजै अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं लाख कथै जो कोय॥ ५६४॥
सीलवत सब ते बडा सर्व रतन की खानि।
तीन लोक की सपदा रही सील में आनि॥ ५६५॥

ज्ञानी ध्यानी संजमी दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं सीलवंत कोइ एक ॥ ५६६
सुख का सागर सील है कोइ न पावै थाह।
सब्द बिना साधू नहीं द्रव्य बिना नहिं साह ॥ ५६७ ॥
घायल ऊपर घाव लै टोटे त्यागी सोय।
भर जोबन में सीलवँत बिरला होय तो होय ॥ ५६८ ॥

क्षमा

छिमा बड़न को चाहिये छोटन को उतपात।
कहा बिस्नु को घटि गयो जो भृगु मारी लात ॥ ५६९ ॥
जहाँ दया तहँ धर्म है जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है जहाँ छिमा तहँ आप ॥ ५७० ॥
कागस सम दुर्जन बचन रहै संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में कहा सकैगी जारि ॥ ५७१ ॥
खोद खाद धरती सहै काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै और से सहा न जाय ॥ ५७२ ॥

उदारता

कबिरा गुरु के मिलन की बात सुनो हम दोय।
कै साहेब को नाम ले कै कर ऊँचा होय ॥ ५७३ ॥
ऋतु बसंत जाचक भया हरषि दिया द्रुम पात।
तातें नव पल्लव भया दिया दूर नहिं जात ॥ ५७४ ॥

जो जल बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये यहि सज्जन को काम ॥ ५७५ ॥
हाड़ बड़ा हरि भजन कर द्रव्य बड़ा कछु देय।
अक्ल बड़ी उपकार कर जीवन का फल येह ॥ ५७६ ॥
देह धरे का गुन यही देह देह कछु देहु।
बहुरि न देही पाइये अब की देहु सो देहु ॥ ५७७ ॥
सतही में मत बाँटई रोटी में ते टूक।
कह कबीर ता दास को कबहुँ न आवै चूक ॥ ५७८ ॥

संतोष

चाह गई चिंता मिटी मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये सोई साहसाह ॥ ५७९ ॥
मागन गये सो मरि रहे मरे सो माँगन जाहिं।
तिनसे पहिले वे मरे होत करत जो नाहिं ॥ ५८० ॥
गोधन गजधन वाजधन और रतन धन खान।
जब आवै सतोष धन सब धन धूरि समान ॥ ५८१ ॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं अपने तन के काज।
परमारथ के कारने मोहि न आवै लाज ॥ ५८२ ॥

धर्य्य

धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै सौ घड़ा ऋतु आये फल होय ॥ ५८३ ॥

कबिरा धीरज के धरे हाथी मन भर खाय
टूक एक के कारने स्वान घरै घर जाय ॥ ५८४ ॥
कबिरा भँवर में बैठि के मौचकु मना न जोय।
डूबन का भय छाँड़ि दे करना करै सो होय ॥ ५८५ ॥
मैं मेरी सब जायगी तब आवैगी और। ,
जब यह निश्चल होयगा तब पावैगा ठौर ॥ ५८६ ॥

दीनता

दीन गरीबी वंदगी साधन सों आधीन।
ताके संग मैं यों रहूँ ज्यों पानी सँग मीन ॥ ५८७ ॥
दीन लखै मुख सबन को दीनहिं लखै न कोय।
भली विचारी दीनता नरहुँ देवता होय ॥ ५८८ ॥
दीन गरीबी बंदगी सब से आदर भाव।
कह कबीर तेई बड़ा जामें बड़ा सुभाव ॥ ५८६ ॥
कबिरा नवै सो आप को पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये नवै सो भारी होय ॥ ५६० ॥
ऊँचे पानी ना टिकै नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भरि पियै ऊँचा प्यासा जाय ॥ ५६१ ॥
नीचे नीचे सब तरे जेते बहुत अधीन।
चढ़ बोहित अभिमान की बूड़े ऊँच कुलीन ॥ ५६२ ॥
सब तें लघुताई भली लघुता तें सब होय।
जस दुनिया को चँद्रमा सीस नवै सब कोय ॥ ५६३ ॥

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजों आपना मुझ सा बुरा न होय॥ ५६४॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते क्या लागैगा मोर॥ ५६५॥
लघुता ते प्रभुता मिले प्रभुताते प्रभु दूरि।
चींटी ले शक्कर चली हाथी के सिर धूरि॥ ५६६॥

दया

दया भाव हिरदे नहीं ज्ञान कथै वेहद्द।
ते नर नरकहिं जाहिंगे सुनि सुनि साखी सब्द॥ ५६७॥
दया कौन पर कीजिये का पर निर्दय होय।
सांई के सब जीव हैं कीरी कुंजर सोय॥ ५६८॥

सत्यता

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है ता हिरदे गुरु आप॥ ५९९॥
सांई से सांचा रहौ सांई सांच सुहाय।
भावे लंबे केस रख भावे घोट मुँडाय॥ ६००॥
सांचे स्राप न लागई सांचे काल न खाय।
सांचे को सांचा मिले सांचे माहि समाय॥ ६०१॥
सांच बिना सुमिरन नहीं भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै कंचन केहि विधि होय॥ ६०२॥

प्रेम प्रीति का चोलना पहिरि कबीरा नाच।
तन मन ता पर वारहूँ जो कोइ बोलै सांच ॥ ६०३ ॥
सांचे कोइ न पतीजई झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै मदिरा बैठि बिकाय ॥ ६०४ ॥
सांच कहूँ तो मारिहैं झूठे जग पतियाय।
ये जग काली कूकरी जो छेड़ै तो खाय ॥ ६०५ ॥
सब ते सांचा है भला जो सांचा दिल होइ।
सांच बिना सुख नाहिना कोटि करै जो कोइ ॥ ६०६ ॥
सांचे सौदा कीजिये अपने मन में जानि।
सांचे हीरा पाइये झूठे मूरो हानि ॥ ६०७ ॥

वाचनिक ज्ञान

ज्यौं अँधरे को हाथिया सब काहू को ज्ञान।
अपनी अपनी कहत हैं का को धरिये ध्यान ॥ ६०८ ॥
ज्ञानी से कहिये कहा कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते कला अकारथ जाय ॥ ६०९ ॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि निकट रह्यो निज रूप।
बाहर खोजैं बापुरे भीतर वस्तु अनूप ॥ ६१० ॥
भीतर तो भेद्यो नहीं बाहर कथैं अनेक।
जो पै भीतर लखि परै भीतर बाहर एक ॥ ६११ ॥

विचार

पानी केरा पूतला राखा पवन सँचार।
नाना बानी बोलता जोति धरी करतार ॥ ६१२॥
एक सब्द में सब कहा सब ही अर्थ विचार।
भजिये निर्गुन नाम को तजिये विषे विकार ॥ ६१३ ॥
सहज तराजू आन करि सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस जो कोइ जानै बोल ॥ ६१४ ॥
आचारी सब जग मिला मिला विचारि न कोय।
कोटि अचारी वारिये इक विचारि जो होय ॥ ६१५ ॥
मन दीया कहिं और ही तन साधन के सग।
कह कबीर कोरी गजी कैसे लागै रग ॥ ६१६ ॥
लोग भरोसे कौन के बैठि रहे अरगाय।
ऐसे जियरै यम लुटै मेढ़े लुटै कसाय ॥ ६१७ ॥
बोली एक अमोल है जो कोइ बोले जानि।
हिये तराजू तौलि कै तब मुख बाहर आनि ॥ ६१८ ॥

विवेक

फूटी आँखि बिवेक की लखै न सत असत।
जाके सग दस बीस हैं ताका नाम महत ॥ ६१६ ॥
साधू मेरे सब बडे अपनी अपनी ठौर।
सब्द विवेकी पारखी सो माथे के मौर ॥ ६२० ॥

समझा समझा एक है अनसमझा सब एक।
समझा सोई जानिये जाके हृदय विवेक ॥ ६२१ ॥
भंवर जाल बगु जाल है बूड़े जीव अनेक।
कह कबीर ते बाचिहैं जिनके हृदय विवेक ॥ ६२२ ॥
जहं गाहक तहँ हौं नहीं हौं जहँ गाहक नाहिं।
बिन विवेक भटकत फिरै पकरि शब्द की छाहिं ॥६२३॥

बुद्धि और कुबुद्धि

अकिल अरस सोँ ऊतरी बिधना दीन्ही बाँटि।
एक अभागी रहि गया एकन लीन्ही छाँटि ॥ ६२४ ॥
बिना बसीले चाकरी बिना बुद्धि की देह।
बिना ज्ञान का जोगना फिरै लगाये खेह ॥ ६२५ ॥
समझा का घर और है अनसमझा का और।
जा घर में साहेब बसै बिरला जानै ठौर ॥ ६२६ ॥
मूरख को समझावते ज्ञान गांठि को जाय।
कोइला होइ न ऊजरो नौ मन साबुन लाय ॥ ६२७ ॥
मूरख सों क्या बोलिये सठ सों कहा बसाय।
पाहन में क्या मारिये चोखा तीर नसाय ॥ ६२८ ॥
पल में परलय बीतिया लोगन लगी तमारि।
आगिल सोच निवारि कै पाछे करो गोहारि ॥ ६२९ ॥

आहार

खट्टा मीठा चरपरा जिह्वा सब रस लेय।
चोरों कुतिया मिलि गई पहरा किस का देय॥ ६३०॥
खट्टा मीठा देखि कै रसना मेलै नीर।
जब लग मन पाको नहीं काँचो निपट कथीर॥ ६३१॥
बकरी पाती खात है ताकी काढी खाल।
जो बकरी को खात है ताको कौन हवाल॥ ६३२॥
दिन को रोजा रहत है रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी कहु क्यों खुसी खुदाय॥ ६३३॥
खुस खाना है खीचरी माहिं परा टुक नोन।
माँस पराया खाय कर गला कटावै कौन॥ ६३४॥
रूखा सूखा खाइ कै ठंढा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपडी मत ललचावै जीव॥ ६३५॥
कबिरा साँई मुझ को रूखी रोटी देय।
चुपडी माँगत मैं डरू रूखी छीनि न लेय॥ ६३६॥
आधी अरु रूखी भली सारी सों संताप।
जो चाहैगा चूपडी बहुत करैगा पाप॥ ६३७॥

संसारोत्पत्ति

प्रथमै समरथ आप रह दूजा रहा न कोय।
दूजा केहि बिधि ऊपजा पूछत हौं गुरु सोय॥ ६३८॥

तब सत गुरु मुख बोलिया सुकृत सुनो सुजान।
आदि अंत की पारचै तोसों कहा बखान ॥ ६३६ ॥
प्रथम सुरति समरथ कियो घट में सहज उचार।
तात जामन दीनिया सात करी विस्तार ॥ ६४० ॥
दूजे घट इच्छा भई चित मनसा तो कीन्ह।
सात रूप निरमाइया अविगत काहु न चीन्ह ॥ ६४१ ॥
तब समरथ के श्रवण ते मूल सुरति भै सार।
शब्द कला ताते भई पाँच ब्रह्म अनुहार ॥ ६४२ ॥
पाँचों पाँचो अंड धरि एक एक माँ कीन्ह।
दुइ इच्छा तहँ गुप्त है सो सुकृत चित दीन्ह ॥ ६४३ ॥
योग भया यक कारने ऊजो अक्षर कीन्ह।
या अविगत समरथ करी ताहि गुप्त करि दीन्ह ॥ ६४४ ॥
श्वासा सोहं उपजे कीन अमी बधान।
आठ अंश निरमाइया चीन्हो सत सुजान ॥ ६४५ ॥
तेज अंड आचिंत्य का दीन्हों सकल पसार।
अंड शिखा पर बैठि के अधर दीप निरधार ॥ ६४६ ॥
ते अचिंत्य के प्रेम ते उपजे अक्षर सार।
चारि अंश निरमाइया चारि वेद विस्तार ॥ ६४७ ॥
तब अक्षर का दीनिया नींद मोह अलसान।
वे समरथ अविगत करी मर्म कोइ नहिं जान ॥ ६४८ ॥
जब अक्षर के नींद गै दबी सुरति निरबान।
श्याम बरण यक अंड है सो जल में उतरान ॥ ६४६ ॥

अक्षर घट में ऊपजे व्याकुल संशय शूल।
किन अडा निरमाइया कहा अंड का मूल ॥ ६५० ॥
तेही अँड के मुक्ख पर लगी शब्द की छाप।
अक्षर दृष्टि से फूटिया दश द्वारे कढ़ि धाप ॥ ६५१ ॥
तेही ते ज्योति निरंजनौ प्रकटे रूप निधान।
काल अपर बल बीर भा तीनि लोक परधान ॥ ६५२ ॥
ताते तीनों देव भे ब्रह्मा विष्णु महेश।
चारि खानि तिन सिरजिया माया के उपदेश ॥ ६५३ ॥
लख चौरासी धार मा तहाँ जीव दिय वास।
चौदह यम रखवारिया चारि वेद विश्वास ॥ ६५४ ॥
आपु आपु सुख सबर मै एक अंड के माँहि।
उत्पति परलय दुःख सुख फिरि आवहिं फिरि जाहिं ॥६५५॥
सात सुरति सब मूल है प्रलयहुँ इनहीं माँहि।
इनहीं में से ऊपजे इनहीं माहँ समाहिं ॥ ६५६ ॥
सोइ ख्याल समरत्थ कर रहे सो अछपछ पाइ।
सोइ सधि लै आइया सोवत जगहिं जगाइ ॥ ६५७ ॥
सात सुरति के बाहिरे सोरह सँख के पार।
तँह समरथ को बैठका हंसन करे अधार ॥ ६५८ ॥

मन

मन के मते न चालिये मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है सो साधू कोइ एक ॥ ६५९ ॥

मन मुरीद, संसार है गुरु मुरीद कोइ साध।
जो माने गुरु वचन को ता का मता अगाध ॥ ६६० ॥
मन को मारूँ पटकि के टूक टूक होइ जाय।
विष की क्यारी बोइ के लुनता क्यों पछिताय ॥ ६६१ ॥
मन पाँचो के वसि परा मन के वस नहिं पाँच।
जित देखूँ तित दौ लगी जित भागूँ तित आँच ॥ ६६२ ॥
कबिर बैरी सबल हैं एक जीव रिपु पाँच।
अपने अपने स्वाद को बहुत नचावें नाँच ॥ ६६३ ॥
कबिरा मन तो एक है भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर भावै विषय कमाय ॥ ६६४ ॥
मन के मारे बन गये बन तजि बस्ती माहिँ।
कह कबीर क्या कीजिये यह मन ठहरै नाहिँ ॥ ६६५ ॥
जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजे जो मन आवे ठौर ॥ ६६६ ॥
पहिले यह मन काग था करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया मोती चुँगि चुँगि खात ॥ ६६७ ॥
कबिरा मन परवत हता अब मैं पाया जानि।
टाँकी लागी सब्द की निकसी कंचन खानि ॥ ६६८ ॥
अगम पंथ मन थिर करै बुद्धि करै परवेस।
तन मन सबही छाँड़ि के तब पहुँचै वा देस ॥ ६६९ ॥
मन मोटा मन पातरा मन पानी मन लाय।
मन के जैसी ऊपजे तैसी ही ह्वै जाय ॥ ६७० ॥

मन के बहुतक रंग हैं छिन छिन बदलै सोय।
एकै रँग में जो रहै ऐसा बिरला कोय॥ ६७१॥
मनुवाँ तो पंछी भया उड़ि के चला अकास।
ऊपर ही तें गिरि पड़ा या माया के पास॥ ६७२॥
अपने अपने चोर को सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै सरबस डारूँ वार॥ ६७३॥
मन कुंजर महमंत था फिरता गहिर गँभीर।
दोहरी तेहरी चौहरी परि गइ प्रेम जँजीर॥ ६७४॥
हिरदे भीतर आरसी मुख देखा नहिं जाय।
मुख तौ तबहीं देखसी दिल की दुविधा जाय॥ ६७५॥
पानी हूँ तें पातला धुआँ हूँ तें झीन।
पवन हुँ तें अति ऊतला दोस्त कबीर कीन॥ ६७६॥
मन मनसा को मार करि नन्हा करि के पीस।
तब सुख पावै सुंदरी पदुम झलक्कै सीस॥ ६७७॥
मन मनसा को मारि ले घटही माहीं घेर।
जबही चालै पीठि दै आँकुस दै दै फेर॥ ६७८॥
कबिरा मनहि गयंद है आँकुस दै दै राखु।
बिष की बेली परिहरी अमृत का फल चाखु॥ ६७९॥
कुंभे बाँधा जल रहै जल बिनु कुंभ न होय।
ज्ञानै बाँधा मन रहै मन बिनु ज्ञान न होय॥ ६८०॥
मन माया तो एक है माया मनहिं समाय।
तीन लोक संसय परा काहि कहूँ समझाय॥ ६८१॥

मन सायर मनसा लहरि बूडे बहे अनेक।
कह कबीर ते बाँचिहैं जाके हृदय विवेक ॥ ६८२ ॥
नैनन आगे मन बसै पल पल करै जो दौर।
तीन लोक मन भूप है मन पूजा सब ठौर ॥ ६८३ ॥
तन बोहित मन काग है लख जोजन उड़ि जाय।
कबहीं दरिया अगम बहि कबहीं गगन समाय ॥ ६८४ ॥
मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये मनहीं की परतीत ॥ ६८५ ॥
तीनि लोक टीड़ी भई उड़िया मन के साथ।
हरिजन हरि जाने बिना परे काल के हाथ ॥ ६८६ ॥
बाजीगर का बंदरा ऐसा जिउ मन साथ।
नाना नाच नचाय कै राखै अपने हाथ ॥ ६८७ ॥
मन करि सुर मुनि जँहडिया मन के लक्ष दुवार।
ये मन चंचल चोरई ई मन शुद्ध ठगार ॥ ६८८ ॥
मन मतग गैयर हनै मनसा भई शचान।
यत्र मंत्र माने नहीं लागी उड़ि उड़ि खान ॥ ६८९ ॥
मन गयंद माने नहीं चलै सुरति के साथ।
दीन महावत क्या करै अंकुश नाहीं हाथ ॥ ६९० ॥
देश विदेश न हौं फिरा मनही भरा सुकाल।
जाको ढूंढ़त हौं फिरौं ताको परा दुकाल ॥ ६९१ ॥
मन स्वारथ आपहिं रसिक विषय लहरि फहराय।
मन के चलते तन चलत ताते सरबसु जाय ॥ ६९२ ॥

यह मन तो शीतल भया जब उपजो ब्रह्मज्ञान।
जेहि बैसदर जग जरै सो पुनि उदक समान ॥ ६६३ ॥

—०—

विविध

सुपने में सॉई मिले सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता मत सुपना है जाय ॥ ६६४ ॥
सोऊँ तो सुपने मिलूँ जागूँ तो मन माहिं।
लोचन राते सुभ घड़ी बिसरत कबहू नाहिं ॥ ६६५ ॥
कबिरा साथी सोइ किया दुख सुख जाहि न कोय।
हिलि मिलि कै सँग खेलई कधी बिछोह न होय ॥६६६॥
तरवर तासु बिलबिये बारह मास फलत।
सीतल छाया सघन फल पछी केल करत ॥ ६६७ ॥
तरवर सरवर सतजन चौथे बरसे मेंह।
परमारथ के कारने चारो धारैं देंह ॥ ६६८ ॥
कबिरा सोई पीर है जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बेपीर ॥ ६६९ ॥
नवन नवन बहु अंतरा नवन नवन बहु बान।
ये तीनो बहुतै नवैं चीता चोर कमान ॥ ७०० ॥
कबिरा सीप समुद्र की खारा जल नहिं लेय।
पानी पावै स्वाति का सोभा सागर देय ॥ ७०१ ॥
ऊची जाति पपीहरा पियै न नीचा नीर।
कै सुरपति को याँचई कै दुख सहै सरीर ॥ ७०२ ॥

चात्रिक सुतहिं पढ़ावही आन नीर मत लेय।
मम कुल यही सुभाव है स्वाति बूँद चित देय ॥ ७०३ ॥
लंबा मारग दूर घर विकट पंथ बहु मार।
कह कबीर कस पाइये दुर्लभ गुरु दीदार ॥ ७०४ ॥
हेरत हेरत हे सखी हेरत गया हेराय।
बुंद समानी समुँद में सो कित हेरी जाय ॥ ७०५ ॥
आदि होत सब आप में सकल होत ता माहिं।
ज्यों तरवर के बीज में डार पात फल छाँहिं ॥ ७०६ ॥
कबिरा मैं तो तब डरौं जो मुझ ही में होय।
मीच बुढ़ापा आपदा सब काहू में सोय ॥ ७०७ ॥
सात दीप नौ खंड में तीन लोक ब्रह्मंड।
कह कबीर सब को लगै देह धरे का दंड ॥ ७०८ ॥
देह धरे का दंड है सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि मूरख भुगतै रोय ॥ ७०९ ॥
देखन ही की बात है कहने की कछु नाहिं।
आदि अंत को मिलि रहा हरिजन हरि ही माहिं ॥७१०॥
सबै हमारे एक हैं जो सुमिरैं सत नाम।
वस्तु लही पहिचानि कै बासन सोँ क्या काम ॥ ७११ ॥
जूआ चोरी मुखबिरी ब्याज घूस पर नार।
जो चाहै दीदार को एतो वस्तु निवार ॥ ७१२ ॥
राज दुवारे साधुजन तीनि वस्तु को जाय।
कै मीठा कै मान को कै माया की चाय ॥ ७१३ ॥

देखन को सब कोइ भला जेस सीत का कोट।
देखत ही ढहि जायगा बाँधि सकै नहिं पोट ॥ ७१४ ॥
नाचै गावै पद कहै नाहीं गुरु सों हेत।
कह कबीर क्यों नीपजै बीज विहूनो खेत ॥ ७१५ ॥
ब्रह्महिं तें जग ऊपजा कहत सयाने लोग।
ताहि ब्रह्म के त्याग बिनु जगत न त्यागन जोग ॥ ७१६ ॥
ब्रह्म जगत का बीज है जो नहिं ताको त्याग।
जगत ब्रह्म में लीन है कहहु कौन बैराग ॥ ७१७ ॥
नेत नेत जेहि वेद कहि जहाँ न मन ठहराय।
मन बानी की गम नहीं ब्रह्म कहा किन आय ॥ ७१८ ॥
एक कर्म है बोवना उपजै बीज बहूत।
एक कर्म है भूँजना उदय न अंकुर सूत ॥ ७१९ ॥
चाँद सुरज निज किरन को त्यागि कथन बिधि कौन।
जाकी किरनें ताहि में उपजि होत पुनि लीन ॥ ७२० ॥
गुरू भरोखे बैठि के सब का मुजरा लेइ।
जैसी जाकी चाकरी तैसा ताको देइ ॥ ७२१ ॥
हंसा बक एक रँग लखिय चरैं एकही ताल।
छीर नीर ते जानिये बक उघरैं तेहि काल ॥ ७२२ ॥
बिन देखे वह देश की बातें कहै सो कूर।
आपै खारी खात है बेचत फिरत कपूर ॥ ७२३ ॥
मलयागिरि के बास में वृक्ष रहा सब गोइ।
कहिये को चंदन भया मलयागिरि ना होय ॥ ७२४ ॥

फाटे आँय न मौरिया फाटे जुरै न कान।
गोरख पद परसे विना कहो कौन की सान ॥ ७२५ ॥
आगे सीढ़ी साँकरी पाछे चकनाचूर।
परदा तर की सुंदरी रही धका दै दूर ॥ ७२६ ॥
येरा यांधि न सर्प को भवसागर के माँहि।
छोड़े तौ बूड़त अहै गहै तौ डसिहै वाहि ॥ ७२७ ॥
कर सोरा खोवा भरा मग जोहत दिन जाय।
कविरा उतरा चित्त सौं छांड़ि दियो नहिं जाय ॥ ७२८ ॥
यिप के यिरवा घर किया रहा सर्प लपटाय।
ताते जियरैं डर भया जागत रैनि यिहाय ॥ ७२९ ॥
सेमर केरा सूवना सिहुले यैठा जाय।
चोंच चहोरै सिर धुनै यह वाही को भाय ॥ ७३० ॥
सेमर सुवना येगि तजु घनी यिगुर्चन पाँख।
ऐसा सेमर जो सेवे हृदया नाहीं आँख ॥ ७३१ ॥
कैते दिन ऐसे गये अनरुचे को नेह।
योये उसर न ऊपजै जो धन यरसैं मेह ॥ ७३२ ॥
प्रकट कहौं तौ मारिया परदा लखै न कोइ।
सहना छपा पयार तर को कहि यैरी होइ ॥ ७३३ ॥
जौ लौं तारा जगमगै तौ लौं उगै न सूर।
तौ लौं जिय जग कर्मयश जौ लौं ज्ञान न पूर ॥ ७३४ ॥
यद यहियां यल आपनी छांड़ु यिरानी आस।
जाके आँगन नदी है सो कस मरै पियास ॥ ७३५ ॥

हे गुणवती वेलरी तव गुण बरणि न जाय।
जर काटे ते हरिअरी सींचे ते कुँभिलाय॥ ७३६॥
वेलि कुढंगी फल बुरा फुलवा कुबुधि बसाय।
मूल विनाशी तूमरी सरोपात करु आय॥ ७३७॥
हम जान्यो कुल हंस हो ताते कीन्हों संग।
जो जनत्यों बक बरण हो छुवन न देत्यों अंग॥ ७३८॥
गुणिया तो गुण को गहै निर्गुण गुणहि घिनाय।
बैलहिं दीजै जायफर क्या बूझै क्या खाय॥ ७३९॥
खेत भला बीजौ भला बोइये मूठी फेर।
काहे बिरवा रूखरा या गुण खेतै केर॥ ७४०॥
यंत्र बजावत हो सुना टूटि गये सब तार।
यंत्र बिचारा क्या करै गया बजावन हार॥ ७४१॥
औरन के समुझावत मुख में परिगो रेत।
राशि बिरानी राख ते खाये घर को खेत॥ ७४२॥
तकत तकावत तकि रहे सके न बेझा मारि।
सबै तीर खाली परे चले कमानी डारि॥ ७४३॥
अपनी कह मेरी सुनै सुनि मिलि एकै होइ।
मेरे देखत जग गया ऐसा मिला न कोइ॥ ७४४॥
देश देश हम बागिया ग्राम ग्राम की खोरि।
ऐसा जियरा ना मिला जो ले फटकि पछोरि॥ ७४५॥
बस्तु अहै गाहक नहीं वस्तु सो गरुवा मोल।
बिना दाम को मानवा फिरै सो डामाडोल॥ ७४६॥

सिंह अकेला यन रमै पलक पलक के दौर।
जैसा वन है आपना तैसा वन है और ॥ ७४७ ॥
पैठा है घर भीतरे बैठा है साचेत।
जब जैसी गति चाहता तब तैसी मति देत ॥ ७४८ ॥
बना बनाया मानवा बिना बुद्धि बेतूल।
कहा लाल लै कीजिये बिना बास का फूल ॥ ७४९ ॥
आगे आगे दव बरै पीछे हरियर होइ।
बलिहारी वा वृक्ष की जर काटे फल होइ ॥ ७५० ॥
सरहर पेड़ अगाध फल अरु बैठा है पूर।
बहुत लाल पचि पचि मरे फल मीठा पै दूर ॥ ७५१ ॥
सबही तरु तर जाय के सब फल लीन्हो चीखि।
फिरि फिरि मांगत कबिर है दर्शन ही की भीखि ॥ ७५२ ॥
कचन भो पारस परसि बहुरि न लोहा होइ।
चदन बास पलास विधि ढाक कहै नहिं कोइ ॥ ७५३ ॥
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै भक्ति न आई काज।
जहँ को किया भरोसवा तहँ ते आई गाज ॥ ७५४ ॥
सुख को सागर मैं रचा दुख दुख मेलो पाय।
थिति ना पकरै आपनी चले रक औ राव ॥ ७५५ ॥
लिखा पढ़ी में परे सब यह गुण तजै न कोइ।
सबै परे भ्रम जाल में डारा यह जिय खोइ ॥ ७५६ ॥
जैसी लागी और की तैसी निबहै थोरि।
कौडी कौडी जोरि कै पूज्यो लक्ष करोरि ॥ ७५७ ॥

नव मन दूध बटोरि कै टिपका किया विनाश।
दूध फाटि कांजी हुआ भया घीव का नाश॥ ७५८॥
मानुष तेरा गुण बडा माँस न आवै काज।
हाड न होते आभरण त्वचा न बाजन बाज॥ ७५६॥
प्रथमे एक जो हो किया भया सो बारह बाट।
कसत कसौटी नाटिका पीतर भया निराट॥ ७६०॥
फुलवा भार न लै सकै कहै सखिन सों रोइ।
ज्यो ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों भारी होइ॥ ७६१॥
पद गावै लवलीन ह्वै कटै न संसय फाँस।
सबै पछोरै थोथरा एक बिना बिस्वास॥ ७६२॥
घर कबीर का शिखर पर जहाँ सिलिहिली गैल।
पाँय न टिकै पिपीलिका खलक न लादै बैल॥ ७६३॥
अपने अपने शीश की सबन लीन है मानि।
हरि की बात दुरंतरी परी न काहू जानि॥ ७६४॥
घाट भुलाना बाट बिन भेष भुलाना कानि।
जाकी माँडी जगत माँ सो न परा पहिचानि॥ ७६५॥
ऊपर की दोऊ गईं हिय की गईं हेराय।
कह कबीर चारिउ गईं तासों कहा बसाय॥ ७६६॥
यती सती सब खोजहीं मनै न मानै हारि।
बड बड बीर बचै नहीं कहहि कबीर पुकारि॥ ७६७॥
एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
जो तू सेवै मूल को फूलै फलै अघाय॥ ७६८॥

साँई केरे बहुत गुन लिखे जो हिरदे माहिं।
पिऊँ न पानी डरपता मत वे धोये जाहिं ॥ ७६६ ॥
यार बुलावै भाव से मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला लागि न सक्कूँ पाँय ॥ ७७० ॥
पपिहा पन को ना तजै तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं पर छूटे है लाज ॥ ७७१ ॥
प्रेम प्रीति से जो मिलै तासों मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै तासों मिलै बलाय ॥ ७७२ ॥
खुलि खेलो संसार में बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै जो सिर बोझ न होय ॥ ७७३ ॥
सब काहू का लीजिये साँचा सब्द निहार।
पच्छपात ना कीजिये कहै कबीर विचार ॥ ७७४ ॥
तन सँदूक मन रतन है चुपके दे हठ ताल।
गाहक बिना न खोलिये पूँजी सब्द रसाल ॥ ७७५ ॥
जब दिल मिला दयाल सों तब कछु अंतर नाहिं।
पाला गलि पानी भया यों हरिजन हरि माहिं ॥ ७७६ ॥
मो में इतनी सक्ति कहँ गाओं गला पसार।
बंदे को इतनी घनी पड़ा रहै दरबार ॥ ७७७ ॥
रचनहार को चीन्हि ले खाने को क्या रोय।
दिल मंदिर में पैठ करि तानि पिछौरा सोय ॥ ७७८ ॥
सब से भली मधूकरी भाँति भाँति का नाज।
दावा काहू का नहीं बिना बिलायत राज ॥ ७७९ ॥

भौसागर जल विष भरा मन नहिं बाँधै थीर।
सब्द-सनेही पिउ मिला उतरा पार कबीर॥ ७८० ॥
नाम रतन धन संत पहँ खान खुली घट माहिं।
सेंत मेंत ही देत हौं गाहक कोई नाहिं॥ ७८१ ॥

द्वितीय खंड

शब्दावली

कर्ता-निरूपण

सब का साखी मेरा साईं। ब्रह्मा विष्णु रुद्र इश्वर लौं श्रौ श्रव्याकृत नाहीं। सुमति पचीस पांच से कर ले यह सब जग भरमाया। श्रकार उकार मकार मात्रा इनके परे बताया।* जागृत सुपन सुषोपत तुरिया इनते न्यारा होई। राजस तामस सात्विक निर्गुन इनतें श्रागे सोई। सुच्छम थूल कारन मंह कारन इन मिल भोग बखाना। तेजस विस्व पराग श्रातमा इनमें सार न जाना। परा बसंती मधमा बैखरि चौबानी ना मानी। पांच कोष नीचे कर देखो इनमें सार न जानी। पांच ज्ञान श्रौ पांच कर्म की यह दस इंद्री जानो। चित सोह श्रंतःकरन बखानो इनमें सार न मानो। कुरम सेस किरकिला धनंजय देवदत्त कहँ देखो। चौदह इंद्री चौदह इंद्रा इनमें श्रलख न पेखो। तत पद त्वं पद श्रौर श्रसी पद बाच लच्छ पहिचाने। जहद लच्छना श्रजहद कहते श्रजहद जहद बखाने। सतगुरु मिल सत् शब्द लखावै सार शब्द बिलगावै। कह कबीर सोई जन पूरा जो न्यारा कर गावै ॥ १ ॥

मेरी नजर में मोती आया है। कोइ कहे हलका कोइ कहे

भारी दोनों भूल भुलाया है। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर थाके तिनहु खोज न पाया है। सेस सारदा सकर हारे पढ़ रट बहु गुन गाया है। है तिल के तिल के तिल भीतर विरले साधू पाया है। चहुँ दल कमल तिरकुटी साजे ओंकार दरसाया है। ररकार पद सेत सुन्न मध षटदल कँवल वताया है। पारब्रह्म महा सुन्न मँझारा सोइ नि अक्षर रहाया हे। भँवर गुफा में सोहं राजे मुरली अधिक वजाया है। सत्त लोक सत पुरुष विराजे अलख अगम दोउ भाया है। पुरुष अनामी सब पर स्वामी ब्रह्मंड पार जो गाया है। यह सब वातें देही माँहीं प्रतिविंब अड जो पाया है। प्रतिविंव पिंड ब्रह्मंड है नकली असली पार वताया है। कह कवीर सतलोक सार है पुरुष नियारा पाया है॥ २॥

संतो वीजक मन परमाना। कैयक खोजी खोजि थके कोइ विरला जन पहिचाना। चारिउ युग औ निगम चार औ गावैं ग्रंथ अपारा। विष्णु विरंचि रुद्र ऋषि गावैं सेस न पावैं पारा। कोइ निरगुन सरगुन ठहरावैं कोई जोति वतावे। नाम धनी को सब ठहरावैं रूप को नहीं लखावें। कोउ सुछम असथूल वतावैं कोउ अच्छर निज सांचा। सतगुरु कहँ विरले पहिचानें भूले फिरैं असांचा। लोभ के भक्ति सरे नहिं कामा साहव परम सयाना। अगम अगोचर धाम धनी को सबै कहैं हां जाना। दिसै न पथ मिलै नहिं पंथी ढूंढत ठौर ठिकाना। केोउ ठहरावैं शून्यक कीन्हा जोति एक परमाना।

कोउ कह रूप रेख नहिं वाके धरत कौन को ध्याना। रोम रोम में परगट कर्त्ता काहे भरम भुलाना। पच्छ अपच्छ सबे पचि हारे कर्त्ता कोइ न विचारा। कौन रूप है सांचा साहब नहिं कोई विस्तारा। बहु परचै परतीत दृढ़ावै सांचे को विसरावै। कलपत कोटि जनम युग बागे दरशन कतहुँ न पावै। परम दयालु परम पुरुषोत्तम ताहि चीन्ह नर कोई। ततपर हाल निहाल करत है रीझत है निज सोई। बधिक कर्म्म करि भक्ति दृढ़ावै नाना मत को ज्ञानी। बीजक मत कोइ बिरला जाने भूलि फिरे अभिमानी। कह कबीर कर्त्ता में सब है कर्त्ता सकल समाना। भेद बिना सब भरम परे कोउ बूझै संत सुजाना ॥ ३ ॥

तेहि साहब के लागो साथा।
दुइ दुख मेटि कै होहु सनाथा ॥
दशरथ कुल अवतरि नहिं आया।
नहिं लंका के राय सताया ॥
नहिं देवकि के गर्भहिं आया।
नहीं यशोदा गोद खिलाया ॥
पृथ्वी रमन दमन नहिं करिया।
पैठि पताल नहीं बलि छलिया ॥
नहिं बलि राय सों मांड़ी रारी।
नहिं हिरनाकुस बधल पछारी ।
रूप बराह धरणि नहिं धरिया।

छत्री मारि निछत्र न करिया ॥
नहिं गोवर्धन कर पर धरिया ।
नहीं ग्वाल सँग बन बन फिरिया ॥
गंडक शालग्राम न शीला ।
मत्स्य कच्छ है नहिं जल हीला ॥
द्वारावती शरीर न छांडा ।
लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा ॥
कहहि कबीर पुकारि के या पथे मत भूल ।
जेहि राखे अनुमान करि थूल नहीं असथूल ॥ ४ ॥
सतो आवै जाय सोमाया ।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके ना कहुँ गया न आया ॥
क्या मकसूद मच्छ कछ होना शखासुर न सँघारा ।
अहै दयालु द्रोह नहिं वाके कहहु कौन को मारा ॥
वे कर्त्ता न वराह कहावें धरणि धरें नहिं भारा ।
ई सब काम साहेब के नाहीं झूठ कहै ससारा ॥
खम फारि जो बाहिर होई ताहि पतिज सब कोई ।
हिरनाकुस नख उदर बिदारे सो नहिं कर्त्ता होई ॥
बावन रूप न बलि को जांचे जो जांचे सो माया ।
बिना बिवेक सकल जग जँहडे माया जग भरमाया ॥
परशुराम छत्री नहिं मारा ई छल माया कीन्हा ।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं जानै जीव अमिथ्या दीन्हा ॥
सिरजनहार न ब्याही सीता जल पखान नहिं बधा ।

ये रघुनाथ एक के सुमिरे जो सुमिरे सो अंधा ॥
गोप ग्वाल गोकुल नहिं आये कर ते कंस न मारा ।
मेहरवान है सब का साहब नहिं जीता नहिं हारा ॥
ये कर्त्ता नहिं बौध कहावैं नहीं असुर को मारा ।
ज्ञानहीन कर्त्ता सब भरमे माया जग संहारा ॥
ये कर्त्ता नहिं भये कलंकी नहीं कलिंगहिं मारा ।
ई छल बल सब मायै कीन्हा यतिन सतिन सब टारा ॥
दश अवतार ईश्वरी माया कर्त्ता कै जिन पूजा ।
कहै कबीर सुनो हो संतो उपजे खपै सो दूजा ॥४॥

कर्त्ता-महत्ता

बरनहुं कौन रूप औ रेखा । दूसर कौन आय जो देखा ॥
औ ओंकार आदि नहिं वेदा । ताकर कहौं कौन कुल भेदा ॥
नहिं तारागन नहिं रवि चंदा । नहिं कछु होत पिता के बिंदा ॥
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना । को धरै ना महुकुम को बरना ॥
नहिं कछु होत दिवस अरु राती । ताकर कहहुं कौन कुल जाती ॥
शून्य सहज मन सुरति ते प्रगट भई यक ज्योति ।
बलिहारी ता पुरुष छवि निरालंब जो होति ॥ ६ ॥
एकै काल सकल संसारा । एक नाम है जगत पियारा ॥
तिया पुरुष कछु कथो न जाई । सर्व रूप जग रहा समाई ॥

रूप अरूप जाय नहिं बोली । हलुका गरुआ जाय न तोली ।
भूख न तृखा धूप नहिं छाँहीं । दुख सुख रहित रहै तेहि माँहीं।
अपरम परम रूप मगु नहिं तेहि संख्या आहि ।
कहहि कबीर पुकारि कै अद्भुत कहिये ताहि ॥ ७ ॥

राम गुण न्यारो न्यारो न्यारो ।
अबुझा लोग कहाँ लौं बूझै बूझनहार विचारो ॥
केते रामचंद्र तपसी से जिन जग यह विरमाया ।
केते कान्ह भये मुरलीधर तिन भी अंत न पाया ॥
मच्छ कच्छ वाराह स्वरूपी वामन नाम धराया ।
केते बौध भये निकलकी तिन भी अत न पाया ॥
केतिक सिध साधक सन्यासी जिन वन वास बसाया ।
केते मुनि जन गोरख कहिये तिन भी अत न पाया ॥
जाकी गति ब्रह्मै नहिं पाये शिव सनकादिक हारे ।
ताके गुन नर कैसे पैहो कहै कबीर पुकारे ॥ ८ ॥

अब हम जाना हो हरि बाजी को खेल ।
डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेत सकेल ॥
हरि बाजी सुर नर मुनि जहँडे माया चेटक लाया ।
घर में डारि सबन भरमाया हृदये ज्ञान न आया ॥
बाजी झूंठ बाजीगर सांचा साधुन की मति ऐसी ।
* कह कबीर जिन जैसी समझी ताको गति भइ तैसी ॥ ६ ॥
छेम कुसल औ सही सलामत कहहु कौन को दीन्हा हो ।
आवत जात दुनों विधि लूटे सरब संग हरि लीन्हा हो ॥

सुर नर मुनि सब पीर औलिया मीरा पैदा कीन्हा हो।
कहँ लौं गिनैं अनंत कोटि लौं सकल पयाना दीन्हा हो॥
पानी पवन अकास जाहिगो चंद्र जाहिगो सूरा हो।
वह भि जाहिगो यह भी जाहिगो परत काहु को न पूरा हो॥
कुसलै कहत कहत जग बिनसै कुसल काल की फाँसी हो।
कह कबीर सब दुनिया बिनसल रहल राम अविनासी हो॥१०॥
ऐसा लो तत ऐसा लो, मैं केहि बिधि कहौं गँभीरा लो।
बाहर कहों तो सतगुरु लाजै, भीतर कहों तो झूठा लो॥
बाहर भीतर सकल निरंतर, गुरु परतापै दीठा लो।
दृष्टि न मुष्टि न अगम अगोचर, पुस्तक लिखा न आई लो॥
जिन पहिचाना तिन भल जाना, कहे न को पतियाई लो।
मीन चलै जल मारग जोवै, परम तत्त धौं कैसा लो॥
पुहुप बास हूं ते कछु झीना, परम तत्त धौं ऐसा लो।
आकासे उड़ि गयो बिहंगम, पाछे खोज न दरसी लो॥
कह कबीर सतगुरु दाया तें, बिरला सत पद परसी लो॥११॥
बाबा अगम अगोचर कैसा, तातें कहि समझाओं ऐसा॥
जो दीसै सो तो है नाहीं, है सो कहा न जाई।
सैना बैना कहि समझाओं, गूँगे का गुड़ भाई॥
दृष्टि न दीसै मुष्टि न आवै, बिनसै नाहिं नियारा।
ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे, पंडित करो विचारा॥
बिन देखे परतीत न आवै, कहे न कोउ पतियाना।
समुझा होय सो सब्दै चीन्है, अचरज होय अयाना॥

कोई ध्यावै निराकार को, कोइ ध्यावै आकारा।
यह तो इन दोऊ ते न्यारा, जानै जाननहारा॥
काजी कथै कतेब कुराना, पंडित वेद पुराना।
वह अच्छर तो लखा न जाई, मात्रा लगै न काना॥
नादी बादी पढ़ना गुनना बहु चतुराई भीना।
कह कबीर सो पड़ै न परलय नाम भक्ति जिन चीना॥१२॥

अवधू कुदरति की गति न्यारी।
रंक निवाज करै वह राजा भूपति करै भिखारी॥
ये ते लवँगहिं फल नहिं लागै चंदन फूल न फूलै।
मच्छ शिकारी रमै जँगल में सिंह समुद्रहि झूलै॥
रेंडा रूख भया मलयागिर चहुँ दिसि फूटी बासा।
तीन लोक ब्रह्मांड खंड में देखै अंध तमासा॥
पंगुल मेरु सुमेरु उलंघै त्रिभुवन मुक्ता डोलै।
गूंगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै अनहद बाणी बोलै॥
बाँधि अकाश पताल पठावै सेस सरग पर राजै।
कहै कबीर राम हैं राजा जो कछु करैं सो छाजै॥ १३॥

कर्त्तायुग

अवधू छोड़हु मन विस्तारा।
सो पद गहो जाहि ते सद्गति पारब्रह्म ते न्यारा॥
नहीं महादेव नहीं महम्मद हरि हजरत तब नाहीं।

आदम ब्रह्म नाहिं तब होते नहीं धूप नहिं छांहीं ॥
असी सहस पैगंबर नाहीं सहस अठासी मूनी ।
चंद सूर्य्य तारागन नाहीं मच्छ कच्छ नहिं दूनी ॥
बेद किताब सुमृत नहिं सयम नाहिं यम न परसाही ।
बांग निवाज नहीं तब कलमा रामौ नहीं खोदाही ॥
आदि अंत मन मध्य न होते आतश पवन न पानी ।
लख चौरासी जीव जंतु नहिं साखी शब्द न बानी ॥
कहहिं कबीर सुनो हो अवधू आगे करहु बिचारा ।
पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे किरतिम किन उपचारा ॥ १४ ॥
जहिया होत पवन नहिं पानी। तहिया सृष्टि कौन उतपानी ॥
तहिया होत कली नहिं फूला। तहिया होत गर्भ नहिं मूला ॥
तहिया होत न विद्या बेदा। तहिया होत शब्द नहिं खेदा ॥
तहिया होत पिंड नहिं बासू। ना धर धरणि न गगन अकासू ॥
तहिया होत गुरू नहिं चेला। गम्य अगम्य न पंथ दुहेला ॥
अविगति की गति क्या कहौं जाके गांउ न ठांउ ।
गुणों विहीना पेखना का कहि लीजे नांउ ॥ १५ ॥

सत्य लोक

बलिहारी अपने साहब की जिन यह जुगुत बनाई ।
उनकी शोभा केहि विधि कहिये मोसों कही न जाई ॥
बिना ज्योति की जहँ उँजियारी सो दरसै वह दीपा ।
निरतें हंस करें कौतूहल वोही पुरुख समीपा ॥

झलकै पदुम थानि नाना विध माथे छत्र बिराजै।
कोटिन भानु चंद तारागण एक फुचग्यिन छाजै॥
कर गहि बिहँसि जबै मुख बोलै तब हंसा सुख पावै।
बश अस जिन बूझ बिचारी सो जीवन मुकतावै॥
चौदह लोक वेद का मंडल तहँ लग काल दोहाई।
लोक वेद जिन फंदा काटी ते वह लोक सिधाई॥
सात शिकारी चौदह पारथ भिन्न भिन्न निरतावै।
चारि अंश जिन समझ बिचारी सो जीवन मुकतावै॥
चौदह लोक बसै यम चौदह तहँ लग काल पसारा।
ताके आगे ज्योति निरंजन बैठे सुन्न मझारा॥
सोरह पट अक्षर भगवाना जिन यह सृष्टि उपाई।
अक्षर कला सृष्टि से उपजी उनहीं माहँ समाई॥
सत्रह संख्या पर अधर दीप जहँ शब्दातीत बिराजै।
निरतै सखी बहु बिध शोभा अनहद बाजा बाजै॥
ताके ऊपर परमधाम है मरम न कोई पाया।
जो हम कही नहीं कोउ मानै ना कोइ दूसर आया॥
वेदन साखी सब जिउ अरुझे परम धाम ठहराया।
फिरि फिरि भटकै आप चतुर है वह घर काहु न पाया॥
जो कोइ होइ सत्य का किनका सो हम का पतिआई।
और न मिलै कोटि कर थाकै बहुरि काल घर जाई॥
सोरह सख्य के आगे समरथ जिन जग मोहि पठाया।
कहैं कबीर आदि की बानी वेद भेद नहिं पाया॥ १६॥

चला जबलोक को सोक सब त्यागिया
हंस को रूप सतगुर बनाई।
भृंग ज्यों कीट को पलटि भृंगै किया
आप सम रंग दे लै उड़ाई॥
छोड़ि नासूत मलकूत को पहुँचिया
बिश्नु की ठाकुरी दीख जाई।
इंद्र कुब्बेर जहँ रंभ को नृत्य है
देव तैंतीस कोटिक रहाई॥
छोड़ि बैकंठ को हंस आगे चला
शून्य में ज्योति जगमग जगाई।
ज्योति परकाश में निरखि निस्तत्त्व को
आप निर्भय हुआ भय मिटाई॥
अलख निरगुन करै वेद जेहि
अस्तुती तीनहूं देव को है पिताई।
तिन परे श्वेत मूरति धरे भगवान
भाग को आन तिनको रहाई॥
चार मुक्काम पर खंड सोरह कहैं
अंड को छोर हाँते रहाई।
अंड के परे असथान आचिंत को
निरखिया हंस जब उहां जाई॥
सहस औ द्वादसै रुद्र हैं संग में
करत कल्लोल अनहद बजाई।

तासु के वदन की कौन महिमा कहौं
भासती देह अति नूर छाई ॥
महल कचन वने मनिक तामें जडे
वैठ तहँ कलस आखंड छाजे ।
अचिंत के परे असथान सोहंग का
हंस छत्तीस तहँवा विराजै ॥
नूर का महल औ नूर की भूमि है
तहां आनंद सों द्वंद भाजै ।
करत कल्लोल वहु भांति से संग
यक हंस सोहंग के जो समाजै ॥
हंस जब जात षट चक्र को वेध के
सात मुकाम में नजर फेरा ।
परे सोहंग के सुरति इच्छा कही
सहस वावन जहां हंस हेरा ॥
रूप की राशि ते रूप उनको वना
हिंदु जी नहीं उपमा निवेरा ।
सुरति से भेंटिके शब्द को टेकि
चढि देखि मुकाम अकूर फेरा ॥
शून्य के बीच में विमल वैठक जहां
सहज असथान है गैव केरा ।
न वो मुकाम यह हंस जब पहुंचिया
पलक वेलंव हां कियो डेरा ॥

तहां से डोरि मकतार ज्यों लागिया
ताहि चढ़ि हंस गोदै दरेरा ।
भये आनंद से फंद सब छोड़िया
पहुंचिया जहाँ सतलोक मेरा ॥
हंसिनी हंस सब गाय बजाय कै
साजि कै कलस ओहि लेन आये ।
युगन युग बीछुरे मिले तुम आइ कै
प्रेम करि अंग सों अँग लगाये ॥
पुरुख ने दरस जब दीन्हि या हंस को
तपनि बहु जनम की तब नसाये ।
पलटि कै रूप जब एक सो कीन्हिया
मनहुं तब भानु खोड़स उगाये ॥
पुहुप के दीप पीयूख भोजन करै
शब्द की देह जब हंस पाई ।
पुहुप के सेहरा हंस औ हंसिनी
सच्चिदानंद शिर छत्र छाई ॥
दिपै बहु दामिनी दमक बहु भांति की
जहां घन शब्द को घुमड़ लाई ।
लगे जहं बरसने गरजि घन घेरि कै
उठत तहं शब्द धुनि अति सुहाई ॥
सुनै सोइ हंस तहं यूथ के यूथ है
एक ही नूर यक रंग रागै ।

करत बीहार मन भावनी मुक्ति भै
कर्म औ भर्म सब दूर भागे ॥
रंक औ भूप कोइ परखि आवै नहीं
करत कल्लोल बहु भांति पागे।
काम औ क्रोध मद लोभ अभिमान सब
छाड़ि पाखंड सत शब्द लागे ॥
पुरुष के बदन की कौन महिमा कहौं
जगत में उभय कछु नांहि पाई।
चंद औ सूर गण जोति लागैं नहीं
एक ही नक्ख परकाश भाई ॥
पान परवान जिन वंश का पाइया
पहुंचिया पुरुष के लोक जाई।
कहै कव्वीर येहि भांति सों पाइहौ
सत्य की राह सो प्रगट गाई ॥ १७ ॥
छोड़ि ना सूत मलकूत जबरूत को
और लाहूत हाहूत बाजी।
और साहूत राहूत हां डारि दै
कूदि आहूत जाहूत जाजी ।
जाय जाहूत में खुद खाविंद जहं
वहीं मकान साकेत साजी।
कहै कव्वीर हां भिस्त दोजख थके
बेद कीताब काहूत काजी ॥ १८ ॥

जहं सतगुरू खेलैं ऋतु बसंत।
तहं परम पुरुष सब साधु संत॥
यह तीन लोक ते भिन्न राज।
तहं अनहद धुनि चहुं पास बाज॥
दीपकैं बरैं जहं निराधार।
बिरला जन कोई पाव पार॥
जहं कोटि कृश्न जोरे दु हाथ।
जह कोटि विश्नु नावैं सुमाथ॥
जह कोटिन ब्रह्मा पढ पुरान।
जह कोटि महादेव धरैं ध्यान॥
जहं कोटि सरस्वति करैं राग।
जह कोटि इंद्र गावने लाग॥
जहं गण गंध्रव मुनि गनि न जांहिं।
सो तहवां परगट आपु आहिं॥
तह चोवा चदन अरु अबीर
तहं पुहुप बास भरि अति गँभीर॥
जहं सुरति सुरग सुगध लीन।
सब वही लोक में बास कीन॥
में अजर दीप पहुंच्यों सुजाइ।
तहं अजर पुरुख के दरस पाइ॥
सो कह कबीर हृदया लगाइ।
यह नरक उधारन नाम जाइ॥ १६॥

सदा बसंत होत तेहि ठाऊं।
संशय रहित अमरपुर गाऊं॥
जहँवा रोग सोग नहिं होई।
सदा अनंद करै सब कोई॥
सूरज चंद दिवस नहिं राती।
बरन भेद नहिं जाति अजाती॥
तहंवाँ जरा मरन नहिं होई।
कर विनोद क्रीड़ा सब कोई॥
पुहुप बिमान सदा उँजियारा।
अमृत भोजन करैं अहारा॥
काया सुंदर को परवाना।
उदित भये जिमि षोड़स भाना॥
५ता एक हंस उँजियारा।
शोभित चिकुर उदय जनु तारा॥
विमल बास जहंवां पौढ़ाहीं।
जोजन चार घ्रान सो जाहीं॥
स्वेत मनोहर छत्र शिर छाजा।
बूझि न परै रंक अरु राजा॥
नहिं तहँ नरक स्वर्ग की खानी।
अमृत बचन बोलै भल बानी॥
अस सुख हमरे घरन महँ कहैं कबीर बुझाय
सत्य शब्द को जानिके अस्थिर बैठे आय॥

तू सूरत नैन निहार अंड के पारा है।
तू हिरदे सोच विचार यह देस हमारा है॥
पहले ध्यान गुरन का धारो, सुरत निरत मन पवन चितारो।
सुहेलना धुन नाम उचारो, लहु सतगुरु दीदारा है॥
सतगुरु दरस होय जब भाई, वह दें तुमको नाम चिताई।
सुरत शब्द दोउ भेद बताई, देख अंड के पारा है॥
सतगुरु कृपा दृष्टि पहिचाना, अंड सिखर बेहद मैदाना।
सहज दास तहँ रोपा थाना, अग्र दीप सरदारा है॥
सात सुन्न बेहद के मांहीं, सात सख तिनकी ऊँचाई।
तीन सुन्न लौं काल कहाई, आगे सत्त पसारा है॥
परथम अभय सुन्न है भाई, कन्या कढ़ यहँ बाहर आई।
जोग संतायन पूछो वाई, दारा वह भरतारा है॥
दूजे सकल सुन्न कर गाई, माया सहित निरंजन राई।
अमरकोट के नक्ल बनाई, अंड मध रच्यो पसारा है॥
तीजे है मह सुन्न सुखासी, महा काल यहँ कन्या ग्रासी।
जोग संतायन आ अविनासी, गल नख छेद निकारा है॥
चौथे सुन्न अजोख कहाई, सुद्ध ब्रह्म के ध्यान समाई।
आद्या यों बीजा ले आई, देखो दृष्टि पसारा है॥
पचम सुन्न अलेल कहाई, तहँ अदली बँदियान रहाई।
जिनका सतगुरु न्याव चुकाई, गादी अदली सारा है॥
षष्ठे सार सुन्न कहलाई, सार भँडार याहि के मांहीं।
नीचे रचना जाहि रचाई, जाका सकल पसारा है॥

सतयें सत्त सुन्न कहलाई, सत्त भँडार याहि के मांहीं।
नि.तत रचना ताहि रचाई, जो सबहिन ते न्यारा है॥
सत सुन ऊपर सत की नगरी, बाट बिहंगम बांकी डगरी।
सो पहुँचे चाले बिन पगरी, ऐसा खेल अपारा है॥
पहली चकरि समाध कहाई, जिन हंसन सतगुरु मति पाई।
वेद भरम सब दियो उड़ाई, तज तिरगुन भए न्यारा है॥
दूजी चकरि अगाध कहाई, जिन सतगुरु सँग द्रोह कराई।
पीछे आन गहे सरनाई, सो यहँ आन पधारा है॥
तीजो चक्री मुनि कर नामा, जिन मुनियन सतगुरु मत जाना।
सो मुनियन यहँ आय रहाना, करम भरम तज डारा है॥
चौथी चकरी धुन है भाई, जिन हंसन धुन ध्यान लगाई।
धुन सग पहुँचे हमरे पांहीं, यह धुन शब्द मँझारा है॥
पचम चकरी रास जो भाखी, अलमीना है तहँ मध झांकी।
लीला कोट अनत वहां की, रास विलास अपारा है॥
षष्टम चकरि विलास कहाई, जिन सतगुरु सँग प्रीति निबाही।
छुटते देह जगह यह पाई, फिर नहिं भव अवतारा है॥
सँतवीं चकरि विनोद कहानो, कोटिन बस गुरन तहँ जानो।
कलि में बोध किया ज्यों भानो, अधकार उँजियारा है॥
अठवें चकरि अनुरोध बखाना, तहाँ जुलहदी ताना ताना।
जाका नाम कबीर बखाना, जो सतन सिर धारा है॥
ऐसो ऐसी सहस करोडी, ऊपर तले रची ज्यों पोडी।
गादी अदलि रही सिर मोडी, सतगुरु बंदि निवारा है॥

अनुरोधी के ऊपर भाई, पद निरवान के नीचे ताही।
पाँच संख है याहि ऊँचाई, अद्भुत ठाठ पसारा है॥
सोलह सुतहित दीप रचाई, सब सुत रहँ तासु के माहीं।
गादी अदल कबीर यहां हीं, जो सबहिन सरदारा है॥
पद निरवान है अनँत अपारा, नूतन सूरति लोक सुधारा।
सत्त पुरूख नूतन तन धारा, सतगुरू सतन सारा है॥
आगे सत्त लोक है भाई, सखन कोस तासु ऊँचाई।
हीरा पन्ना लाल जड़ाई, अद्भुत खेल अपारा है॥
बाग बगीचे खिलि फुलवारी, अमृत नहरें हो रहिं जारी।
हंसा खेल करत तह भारी, अनहद घुरै अपारा है॥
तामध अधर सिँघासन गाजे, पुरुख शब्द तहँ अधिक बिराजे।
कोटिन सूर रोम इक लाजै, ऐस पुरुख दीदारा है॥
हँसि हंस आरती उतारैं, खोडस भानु सूर पुनि वारैं।
पग बीना सत शब्द उचारैं, वेधत हिये मँझारा है॥
तापर अगम महल इक न्यारा, संखन कोट तासु विस्तारा।
बाग बावड़ी अमृतधारा, अधरी चलै फुहारा है॥
मोति महल श्री हीरन चैारा, सेत बरन तहँ हंस चकोरा।
सहस सूर छवि हसन जोरा, ऐसा रूप निहारा है॥
अधर सिँघासन जिंदा साईं, अर्बन सूर रोम सम नाहीं।
हंस हिरंबर चँवर डुलाईं, ऐसा अगम अपारा है॥
अधरी ऊपर अधर धराई, सरान संख तासु ऊँचाई।
झिलमिलाहट सो लोक कहाई, झिलमिल झिलमिल सारा है॥

बाग बगीचे झिलमिल कारी, रतनन जड़े पात औ डारी।
मोति महल औ रतन अटारी, पुरुख बिदेह पधारा है॥
कोटिन भानु हंस को रूपा, धुन है वहँ की अजब अनूपा।
हंसा करत चँवर शिर भूपा, बिन कर चँवर दुलारा है॥
हंसा केल सुनो मन लाई, एक हंस के जो चित आई।
दूजा हंस समझ पुनि जाई, बिन मुख बैन उचारा है॥
तेहि आगे निःलोक है भाई, पुरुख अनामी अकह कहाई।
जो पहुँचे जानेंगे वाही, कहन सुनन ते न्यारा है॥
रूप सरूप कछु वहँ नाहीं, ठौर ठांव कुछ दीसे नाहीं।
अरज तूल कुछ दृष्टि न आई, कैसे कहूं सुमारा है॥
जापर किरपा करिहैं साईं, गगनी मारग पावै ताही।
सत्तर परलय मारग मांहीं, अब पावै दीदारा है॥
कह कबीर मुख कहा न जाई, ना कागद पर अंक चढ़ाई।
मानों गूंगे सम गुड़ खाई, सैनन बैन उचारा है॥२१॥
चुवत अमीरस भरत ताल जहं शब्द उठै असमानी हो।
सरिता उमड़ सिंधु को सोखै नहिं कछु जात बखानी हो॥
चाँद सुरज तारागण नहिं वहँ नहिं वहँ रैन बिहानी हो।
बाजे बजें सितार बाँसुरी ररंकार मृदु बानी हो॥
कोट झिलमिली जहँ वह झलकै बिन जल बरसत पानी हो।
शिव अज बिश्नु सुरेस सारदा निज निज मति अनुमानी हो॥
दस अवतार एक तत राजें असतुति सहज सयानी हो।
कहैं कबीर भेद की बातें बिरला कोइ पहिचानी हो॥

कर पहिचान फेर नहिं आवे जम जुलमी की खानी हो ॥२२॥
सायया या घर सब से न्यारा, जहँ पूरन पुरूस हमारा।
जहा नहि सुख दुख सांच भूट नहिं पाप न पुन्न पसारा।
नाह दिन रैन चद नहिं सूरज विना जोति उँजियारा॥
नहिं तह ज्ञान ध्यान नहिं जप तप वेद किते न बानी।
करनी धरनी रहनी गहनी ये सब उहा हेरानी॥
घर नहिं अधर न बाहर भीतर पिंड ब्रह्मड कछु नाहीं।
पांच तत्व गुन तीन नहा तहँ साखी शब्द न साहीं॥
मूल न फूल वेल नहिं बीजा विना वृच्छ फल सोहै।
ओअ्म सोह अरध उधर नहिं स्वासा लेखन को है॥
नहि निरगुन नहिं सरगुन भाई नहिं सूछम अस्थूल।
नहिं अच्छर नहि अविगत भाई ये सब जग के भूल॥
जहाँ पुरूस तहँवा कछु नाहीं कह कबीर हम जाना।
हमरा सैन लखै जो कोइ पावै पद निरवाना ॥२३॥

सुरन सरावर न्हाइ के मगल गाइये।
दरपन शब्द निहार तिलक शिर लाइये॥
चल हसा सतलाक वहुत सुख पाइये।
परसि पुरुस के चरन बहुरि नहिं आइये॥
अमृत भोजन तहा अमी अचवाइये।
मुख में सेत तँबूल शब्द लौ लाइये॥
पुहुप अमूपम बास हस घर चलि जिये।
अमृत कपडे ओढि मुकुट शिर दीजिये॥

यह घर बहुत अनंद हंसा सुख लीजिये।
बदन मनोहर गात निरख के जीजिये॥
दुति बिन मसि बिन अंक सो पुस्तक बांचिये।
बिन करताल बजाय चरन बिन नाचिये॥
बिन दीपक उँजियार अगम घर देखिये।
खुल गये शब्द किवाड़ पुरुष सों भेटिये॥
साहब सन्मुख होय भक्ति चित लाइये।
मन मानिक संग हंस दरस तहं पाइये॥
कह कबीर यह मंगल भाग न पाइये।
गुरु संगत लौ लाय हंस चल जाइये॥ २४॥

कर्त्ता-स्थान

संतो योग अध्यातम सोई।
एकै ब्रह्म सकल घट व्यापै दुतिया और न कोई॥
प्रथम कमल जहँ ज्ञान चारि दल तहँ गणेश को बासा।
रिधि सिधि जाकी शक्ति उपासी जप ते होत प्रकासा॥
षट दल कमल ब्रह्म को बासा सावित्री सँग सेवा।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं इंद्र सहित सब देवा॥
अष्ट कमल जहँ हरि संग लछमी तीजो सेवक पवना।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं मिटिगो आवा गवना॥
द्वादस कमल में शिव को बासा गिरिजा शक्ती सारंग।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं ज्ञान, सुरति लै पारंग॥

षोडस कमल में जीव को वासा शक्ति अविद्या जानै।
एक सहस जहँ जाप जपत है ऐसा भेद बखानै॥
भवँर गुफा जहँ दुइ दल कमला परम हंस कर वासा।
एक सहस जाके जाप जपत हैं करम भरम को नासा॥
सहस कमल में झिलमिल दरसो आपुइ बसत अपारा।
जोति सरूप सकल जग व्यापी अछय पुरुष है प्यारा॥
सुरति कमल पर सतगुरु बोल सहज जाप जप सोई।
छः से इकइस सहसहिं जपि ले बूझै अजपा कोई॥
यहो ज्ञान को कोई बूझै भेद अगोचर भाई।
जो बूझै सो मन का फेरै कह कबीर समझाई॥ २५॥

रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठे जहँ समुझि परे जब ध्यान धरै॥
बिना ताल जह कँवल फुलाने तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उँजियारी दरसे जहँ तहँ हंसा नजर परै॥
दसवें द्वारे ताडी लागी अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवे काम क्रोध मद लोभ जरै॥
जुगन जुगन की तृषा बुझानी कर्म भरम अघ व्याधि टरै।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो अमर होय कबहूँ न मरै॥ २६॥

मोको कहाँ ढूँढा बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेडो ना मैं छुरी गँडास में॥
नहीं खाल में नहीं पोंछ में ना हड्डी ना मॉस में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद ना काबे कैलासे में॥

ना तौ कौनो क्रिया कर्म में नहीं जोग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं पल भर की तालास में॥
मैं तो रहौं सहर के बाहर मेरी पुरी मवास में।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो सब स्वाँसों की स्वाँस में॥२७॥

कर्त्ता-प्राप्ति-साधन

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड
कर खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़ दे
बालके आय जा भेख भगवंत पाहीं॥
भेख भगवंत की सेस महिमा करै
सेस के सीस पर चरन डारै।
कामदल जीतिके कँवल दल सोधि के
ब्रह्म को बेधि कै क्रोध मारै॥
पदम आसन करै पवन परिचै करै
गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोइ संतजन जौहरी
करम की रेख पर मेख मारै॥२८॥

दो सुर चले सुभाव सेती
नाभी से उलटा आवता है।
बिच इंगला पिंगला तीन नाड़ी
सुषमन से भोजन पावता है॥

पूरक करे कुँभक करे
रेचक करे भरि आवता है।
कायम कबीर का भूलना जी
दया भूल परे पछितावता है ॥२६॥

मुरशिद नैनो बीच नबी है।
स्याह सपेद तिला बिच तारा अविगत अलख रबी है॥
आँखी मद्धे पाखी चमके पाँखी मद्धे द्वारा।
तहि द्वारे दुरबीन लगावे उतरे भौजल पारा॥
सुन्न सहर में बास हमारा तहँ सरवंगी जावे।
साहब कबिर सदा के संगी शब्द महल ले आवे॥ ३०॥

कर नैनो दीदार महल में प्यारा है।
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, सील सतोख छमा सत धारो।
मद्य मांस मिथ्या तजि डारो, हो ज्ञान घोडे असवार भरम से न्यारा है॥
धोती नेती बस्ती पाओ आसन पदम जुगुत से लाओ।
कुंभक कर रेचक करवाओ, पहले मूल सुधार कार्य्य हो सारा है॥
मूल कँवल दल चतुर बखानो, जाप कलिंग लाल रंग मानो।
देव गनेस तहँ रोपा थानो, ऋधि सिधि चवँर ढुलारा है॥
स्वाद चक्र षट दल विस्तारो, ब्रह्म सविनी रूप निहारो।
उलटि नागिनी का शिर मारो, तहाँ शब्द ओंकारा है॥
नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिंघासन बिश्नु बिराजा।
जाप हिरिंग तासु मुख गाजा, लछमी शिव आधारा है॥
द्वादश कँवल हृदय के माँही जग गौर शिव ध्यान लगाई।

सोहं शब्द तहाँ धुन छाई, गन कर जैजैकारा है॥
दो दल कँवल कंठ के माँहीं, तेहि मध बसे अविद्या बाई।
हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुलाई, श्रंग नाम उच्चारा है॥
तापर कंज कँवल है भाई, बग भौंरा दुइ रूप लखाई।
निज मन करत तहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछनारा है॥
कँवलन भेद किया निरवारा, यह सब रचना पिंड मझारा।
सतसंग कर सतगुरु सिर धारा, वह सत नाम उचारा है॥
आँख कान मुख बंद कराओ, अनहद झिंगा शब्द सुनाओ।
दोनो तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है॥
चँद सूर एकै घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरवेनी के संध समाओ, भौर उतर चल पारा है॥
घंटा संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई।
तामध करता निरखो सोई, बंक नाल धँस पारा है॥
डाकिनि साकिनि बहु किलकारें जम किंकर धर्म दूत हकारें।
सत्त नाम सुन भागें सारे, सतगुरु नाम उचारा है॥
गगन मंडल बिच उर्ध मुख कुइया, गुरमुख साधू भर भर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन कीया, जाके हिय अँधियारा है॥
त्रिकुटि महल में विद्या सारा, घनहर गरजै बजे नगारा।
लाल बरन सूरज उँजियारा, चतुर कँवल मझार शब्द ओंकारा है॥
साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा।
दसवाँ जाय खोल जिन दीन्हा, जहाँ कुलुफ रहा मारा है॥
आगे सेत सुन्न है भाई, मान सरोवर पैठि अन्हाई।

हंसन मिल हंसा होइ जाई, मिलै जो अमी अहारा है॥
किंगरी सारँग बजै सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरवारा।
द्वादस भानु हंस उँजियारा, षटदल कँवल मंझार शब्द ररंकारा है॥
महा सुन्न सिंध विषमी घाटी बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी।
व्याघर सिंघ सरप बहु काटी, सहज अचिंत पसारा है॥
अठ दल कँवल पार ब्रह्म भाई, दहिने द्वादस अचिंत रहाई।
बायें दस दल सहज समाई, यों कँवलन निरवारा है॥
पाँच ब्रह्म पाँचों अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीनो।
चार मुकाम गुप्त तहं कीनो, जा मध बंदीवान पुरुष दरवारा है॥
दो परवत के संध निहारो, भंवर गुफा में संत पुकारो।
हंसा करते केल अपारो, तहां गुरन दरवारा है॥
सहस अठासी दीप रचाये, हीरे पन्ने महल जड़ाये।
मुरली बजत अखंड सदाये, तहँ सोहं झनकारा है॥
सोहं हद तजी जब भाई, सत्त लोक की हद पुनि आई।
उठत सुगंध महा अधिकाई, जाको वार न पारा है॥
षोड़स भानु हंस को रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा।
हंसा करत चँवर शिर भूपा, सत्त पुरुष दरवारा है॥
कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुन चंद्र लखोई।
पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसा पुरुष दीदारा है॥
आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुष की तहँ ठकुराई।
अरबन सूर रोम सम नांहीं, ऐसा अलख निहारा है॥
तापर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताही को राजा।

भरयन सूर रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है॥
तापर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई।
जो पहुँचा जानेगा वाही कहन सुनन ते न्यारा है॥
काया भेद किया निरवारा, यह सब रचना पिंड मझारा।
माया अवगति जाल पसारा सो कारीगर भारा है॥
आदि माया कीन्ही चतुराई झूठी बाजी पिंड दिखाई।
अवगति रचन रची अँड माहीं ताका प्रतिबिंब डारा है॥
शब्द विहंगम चाल हमारी कह कबीर सतगुरु दइ तारी।
खुले कपाट शब्दझनकारी पिंड अंडके पारसो देस हमारा है॥३'॥

फर नैनो दीदार पिंड से न्यारा है
हिरदे सोच विचार यह अंड मझारा है।

चोरी जारी निंदा चारो, मिथ्या तज सतगुरु शिर धारो।
सतसँग कर सत नाम उचारो, सनमुख लहु दीदारा है॥
जो जन ऐसी करी कमाई, तिनकी जग फैली रोसनाई।
अष्ट प्रमान जगह सुख पाई, देखा अंड मँझारा है॥
साइ अंड की अवगत राई अकह अमरपुर नकल बनाई।
सुद्ध ब्रह्म पद तह ठहराई, नाम अनामी धारा है॥
सतवीं सुन्न अंड के माहीं झिलमिल हद की नकल बनाई।
महा काल तह आन रहाई, अगम पुरुष उच्चारा है॥
छठवीं सुन्न जो अंड मझारा, अगम महल की नकल सुधारा।
निरगुन काल तहा यह धारा, अलख पुरुष कहु न्यारा है॥

पंचम सुन्न अंड के माहीं, सत्त लोक की नकल बनाई।
माया सहित निरंजन राई, सत्त पुरुष दीदारा है॥
चौथी सुन्न अंड के मांहीं, पद निरवान कि नक्ल बनाई।
अविगत कला है सतगुरु आई, सो सोहं यह म्हारा है॥
तीजी सुन्न की सुनो बडाई, एक सुन्न के दोय बनाई।
ऊपर महा सुन्न अधिकाई, नीचे सुन्न पसारा है॥
सतवीं सुन्न महा काल रहाई, तासु कला महा सुन्न समाई।
पारब्रह्म कर थाप्यो ताही, सो नि:अच्छर सारा है॥
छठयीं सुन्न जो निरगुन राई, तासु कला आ सुन्न समाई।
अच्छर ब्रह्म कहे पुनि ताही, सोई शब्द ररंकारा है॥
पंचम सुन्न निरंजन राई, तासु कला दूजी सुन छाई।
पुरुष प्रकिरती पदवी पाई, सरगुन सुद्ध पसारा है॥
पुरुष प्रकृति दूजी सुन मांहीं, तासु कला पिरथम सुन आई।
जोत निरंजन नाम धराई, सरगुन थूल पसारा है॥
पिरथम सुन्न जो जोत रहाई ताकी कला अविद्या थाई।
पुत्रन संग पुत्री उपजाई, सिंध वैराट पसारा है॥
सतवें अकास उतर पुनि आई, ब्रह्मा विष्णु समाधि जगाई।
पुत्रन सग पुत्री परनाई, लिंग नाम उच्चारा है॥
छठे अकास शिव अवगति भौंरा, जग गैार रिधि करती चोरा।
गिरि कैलास गन करते सोरा, तह सोहं सिरमौरा है॥
पँचम अकास में विष्णु विराजे, लछमी सहित सिंघासन साजे।
हिरिंग बैकुंठ भक्त समाजे, भक्तन कारज सारा है॥

चउथ अकास ब्रह्म विस्तारा, सावित्री संग करत विहारा।
ब्रह्म नाद्धि ओम पद सारा, यह जग सिरजनहारा है॥
तिसर अकास रहे धर्म राई, नरक सुरग जिन लीन्ह बनाई।
करमन फल जीवन भुक्ताई, ऐसा अदल पसारा है॥
दुसर अकास में इन्द्र रहाई, देव मुनी बासा तहँ पाई।
रंभा करती निरत सदाई, मलिंग शब्द उच्चारा है॥
प्रथम अकास मृत्यु है लोका, जनम मरन का जहँ नित धोखा।
सो हंसा पहुचे सतलोका सतगुरु नाम उचारा है॥
चौदह तबक किया निरवारा, अब नीचे का सुनो बिचारा।
सात तबक में छ रखवारा, भिन भिन सुनो पसारा है॥
सेस धवल बाराह कहाई, मीन कच्छ औ कुरम रहाई।
सो छ रहे सात के माहीं, यह पातल पसारा है॥ २२॥

राम नाम महिमा

राम के नाम ते पिंड ब्रह्मड सब राम को नाम सुनि भर्म भानी।
निगुन निरकार के पार परब्रह्म है तासु को नाम रकार जानी।
विष्णु पूजा करै ध्यान शकर धरै
भनहि सुविरचि बहु विविध बानी।
कहै कब्बीर कोउ पार पावै नहीं
राम को नाम है अकह कहानी॥ २३॥

रसना राम गुण रमि रमि पीजै। गुणातीत निर्मूलक लीजै।
निरगुन ब्रह्म जपो रे भाई। जेहि सुमिरत सुधि बुध सब पाई॥

विख तजि राम न जपसि अभागे। का बूडे लालच के लागे।
ते सब तरे राम रससादी। कह कबीर बूड़े बकवादी ॥ ३४ ॥
मन रे जब ते राम कहो रे। फिरि कहिबे को कछु न रहो रे।
का भो जोग यज्ञ जप दाना। जो तैं राम नाम नहिं जाना॥
काम क्रोध दोउ भारे। गुरु प्रसाद सब तारे।
कह कबीर भ्रमनाशी। राम मिले अविनाशी ॥ ३५ ॥

राम का नाम संसार में सार है
राम का नाम है अमृत बानी।
राम के नाम ते कोटि पातक टरे
राम का नाम बिस्वास मानी॥
राम का नाम लै साधु सुमिरन करै
राम का नाम लै भक्ति ठानी।
राम का नाम ले सूर सनमुख लरे
पैठि सग्राम में युद्ध ठानी॥
राम का नाम लै नारि सत्ती भई
सेह बनि कत सँग जरि उडानी।
राम का नाम लै तीर्थ सब भरमिया
करत अस्नान झकोर पानी॥
राम का नाम ले मूर्त्तिपूजा करै
राम का नाम लै देत दानी॥
राम का नाम लै विप्र भिच्छुक बनै
राम का नाम दुर्लम्भ जानी॥

राम का नाम चौवेद का मूल है
निगम निघार करतत्य द्दानी।
राम का नाम षट सासतर मथिये
चली षटदरसनों में कहानो॥
राम का नाम अगाध लीला वड़ी
खोजते खोज नहिं हार मानो।
राम का नाम ले विष्णु सुमिरन करै
राम का नाम शिवजोग ध्यानी॥
राम का नाम ले सिद्ध साधक वने
सभु सनकादि नारद गिआनी।
राम का नाम ले दृष्टि लइ राम चद
भय वासिष्ट गुरु मंत्र दानी॥
कहा ला कहां अगाध लीला रची
राम का नाम काहू न जानी।
राम का नाम लै कृष्ण गीता कथी
बांधिया सेत तव मर्म जानी॥
हैं परम जोति श्री निगुन निराकार है
तासु को नाम निरकार मानी।
रूप विन रेख विन निगम अस्तुति करै
सत्त की राह अनकथ कहानी॥
विष्णु सुमिरन करै जोग शिव जोह धरै
भनै सव ब्रह्म वेदांत गाया।

ब्रह्म सनकादि कोइ पार पावै नहीं
तासु का नाम कह राम राया।
कह कब्बीर यह शख्स तहकीक कर
राम का नाम जो पृथी लाया ॥ ३६ ॥

नाम अमल उतरै ना भाई।
और अमल छिन छिन चढि उतरै नाम अमल दिन चढै सवाई॥
देखत चढै सुनत हिय लागै सुरत किये तन देत घुमाई।
पियत पियाला भये मतवाला पाया नाम मिटी दुचिताई॥
जो जन नाम अमल रस चाखा तर गइ गनिका सदन कसाई।
कह कबीर गूंगे गुड खाया बिन रसना का करै बडाई॥ ३७॥

शब्द-महिमा

साधो शब्द साधना कीजै।
जासु शब्द ते प्रगट भये सब शब्द सोई गहि लीजै॥
शब्दहिं गुरू शब्द सुनि सिख भे शब्द सो बिरला बूझै।
सोइ सिष्य गुरू महातम जेहि अंतरगत सूझै॥
शब्दै वेद पुरान कहत हैं शब्दै सब ठहरावै।
शब्दै सुर मुनि संत कहत हैं शब्द भेद नहिं पावै॥
शब्दै सुनि सुनि भेख धरत हैं शब्द कहै अनुरागी।
षट दरशन सब शब्द कहत हैं शब्द कहै बैरागी॥
शब्दै माया जग उतपानी शब्दै केरि पसारा।
कह कबीर जहँ शब्द होत हैं तवन भेद हैं न्यारा॥ ३८॥

साधो शब्द सभन से न्यारा जानैगा कोई जाननहारा॥
जोगी जती तपी सन्यासी, अग लगावैं छारा।
मूल मन्त्र सतगुरु दाया बिन, कैसे उतरैं पारा॥
योग यज्ञ व्रत नेम साधना, कर्म धर्म व्योपारा।
सो तो मुक्ति सबन ते न्यारी, फस छूटै जम द्वारा॥
निगम नेति जाके गुन गावैं, शङ्कर जोग अधारा।
ध्यान धरत जेहि ब्रह्मा विष्णु, सो प्रभू अगम अपारा॥
लागा रहै चरन सतगुरु के, चंद चकोर की धारा।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, नख शिख शब्द हमारा॥३९॥
शब्द को खोजि ले शब्द को बूझि ले शब्द ही शब्द तू चलो भाई
शब्द आकास है शब्द पाताल है शब्द ते पिंड ब्रह्मांड छाई॥
शब्द नयना बसै शब्द सरवन बसै शब्द के ख्याल मूरत बनाई।
शब्द ही वेद है शब्द ही नाद है शब्द ही शास्त्र बहु भाति गाई॥
शब्द ही यन्त्र है शब्द ही मन्त्र है शब्द ही गुरू सिख को सुनाई।
शब्दही तत्त है शब्द नि तत्व है शब्द आकार निराकार भाई॥
शब्द ही पुरुष है शब्द ही नारि है शब्द ही तीन देवा थपाई।
शब्द ही दृष्ट अनदृष्ट ओंकार है शब्द ही सकल ब्रह्मांड जाई॥
कहैं कब्बीर तैं शब्द को परखि ले शब्द ही आप करतार भाई॥४०॥

माया प्रपंच

राम तेरी माया दुंद मचावै।
गति मति वाकी समझि परै नहिं सुरनर मुनिहिं नचावै॥

का सेमर के साखा बढ़ ये फल अनूपम बानी ।
केतिक चातक लागि रहे हैं चाखत रुवा उडानी ॥
कहा खजूर बडाई तेरी फल कोई नहिं पावै ।
ग्रीखम ऋतु जब आइ तुलानी छाया काम न आवै ॥
अपना चतुर और को सिखवैं कामिनि कनक सयानी ।
कहै कबीर सुनो हो संतो राम चरण रति मानी ॥ ४१ ॥

माया महा ठगिनि हम जानी ।
निरगुन फाँस लिये कर डोले बोले मधुरी बानी ॥
केशव के कमला है बैठी शिव के भवन भवानी ।
पंडा के मूरति है बैठी तीरथ में भइ पानी ॥
योगी के योगिनि है बैठी राजा के घर रानी ।
काहू के हीरा है बैठी काहु के कोडी कानी ॥
भक्तन के भक्तिनि है बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।
कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी ॥ ४२ ॥

सब ही मदमाते कोइ न जाग । सँगहिं चोर घर मूसन लाग ॥
योगी मदमाते योग ध्यान । पंडित मदमाते पढ़ि पुरान ॥
तपसी मदमाते तप के भेव । सन्यासी माते करि हमेव ॥
मोलना मदमाते पढि मोसाफ । काजी मदमाते कै निसाफ ॥
शुकदेव मते ऊधो अक्रूर । हनुमत मदमाते ले लँगूर ॥
संसार मत्या माया के धार । राजा मदमाते करि हँकार ॥
शिव माति रहे हरि चरण सेव । कलि माते नामा जयदेव ॥
वह सत्य सत्य कह सुम्रित बेद । जस रावण मारे घर के भेद ॥

एहि चंचल मन के अधम काम। कह कबीर भज राम नाम ॥४३॥
आंधर गुष्टि सृष्टि भै बौरी। तीनि लोक महँ लागि ठगौरी॥
ब्रह्महिं ठग्यो नाग संहारी। देवन सहित ठग्यौ त्रिपुरारी॥
राज ठगौरी विश्नुहिं परी। चौदह भुवन केर चौधरी॥
आदि अंत जेहि काहु न जानी। ताको डर तुम काहे मानी॥
ऊ उतंग तुम जाति पतंगा। यम घर किहेहु जीव के संगा॥
नीम कीट जस नीम पियारा। विख को अमृत कहैं गँवारा॥
विष के संग कवन गुण होई। किंचिति लाभ मूल गो खोई॥
विष अमृत गोए कहिं सानी। जिन जाना तिन विष के मानी॥
कहा भये नर सुध बे सूझा। बिन परचै जग मूढ़ न बूझा॥
मति के हीन कौन गुण कहई। लालच लागे आशा रहई॥
मुवा अहै मरि जाहुगे मुये कि बाजी ढोल।
स्वप्न सनेही जग भया सहि दानी रह बोल॥ ४४॥
जरा सिंधु शिशुपाल सँहारा। सहस अर्जुने छल सों मारा॥
बड़ छल रावण से गये बीती। लंका रह कंचन की भीती॥
दुर्योधन अभिमानहिं गयऊ। पंडव केर मरम नहिं पयऊ॥
माया के डिभ गे सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा॥
छांच कवै चित धरनि समाना। यको जीव परतीति न आना॥
कहं लौं कहौं अचेते गयऊ। चेत अचेत झगर यक भयऊ॥
ई माया जग मोहिनी मोहिसि सब जग धाय।
हरि चंद सत के कारने घर घर गयो बिकाय॥ ४५॥
या माया रघुनाथ कि बौरी खेलन चली अहेरा हो।

चतुर चिकनिया चुनि चुनि मारे काहु न राखै नेरा हो ॥
मौनी वीर दिगम्बर मारे ध्यान धरे ते योगा हो।
जंगल में के जंगम मारे माया किनहुँ न भोगी हो ॥
वेद पढ़ंता पांड़े मारे पुजा करंते स्वामी हो।
अर्थ विचारत पंडित मारे वांध्यो सकल लगामी हो ॥
शृंगी ऋषि वन भीतर मारे शिर ब्रह्मा के फोरी हो।
नाथ मछंदर चले पीठ दै सिंहलहुं में वोरी हो ॥
साकत के घर कर्त्ता धर्त्ता हरि भक्तन की चेरी हो।
कहै कबीर सुनो हो संतो ज्यों आवै त्यों फेरी हो ॥ ४६ ॥
नागिनि ने पैदा किया नागिनि डँसि खाया।
कोइ कोइ जन भागत भये गुरु सरन तकाया ॥
शृंगी ऋषि भागत भये वन मां वसे जाई।
आगे नागिनि गाँसि के वोहो डँसि खाई ॥
नेजा धारी शिव वड़े भागे कैलासा।
जोति रूप परगट भई परवत परकासा ॥
सुर नर मुनि जोगी जती कोइ वचन न पाया।
नोन तेल ढूंढे नहीं कच्चै धरि खाया ॥
नागिन डरपै संत से उहँवा नहिं जावै।
कह कबीर गुरु मंत्र से आपै मरि जावै ॥ ४७ ॥
बूझहु पंडित करहु विचारी पुरुष अहै की नारी।
ब्राह्मण के घर ब्राह्मणि होती योगी के घर चेली।
कलमा पढ़ि पढ़ि भई तुरकिनी कलि में रहै अकेली ॥

घर नहिं घरै व्याह नहिं करई पुत्र जन्म हो निहारी।
कारे मूंड़े यक नहिं छाड़े अबहीं आदि कुँवारी॥
रहै न मैके जाय न ससुरे साईं संग न सोवै।
कह कबीर वह युग युग जीवै जाति पाँति कुल खोवै॥४८॥

तुम बूझहु पंडित कौन नारि।
कोइ नाहिं बिआहल रह कुमारि॥
येहि सब देवन मिलि हरिहिं दीन्ह।
तेहि चारहुं युग हरि संग लीन्ह॥
यह प्रथमहिं पद्मिनि रूप आय।
है सांपिनि सब जग खेदि खाय॥
या घर युवती वे घार नाह।
अति तेज तिया है रैनि ताह॥
कह कबीर सब जग पियारि।
यह अपने 'बलकवै' रहै मारि॥ ४९॥

कर पल्लव के बल खेल नारि।
पंडित जो होय सो ले विचारि॥
कपरा नहिं पहिरै रह उघारि।
निर जीवै सो धन अति पियारि॥
उलटी पलटी बाजै सो तार।
काहुहि मारै काहुहि उबार॥
कह कबीर दासन के दास।
काहुहि सुख दे काहुहि उदास॥ ५०॥

संतो एक अचरज भो भाई। कहा तो को पतिआई॥
एकै पुरुख एक है नारी ताकर करहु विचारा।
एकै अंड सकल चौरासी भर्म भुला संसारा॥
एकै नारी जाल पसारा जग में भया अँदेसा।
खोजत काहू अंत न पाया ब्रह्मा विष्णु महेसा॥
नाग फांस लिन्हे घट भीतर मूसि सकल जग खाई।
ज्ञान खड्ग बिन सब जग जूझै पकरि काहु नहिं पाई॥
आपुहि मूल फूल फुलवारी आपुहि चुनि चुनि खाई।
कह कबीर तेई जन उबरे जेहि गुरु लियो जगाई॥ ५१॥

जगत-उत्पत्ति

जीव रूप एक अंतर बासा। अंतर ज्योति कीन परगासा॥
इच्छा रूप नारि अवतरी। तासु नाम गायत्री धरी॥
तेहि नारी के पुत तिन भयऊ। ब्रह्मा विष्णु शंभु नाम धरेऊ॥
तब ब्रह्मा पूछत महतारी। को तोर पुरुख काकर तुम नारी॥
तुम हम हम तुम और न कोई। तुम मोर पुरुख हमैं तोर जोई॥
बाप पूत की नारि एक एकै माय विआय॥
दिख्यो न पूत सपूत अस बापे चीन्है धाय॥ ५२॥
अंतर ज्योति शब्द एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी॥
बखरी एक विधाते कीन्हा। चौदह ठहर पाटि सो लीन्हा॥
हरि हर ब्रह्म महं तौ नाऊ। ते पुनि तीन बसा धलगाऊ॥

नै पुन रचिनि खंड ब्रह्मंडा । छ दरशन छानवे पखंडा ॥
पेटहिं काहु न वेद पढ़ाया । सुनति कराय तुरुक नहिं आया ॥
नारी मोचित गर्भ प्रसूती । स्वांग धरे बहुतै करतूती ॥
तहिया हम तुम एकै लोहू । एकै प्राण वियायल मोहू ॥
एकै जनी जना संसारा । कौन ज्ञान ते भयो निनारा ॥
अविगतिकी गति काहुना जानी । एक जीभकित कहौंबखानी ॥
जो मुख होय जीभ दस लाखा । तौ कोइ आइ महंतो भाखा ॥

कहँहिं कबीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार ।
राम नाम जाने विना बूडि मुआ ससार ॥५३॥

प्रथम अरंभ कौन के भाऊ । दूसर प्रगट कीन सो ठाँऊ ॥
प्रगटे ब्रह्म विष्णु शिव शक्ती । प्रथमै भक्ति कीन्ह जिव उक्ती ॥
प्रगटि पवन पानी औ छाया । बहु विस्तर ह्वै प्रगटी माया ॥
प्रगटे अंड पिंड ब्रह्मंडा । पृथिवी प्रगट कीन नव खंडा ॥
प्रगटे सिध साधक सन्यासी । ये सब लागि रहे अविनासी ॥
प्रगटे सुर नर मुनि सब झारी । तेऊ खोजि परे सब हारी ॥

जीउ सीउ सब प्रगटे वै ठाकुर सब दास ॥
कबिर और जानै नहीं राम नाम की आस ॥५४॥

प्रथम एक जो आवै आप । निराकार निरगुन निरजाप ॥
नहिं तब भूमि पवन अकासा । नहिं तब पावक नीर निवासा ॥
नहिं तब पाँच तत्व गुन तीनी । नहिं तब सृष्टी माया कीनी ॥
नहिं तब आदि अंत मध तारा । नहिं तब अध धुंध उजियारा ॥
नहिं तब ब्रह्मा विष्णु महेसा । नहिं तब सूरज चाँद गनेसा ॥

नहिं तब मच्छ कच्छ बाराहा । नहिं तब भादों फागुन माहा ॥
नहिं तब कंस कृष्ण बलि बावन । नहिं तब रघुपति नहिं तब रावन ॥
नहिं तब सरगुन सकल पसारा । नहिं तब धारे दस अवतारा ॥
नहिं तब सरसुति जमुना गंगा । नहिं तब सागर समुद तरंगा ॥
नहिं तब तीरथ ब्रत जग पूजा । नहिं तब देव दैत अरु दूजा ॥
नहिं तब पाप पुन्न गुरु सीखा । नहिं तब पढ़ना गुनना लीखा ॥
नहिं तब विद्या बेद पुराना । नहिं तब भये कतेब कुराना ॥

कहैं कबीर विचारि कै तब कुछ किरतिम नाहिं ।
परम पुरुख तहँ आपहि अगम अगोचर माहिं ॥५५॥

करता एक अगम है आप । याके कोई माय न बाप ॥
करता के नहिं बँधु औ नारी । सदा अखंडित अगम अपारी ॥
करता कछु खावै नहिं पीवै । करता कबहूं मरै न जीवै ॥
करता के कुछ रूप न रेखा । करता के कुछ बरन न भेखा ॥
ताके जात गोत कछु नाहीं । महिमा बरनि न जाय मो पाहीं ॥
रूप अरूप नाहिं तेहि नाऊं । बर्न अबर्न नहीं तेहि ठांऊ ॥

कहैं कबीर विचारि कै जाके बर्न न गाँव ।
निराकार औ निर्गुना है पूरन सब ठाँव ॥५६॥

करता किरतिम बाजी लाई । ओंकार ते सृष्टि उपाई ॥
पांच तत्त तीनों गुन साजा । ताते सब किरतिम उपराजा ॥
किरतिम धरती और अकास । किरतिम चंद सूर परकास ॥
किरतिम पांच तत्त गुन तीनी । किरतिम सृष्टि जु माया कीनी ॥
किरतिम आदि अंत मध तारा । किरतिम अंध कूप उँजियारा ॥

किरतिम सरगुन सकल पसारा। किरतिम कहियेदस औतारा॥
किरतिमकंसऔरवलिवावन। किरतिमरघुपति किरतिमरावन॥
किरतिम कच्छ मच्छ वाराहा। किरतिम भादों फागुन माहा॥
किरतिम सहर समुद्र तरंगा। किरतिम सरस्तुति जमुना गंगा॥
किरतिम इसमृत वेद पुराना। किरतिम काजि कतेब कुराना॥
किरतिम जोग जो पावत पूजा। किरतिम देवी देव जो दूजा॥
किरतिम पाप पुन्नगुरु सीखा। किरतिम पढ़ना गुनना लीखा॥

कहै कबीर विचारि कै कृत्रिम न करता होय।
यह सब बाजी कृत्रिम है सांच सुनो सब कोय॥ ५७॥

करता एक और सब बाजी। ना कोइ पीर मसायख काजी॥
बाजी ब्रह्मा विष्णु महेसा। बाजी इंदर चंद गनेसा॥
बाजी जल थल सकल जहाना। बाजी जान जमीं असमाना॥
बाजी बरनों इसमृति वेदा। बाजीगर का लखै न भेदा॥
बाजी सिध साधक गुरु सीखा। जहाँ तहाँ यह बाजी दीखा॥
बाजी जोग यज्ञ व्रत पूजा। बाजी देवी देवल दूजा॥
बाजी तीरथ व्रत आचारा। बाजी जोग यज्ञ व्यवहारा॥
बाजी जल थल सकल कि याई। बाजी सों बाजी लिपटाई॥
बाजी का यह सकल पसारा। बाजी माहिं रहै संसारा॥
कह कबीर सब बाजी मांहीं। बाजीगर को चीन्हैं नाहीं॥ ५८॥

मन-महिमा

संतो यह मन है बड़ जालिम ।
जासों मन सों काम परो है तिसही है है मालुम ॥
मन कारण को इनकी छाया तेहि छाया में अटके ।
निरगुन सरगुन मन की बाजी खरे सयाने भटके ॥
मनही चौदह लोक बनाया पांच तत्व गुण कीन्हे ।
तीन लोक जीवन वश कीन्हे परै न काहू चीन्हे ॥
जो कोउ कह हम मन को मारा जाके रूप न रेखा ।
छिन छिन में कितनौं रँग लावै जे सपनेहुँ नहिं देखा ॥
रासातल यकइस ब्रह्मंडा सब पर अदल चलावै ।
षट रस में भोगा मन राजा सो कैसे कै पावै ॥
सब के ऊपर नाम निरच्छर तहँ लै मन को राखै ।
तब मन की गति जानि परै यह सत कबीर मुख भाखै ॥५६॥

निर्वाण पद

पंडित सोधि कहहु समझाई । जाते आवागवन नसाई ॥
अर्थ धर्म औ काम मोक्ष फल कौन दिशा बस भाई ॥
उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम सरग पतालहिं माहे ।
बिन गोपाल ठौर नहिं कतहूं नरक जात धौं काहे ॥
अनजाने को नरक सरग है हरि जाने को नाहीं ।
जेहि डर को सब लोग डरत हैं सो डर हमरे नाहीं ॥

पाप पुन्न की सका नाहीं नरक सरग नहिं जाहीं।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो जहँ पद तहां समाहीं ॥ ६० ॥

चलो सखी बैकुंठ विष्णु माया जहाँ।
चारिउ मुक्ति निदान परम पद ले तहाँ ॥
आगे शून्य स्वरूप अलख नहिं लखि परै।
तत्त्व निरंजन जान भरम जनि चित धरै ॥
आगे है भगवत निरच्छर नाँव है।
तीन मिटावै कोटि बनावै ठाँव है ॥
आगे सिंधु बलद महा गहिरो जहां।
को नैया लै जाय उतारै को तहाँ ॥
कर अजया की नाव तो सुरति उतारिहै।
लोहा अच्छर नांउ तो हंस उबारिहै ॥
पार उतर पुरुषोत्तम परस्यो जान है।
तहँवा धाम अखंड तो पद निर्बान है ॥
तहँ नहिं चाहत मुक्ति तो पद डारे फिरै।
सुरत सनेही हंस निरंतर उच्चरै ॥
बारह मास बसंत अमरलीला जहाँ।
कहैं कबीर विचार अटल है रहु तहाँ ॥ ६१ ॥

सन्त सुरत सत नाम जगत जान नहीं।
बिना प्रेम परतीत कहा मानै नहीं ॥
जिव अनंत संसार न चीन्हत पीव को।
कितना कहु समझाय चौरासिक जीव को ॥

आगे धाम अखंड सो पद निरयान है।
भूख नींद यहँ नाहिं निःअच्छर नाम है ॥
कहँ कबीर पुकारि सुनो मनभावना।
हंसा चलु सत लोक बहुरि नहिं आवना ॥ ६२ ॥

हंसा लोक हमारे अइ हैा, ताते अमृत फल तुम पइ हैा ॥
लोक हमारा अगम दूर है, पार न पावै कोई।
अति आधीन होय जो कोई, ताको देउँ लखाई ॥
मिरत लोक से हंसा आये, पुहुप दीप चलि जाई।
अंबु दीप में सुमिरन करिहैा, तब यह लोक दिखाई ॥
माटी का पिंड छूट जायगा, श्रौ यह सकल बिकारा।
ज्यों जल माहिं रहत है पुरइन, ऐसे हंस हमारा ॥
लोक हमारे अइहैा हंसा, तब सुख पइहैा भाई।
सुखसागर असनान करोगे, अजर अमर है जाई ॥
कहँ कबीर सुनो धमदासा, हंसन करी बधाई।
सेत सिंहासन बैठक दैहों, जुग जुग राज कराई ॥६३॥

सतगुरु महिमा और लक्षण।

चल सतगुरु की हाट ज्ञान बुध लाइये।
कर साहब सों हेत परमपद पाइये ॥
सतगुरु सब कछु दीन देत कछु नहिं रह्यो।
हमहिं अभागिन नारि छोरि सुख दुख लह्यो ॥

सुन्न सिखर के सार सिला पर आसन अचल जमावै ॥
भीतर रहा सो बाहर देखै दूजा दृष्टि न आवै।
कहन कबीर बसा है हंसा आवा गवन मिटावै ॥ ६५ ॥

साधो सो सतगुरु मोहिं भावै।
सत्त नाम का भर भर प्याला आप पिवै मोहिं प्यावै ॥
मेले जाय न महंत कहावै पूजा भेंट न लावै।
परदा दूर करै आँखिन का निज दरसन दिखलावै ॥
जाके दरसन साहब दरसै अनहद शब्द सुनावै।
माया के सुख दुख कर जानैं सग न सुपन चलावै ॥
निसि दिन सत संगति में राचे शब्द में सुरत समावै।
कह कबीर ताको भय नाहीं निरभय पद परसावै ॥ ६६ ॥

दसो दिसा कर मेटै धोखा। सो कँड़हार बैठ ही चोखा ॥
दसौ दिसा कर लेखा जानै। सो कँड़हार आरती ठानै ॥
दस इंद्री कै पार खपावै। सो कँड़हार आरती गावै ॥
जो नहिं जानै एतिक साजै। चौका युक्ति करै केहि काजै ॥
हिँस कारन करहीं गढ़आई। बिगरै ज्ञान जो पंथ पराई ॥
पद साखी अरु ग्रंथ दृढ़ावै। बिन पारख उत्तम घर पावै।
शब्द साखि सिखि पारस करहीं। होय भूत पुनि नरकहिं परहीं ॥
बिना भेद कँड़हार कहावै। आगिल जन्म स्वान को पावै ॥
पद साखी नहिं करहिं बिचारा। भूँकि भूँकि जस मरै सियारा ॥
पद साखी है भेद हमारा। जो बूझै सो उतरै पारा ॥
जबलग पूरा गुरू न पावै। तब लग भवजल फिरि फिरि आवै ॥

पूरा गुरू जो होय लखावै । शब्द निरखि परगट दिखलावै॥
एक बार जिय परचौ पावै । भवजल तरै बार नहिं लावै॥
शब्द भेद जो जानही सो पूरा कँड़हार ।
कह कबीर धूमच्छु है सोहं शब्दहिं पार ॥ ६७ ॥
सांचे सतगुरु की बलिहारी । जिन यह कुंजी कुफुल उघारी ॥
नख सिख साहब हैं भरपूरा । सो साहब क्यों कहिये दूरा ॥
सतगुरु दया अमी रस भींजै । तब मन धन सब अर्पन कीजै ॥
कहैं कबीर संत सुखदाई । सुखसागर असथिर घर पाई ॥६८॥

संत लक्षण

हरिजन हंस दशा लिये डोलैं । निर्मल नाम चुनी चुनि बोलैं ॥
मुक्ताहल लिये चोंच लुभावैं । मोन रहैं कै हरि गन गावैं ॥
मान सरोवर तट के बासी । राम चरण चित अंत उदासी॥
काग कुबुद्धि निकट नहिं आवै । प्रति दिन हंसा दरसन पावै ॥
नीर छीर को करै निवेरा । कहै कबीर सोई जन मेरा॥६९॥
सील संतोष ते सब्द जा मुख बसै,संतजन जौहरी साँच मानी।
बदन विकसित रहै ख्याल आनंद में,अधरमेंमधुरमुसकातबानी।
साँच डोलैनहीं भूठ बोलै नहीं, सुरतमें सुमति सोइ श्रेष्ट ज्ञानी।
कहत हौं ज्ञान पुकारिकै सबन सों,देत उपदेस दिल दर्द जानी।
ज्ञानको पूर है रहनिको सूर है,दया की भक्ति दिल मांहि ठानी।
ओर तेछोर लौं एक रस रहत है,पे सजनजगत में बिरले प्रानी।
ठगा घट पार संसार में भरि रहे,हंस की चाल कहँ काग जानी।

चपल औ चतुर हैं बने बहु चीकने, बात में ठीक पै कपट ठानी।
कहा तिनसों कहों दया जिनके नहीं घात बहुतैंकरैं बकुलध्यानी।
दुर्मती जीव की दुविध छूटै नहीं, जन्मजन्मांत्र पड़ नर्क खानी।
काग कुबुद्धि सुबुद्धि पावैं कहाँ, कठिन कठोर बिकराल बानी।
अगिन के पुंज हैं सितलता तन नहीं, अमृत औ विष दोऊ एक सानी।
कहा साखी कहें सुमति जागी नहीं, सांचकी चाल बिनधूर धानी।
सुकृति औ सत्त की चाल सांची सही, काग बक अधम की कौन खानी।
कहैं कब्बीर कोउ सुघर जन जौहरी, सदा सब धान पय नीर छानी ॥७०॥

है साधू संसार में कँवला जल मांहीं।
सदा सरबदा सँग रहै परसत जल नाहीं॥
जल केरी ज्यों कूक हो जल मांहि रहानी।
पंख पानी बेधै नहीं कछु असर न जानी॥
मीन तिरै जल ऊपरै जल लगै न भारा।
आड़ अटक मानै नहीं पैरै जल धारा॥
जैसे सीप समुद्र में चित्त देत अकासा।
कुंभ कला है खेल हीं तस साहेब दासा॥
जुगति जमूरा पाइकै सरपे लपटाना।
बिख वाके बेधे नहीं गुरु गम्म समाना॥
दूध भात घृत भोजना बहु पाक मिठाई।

जिभ्या लेस लगै नहीं उनकै रोसनाई ॥
बामी में विखधर बसै कोइ पकरि न पावै।
कह कबीर गुरु मंत्र से सहजै चलि आवै ॥७१
दरस दिवाना बावरा अलमस्त फकीरा।
एक अकेला ह्वै रहा असमत का धीरा॥
हिरदे में यह धूब है हर दम का प्याला।
पीयेगा कोइ जौहरी गुरु मुरा मतवाला॥
पियत पियाला प्रेम का सुघरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहैं अस मैगल हाथी॥
बंधन काटे मोह के बैठा निरसंका।
वाके नजर न आवता क्या राजा रंका॥
धरती तो आसन किया तंबू असमाना।
चोला पहिरा खाक का रह पाक समाना॥
सेवक को सतगुरु मिले कछु रहि न तबाही।
कह कबीर निज घर चलो जहं काल न जाही॥७२॥

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई।
अबरन बरन न गनिय रंक धनि बिमल बास निज सोई।
बाम्हन छत्री बैस सूद्र सब भगत समान न कोई।
धन वह गांव ठांव असथाना है पुनीत संग लोई॥
होत पुनीत जपै सतनामा आपु तरै तारै कुल दोई।
जैसे पुरइन रह जल भीतर कह कबीर जग में जन सोई॥७३॥

वेदांत वाद

साधो सतगुरु अलख लखाया आप आप दरसाया ॥
बीज मध्य ज्यों वृच्छा दरसै वृच्छा मद्धे छाया ।
परमातम में आतम तैसे आतम मद्धे माया ॥
ज्यों नभ मद्धे सुन्न देखिये सुन्न अंड आकारा ।
निह अच्छर ते अच्छर तैसे अच्छर छर विस्तारा ॥
ज्यों रवि मद्धे किरिन देखिये किरिन मध्य परकासा ।
परमातम में जीव ब्रह्म इमि जीव मध्य तिमि स्वांसा ॥
स्वांसा मद्धे शब्द देखिये अर्थ शब्द के मांहीं ।
ब्रह्म ते जीव जीव ते मन इमि न्यारा मिला सदाहीं ॥
आपहि बीज वृच्छ अंकुरा आप फूल फल छाया ।
आपहि सूर किरिन परकासा आप ब्रह्म जिव माया ॥
अंडाकार सुन्न नभ आपे स्वांस शब्द अरथाया ।
निह अच्छर अच्छर छर आपे मन जिव ब्रह्म समाया ॥
आतम में परमातम दरसै परमातम में झांई ।
झांईं में परछाईं दरसै लखै कबीरा सांईं ॥ ७४ ॥
पानी बिच मीन पियासी, मोहिं सुन सुन आवत हाँसी ।
आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी ॥
घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी ।
मृग की नाभि माँहि कस्तूरी, बन बन खोजन धासी ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सहज मिलै अविनासी ॥ ७५ ।
चंदा झलकै येहि घट माही । अंधी आँखिन सूझै नाहीं ॥

येहि घट चंदा येहि घट सूर। येहि घट गाजै अनहद तूर।
येहि घट बाजै तबल निसान। बहिरा शब्द सुनै नहिं कान॥
जब लग मेरी मेरी करै। तब लग काज न एकौ सरै।
जब मेरी ममता मरि जाय। तब प्रभु काज सँवारै आय॥
जब लग सिंह रहै बन माहिं। तब लग यह बन फूलै नाहिं
उलटा स्यार सिंह को खाय। उकठा बन फूलै हरिआय॥
ज्ञान के कारन करम कमाय। होय ज्ञान तब करम नसाय।
फल कारन फूलै बनराय। फल लागे पर फूल सुखाय॥
मिरग पास कस्तूरी बास। आपु न खोजै खोजै घास।
पारै पिंड मीन लै खाई। कहैं कबीर लोग बौराई॥ ७६॥

अवधू अंध कूप अंधियारा।
या घट भीतर सात समुंदर याहि में नद्दी नारा॥
या घट भीतर काशि द्वारिका याहि में ठाकुरद्वारा।
या घट भीतर चंद सूर है याहि में नौ लख तारा॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो याहि में सत करतारा॥ ७७॥

साधो एक आपु जग माहीं।
दूजा करम भरम है किरतिम ज्यों दरपन में छाहीं॥
जल तरंग जिमि जल ते उपजै फिर जल माहिं रहाई।
काया झाईं पाँच तत्त की बिनसे कहाँ समाई॥
या बिधि सदा देह गति सब की या बिधि मनहिं बिचारो।
आया होय न्याव करि न्यारो परम तत्त्व निरखारो॥
सहजै रहै समाय सहज में ना कहुँ आय न जावै।

धरै न ध्यान करै नहिं जप तप राम रहीम न गावे ॥
तीरथ वरत सकल परित्यागै सुन्न डोर नहिं लाय ।
यह धोखा जब समझि परे तब पूजै काहि पुजावे ॥
जोग जुगत में भरम न छूटै जब लग आप न सूझै ।
कह कबीर सोइ सतगुरु पूरा जो कोइ समझै बूझै ॥ ७८ ॥

साधो सहजै काया सोधो ।

करता आपु आप में करता लख मन को परमोधो ।
जैसे बट का बीज ताहि में पत्र फूल फल छाया ।
काया मद्धे बुंद विराजे बुंदै मद्धे काया ॥
अग्नि पवन पानी पिरथी नभ ता बिन मेला नाहीं ।
काजी पंडित करो निवेरा काके माहिं न सांई ॥
सांचे नाम अगम की आसा है धाही में सांचा ।
करता बीज लिये है खेतै त्रिगुन तीन तत पांचा ॥
जल भरि कुंभ जलै बिच धरिया बाहर भीतर सोई ।
उनको नाम कहन को नांही दूजा धोखा होई ॥
कठिन पंथ सतगुरु को मिलना खोजत खोजत पाया ।
इक लग खोज मिटी जब दुबिधा ना कहुं गया न आया ॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो सत्त शब्द निज सारा ।
आपा मद्धे आपै बोलै आपै सिरजन हारा ॥ ७९ ॥

दरियाव की लहर दरियाव है जी दरियाव औ लहर भिन्न कोयम।
उठे तो नीर है बैठता नीर है कहो किस तरह दूसरा होयम ॥
उसी नाम को फेर के लहर धरा लहर के कहे क्या नीर खोयम ।

जकहीं फेर सब जक्त है ब्रह्म में ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम ॥८०॥

मन तू मानत क्यों न मनारे।
कौन कहन को कौन सुनन को दूजा कौन जनारे ॥
दरपन में प्रतिबिंब जो भासै आप चहू दिसि सोई।
दुविधा मिटै एक जब होवे तौ लख पावै कोई ॥
जैसे जल ते हेम बनत है हेम धूम जल होई।
तैसे या तत वाहू तत सों फिर यह अरु वह सोई ॥
जो समझै तो खरी कहत है ना समझै तो खोटी।
कहु कबीर दोऊ पख त्यागै ताकी मति है मोटी ॥ ८१ ॥

ना मैं धरमी नाहिं अधरमी ना मैं जती न कामी हो।
ना मैं कहता ना मैं सुनता ना मैं सेवक स्वामी हो ॥
ना मैं बंधा ना मैं मुक्ता ना निरबंध सरबंगी हो।
ना काहू से न्यारा हुआ ना काहू को संगी हो ॥
ना हम नरक लोक को जाते ना हम सरग सिधारे हो।
सब ही कर्म हमारा कीया हम कर्म्मन ते न्यारे हो ॥
या मन को कोइ बिरला बूझै सो सतगुरु हो बैठे हो।
मत कबीर काहू को थापे मत काहू को मेटे हो ॥ ८२ ॥

फहम करु फहम करु फहम करु मान यह फहम बिनु फिकिर नहिं मिटै तेरी। सकल उँजियार दीदार दिल बीच है जौक औ शौक सब मौज तेरी ॥ बोलता मस्त मस्ताने वह बूझ है हनों सा अक्ल कहु कौन केरी। एक ही नूर दरियाव वह देखिये फैल वह रहा सब सृष्टि में री। आप ही गनी गरीब

है आप ही आप गनीम हो आप घेरी ॥ आप ही और पुनि साहु है आप हो ज्ञान कथि आप ही आप सुने री। आप ही हरी हरिनाकुसा आप हो आप नरसिंह हो आप गेरी। आप ही रावना आप रघुनाथ जो आप को आप ही आपद ले री। आप बलि होइकै दान वसुधा किया आप हो बावना आप छले री। आप ही कृष्ण है कंस है आप ही आप को आप आपहि हते री। आप ही भक्त भगवंत हैं आप ही ओर नहि दूसरा अर्ज सुने री ॥ ८३ ॥

मुक्त होवै छुटै बँधन सेती तब कौन मरे तिसे कौन मारै।
अहंकार तजै भय रहित होवै तब कौन तरै तिसे कौन तारै।
मरना जीना है ताहि को जी जो आपु को आपु विसारि डारै।
चैतन्य होवै उठि जागि देखै दया देखि कै जोति कबीर धारै॥८४॥

यह तो एक हुबाब है जी साकिन दरियाव के बीच सदा।
हुबाब तो ऐन दरियाव है जी देखो नहिं बहू से मौज जुदा।
हुबाब तो है उठनेहि में जी है बैठने में मतलब खुदा।
होबाब दरियाव कबीर है जी दुजा नाम बोले सो बुदबुदा॥८५॥

घट घट में रटना लागि रही परगट हुआ अलेख है जी।
कहुँ चोर हुआ कहुँ साह हुआ कहुँ बाम्हन है कहुँ सेख है जी।
बहुरंगी प्यारा सब से न्यारा सब ही में एक भेख है जी।
कब्बीर मिला मुरशिद उसमें हम तुम नाहीं यह एक है जी ॥८६॥

असमान का आसरा छोड़ प्यारे उलटि देखो घट अपना जी।
तुम आप में आप तहकीक करो तुम छोड़ो मन की कलपना जी।

विन देखे जो निज नाम जपै सो कहिये रैन का सपना जी ।
कबीर दीदार परगट देखा तब जाप कौन का जपना जी ॥८७॥

अपनपौ आप ही बिसरो ।
जैसे सोनहा काच मँदिर में भरमत भूँकि मरो ।
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल प्रतिमा देखि परो ।
ऐसेहिं मदगज फटिक शिला पर दसननि आनि अरो ।
मरकट मुठी स्वाद ना बिसरै घर घर नटत फिरो ।
कह कबीर ललनो के सुवना तोहि कौने पकरो ॥ ८८ ॥

साम्यवाद

आपुहिं करता भे करतारा । बहु विध बासन गढ़ै कुम्हारा ॥
बिधना सबै कीन यक ठाऊं । अनिक जतन कै बनक बनाऊं ॥
जठर अग्नि महँ दिय परजाली । तामें आप भये प्रतिपाली ॥
बहुत जतन कै बाहर आया । तब शिव शक्ती नाम धराया ॥
घर को सुत जो होय अयाना । ताके संग न जाय सयाना ॥
साची बात कहाँ मैं अपनी । भया दिवाना और कि सपनी ॥
गुप्त प्रगट है एकै मुद्रा । काको कहिये बाम्हन शुद्रा ॥
झूठ गरब भूले मति कोई । हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई ॥
जिन यह चित्र बनाइया साची सूरत हारि ।
कह कबीर ते जन भले जे तोहिं लेहिं बिचारि ॥ ८९ ॥
जो तोहि कर्त्ता बर्ण बिचारा । जन्मत तीन दंड अनुसारा ॥
जन्मत शूद्र भय पुनि शूद्रा । कृत्रिम जनेउ घालि जगदुंदा ॥

जो तुम बाम्हन बाम्हनि जाये । और राह तुम काहे न आये ॥
जो तू तुरुक तुरुकिनी जाया । पेटे काहे न सुनति कराया ॥
कारी पीरी दूहो गाई । ताकर दूध देहु बिलगाई ।
छाड़ु कपट नर अधिक सयानी । कह कवीर भजु सारंगपानी ६०

दुइ जगदीश कहां ते आये कहु कौने भरमाया ।
अल्ला राम करिम केशव हरि हजरत नाम धराया ॥
गहना एक कनक ते गहना तामें भाव न दूजा ।
कहन सुनन को दुइ कर थापे यक नेवाज यक पूजा ॥
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये ॥
कोइ हिंदू कोइ तुरुक कहावै एक जमी पर रहिये ॥
वेद कितोव पढ़ें वे कुतवा वे मोलना वे पांडे ।
विगत विगत कै नाम धरायो यक माटी के भाडे ॥
कह कवीर वे दोनों भूलें रामहिं किनहु न पाया ।
वे खसिया वे गाय कटावैं वादैं जन्म गवाया ॥ ६१ ॥

पेसो भरम बिगुरचन भारी ।
वेद कितोव दीन औ दोजख को पुरुषा को नारी ॥
माटी के घर साज बनाया नादे बिंदु समाना ।
घट बिनसे क्या नाम धरहुगे अहमक खोज भुलाना ॥
एकै हाड त्वचा मल मूत्रा रुधिर गुदा यक गुदा ।
एक बिंदु ते सृष्टि रच्यो है को ब्राह्मण को शुद्रा ॥
रजगुण ब्रह्म तमोगुण शंकर सतोगुणी हरि सोई ।
कहै कवीर राम रमि रहिया हिंदू तुरुक न कोई ॥ ६२ ॥

भक्ति-उद्रेक

ओढन मेरो राम नाम मैं रामहि को बनिजारा हो।
राम नाम को करौं बनिज मैं हरि मोरा हटवारा हो॥
सहस नाम को करौं पसारा दिन दिन होत सवाई हो।
कान तराजू सेर तिनपौवा डहकिन ढोल बजाई हो॥
सेर पसेरी पूरा कर ले पासँग कतहुँ न जाई हो।
कह कबीर सुनो हो संतो जोरि चले जहँडाई हो॥ ६३॥

तोको पीव मिलेंगे घूघट को पट खोल रे।
घट घट में वह साईं रमता कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीजै झूठा पँचरँग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले आसा सों मत डोल रे।
जोग जुगत सो रंग महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर अनंद भयो है बाजत अनहद ढोल रे॥ ६४॥

पायो सतनाम गरे कै हरवा।
साँकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पाँच कँहरवा।
ताला कुंजी हमें गुरु दीन्ही जब चाहों तब खोलों किंवरवा।
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहों तब नाचों सहरवा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबे एही नगरवा॥६५॥

मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी पिय जाय।
समझि सोचि पग धरौं जतन से बार बार डिग जाय।
ऊँची गैल राह रपटीली पाँव नहीं ठहराय।
लोक लाज कुल की मरजादा देखत मन सकुचाय।

नैहर वास वसौं पीहर में लाज तजी नहिं जाय।
अधर भूमि जहँ महल पिया का हम पै चढ़ो न जाय।
धन भइ वारी पुरुख भये भोला सुरत झकोरा खाय।
दूती सतगुरु मिले बीच में दीन्हों भेद बताय।
साहब कबिर पिया सों भेटया सीतल कंठ लगाय॥ ८६॥
दुलहिन गावो मंगलचार। हमरे घर आये राम भतार॥
तन रति कर मैं मन रति करिहौं पांचो तत्त बराती।
रामदेव मोहिं ब्याहन आये मैं यौवन मदमाती।
सरिर सरोवर वेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा।
रामदेव संग भाँवर लेहौं धन धन भाग हमारा॥
सुर तैंतीसो कौतुक आये मुनिवर सहस अठासी।
कह कबीर मोहि ब्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी॥८७॥

हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया।
राम मोर बड़ा मैं तन की लहुरिया॥
हरि मोर रहँटा मैं रतन पिउरिया।
हर को नाम लै कातल बहुरिया॥
छ मास ताग बरस दिन कुकुरी।
लोग बोले भल कातल बपुरी॥
कहैं कबीर सूत भल काता।
रहँटा न होय मुक्ति कर दाता॥ ८८॥

साईं के सँग सासुर आई।
संग न सूती स्वाद न मानी जोबन गो सपने की नाई॥

जना चारि मिलि लगन सोधाई जना पाँच मिलि मंडप छाई।
सखी सहेली मंगल गावैं दुख सुख माथे हरदि चढ़ाई॥
नाना रूप परी मन भाँवरि गाँठी जोरि भई पति आई।
अरघ देइ देइ चलीं सुवासिनि चौकहिं राँड़ भई सँग साईं॥
भयो विवाह चली बिन दूलह बाट जात समधी समझाई।
कह कबीर हम गौने जैबै तरब कंत लै तूर बजाई॥ ९९॥

विरह निवेदन

बालम आओ हमारे गेह रे। तुम बिन दुखिया देह रे॥
सब कोइ कहै तुमारी नारी मोको यह संदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लग कैसो नेह रे॥
अन्न न भावै नींद न आवै गृह बन धरै न धीर रे।
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी ज्यों प्यासे को नीर रे॥
है कोइ ऐसा पर उपकारी पिय से कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भये हैं बिन देखे जिउ जाय रे॥ १००॥

सतगुरु हो महराज, मोपै साईं रँग डारा।
शब्द की चोट लगी मेरे मन में बेध गया तन सारा॥
औखध मूल कछू नहिं लागे क्या करे बैद बिचारा।
सुर नर मुनि जन पीर औलिया कोइ न पावे पारा॥
साहब कबिर सर्ब रँग रँगिया सब रँग से रँग न्यारा॥१०१॥

कैसे दिन कटिहै जतन बताये जइयो।
एहि पार गंगा वोहि पार जमुना
बिचवाँ मड़इया हम कां छ्वाये जइयो॥
अँचरा फारि के कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो
बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइयो॥ १०२॥
प्रीत लगी तुम्ह नाम की पल बिसरै नाहीं।
नजर करो अब मेहर की मोहिं मिलो गुसाईं॥
बिरह सतावे मोहिं को जिव तड़पै मेरा।
तुम देखन की चाव है प्रभु मिलो सवेरा॥
नैना तरसै दरस को पल पलक न लागै।
दरद बंद दीदार का निस बासर जागै॥
जो अब के प्रीतम मिलै करू निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया मिला प्रान पियारा॥ १०३॥
ई बारी मुख फेर पियारे। करवट दे मोहिं काहे को मारे।
कर वत भला न करवट तेरी। लाग गरे सुन बेनती मोरी॥
हम तुम बीच भया नहि कोई। तुमहिं सो कत नारि हम सोई।
कहत कबीर सुनो नर लोई। अब तुमरी परतीत न होई॥१०४॥
शब्द की चोट लगी है तन में। घर नहिं चैन चैन नहिं बन में॥
ढूंढ़त फिरौं पीव नहिं पावौं। औषध मूल खाय गुजराओं॥
तुम से बैद न हमसे रोगी। बिन दिदार क्यों जिये बियोगी॥

ऐसे रंग रंगी सब नारी। न जानों का पिय की प्यारी॥
कह कबीर कोइ गुरमुख पावे। बिन नैनन दीदार दिखावे॥१०५॥
चली मैं खोज में पिय की। मिटो नहिं सोच यह जिय की॥
रहैं नित पास ही मेरे। न पाऊ यार को हेरे॥
विकल चहु ओर को धाऊ। तबहुँ नहिं कंत को पाऊ॥
धरौं केहि भाति से धीरा। गयो गिर हाथ से हीरा॥
कटी जब नैन की झाईं। लख्यो तब गगन में साईं॥
कबीरा शब्द कहि भासा। नयन में यार को वासा॥ १०६॥

अविनासी दुलहा कब मिलिहौ, भक्तन केर छुपाल।
जल उपजी जल ही सो नेहा, रटत पियास पियास।
म ठाढ़ी बिरहिन मग जोऊ, प्रियतम तुमरी आस॥
छोड़े गेह नेह लगि तुम सो, भई चरन लयलीन।
तालाबेलि होत घट भीतर, जैसे जल बिन मीन॥
दिवस न भूख रैन नहिं निद्रा, घर अँगना न सुहाय।
सेजरिया बैरिन भइ हम को, जागत रैन बिहाय॥
हम तो तुमरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार।
दीन दयाल दया कर आओ, समरथ सिरजनहार॥
कै हम प्रान तजत हैं प्यारे, कै अपना कर लेव।
दास कबीर बिरह अति बाढ़ेव, हम को दरसन देव॥१०७॥

सुन सतगुर की तान नींद नहिं आती।
बिरहा में सूरत गई पछाड़े खाती॥
तेरे घर में हुआ अँधेर भरम की राती।

नहिं भई पिया से भेट रही पछ्तातो ॥
सखि नैन सैन से खोज ढूढ ले आती ।
मेरे पिया मिले सुख चैन नाम गुन गाती ॥
मेरि आवागवन कि आस सबै मिट जाती ।
छवि देखत भई है निहाल काल मुरझाती ॥
सखि मान सरोवर चलो हंस जहँ पांती ।
यह कहैं कबीर विचार सीप मिलि स्वाती ॥१०८॥

तलफै बिन बालम मोर जिया ।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया तलफ तलफ के भोर किया ॥
तन मन मोर रहँट अस डोलै सून सेज पर जनम छिया ।
नैन थकित भये पंथ न सूझै साँईं बेदरदी सुध न लिया ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरो पीर दुख जोर किया ॥१०९॥

पिया मिलन की आस रहाँ कबलौं खरी ।
ऊंचे नहिं चढ़ि जाय मने लज्जा भरी ॥
पाँव नहीं ठहराय चढ़ूं गिर गिर परूं ।
फिरि फिर चढ़हुँ सम्हारि चरन आगे धरूं ॥
अंग अंग थहराय तो बहु बिधि डरि रहूं ।
करम कपट मग घेरि तो भ्रम में परि रहूं ॥
बारी निपट अनारि तो झीनी गैल है ।
अटपट चाल तुम्हार मिलन कस होइ है ॥
छोरो कुमति बिकार सुमति गहि लीजिये ।
सतगुरु शब्द सम्हारि चरन चित दीजिये ॥

अंतर पट दे खोल शब्द उर लाव री।
दिल बिच दास कबीर मिलैं तोहि बावरी ॥ ११० ॥

गृह वैराग्य

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हम को भावै।
घर में जोग भोग घरही में, घर तजि बन नहिं जावै ॥
बन के गये कलपना उपजै, तब धौं कहां समावै।
घर में युक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ॥
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै।
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्हे, परम तत्त को ध्यावै ॥
सुरत निरत सों मेला करि कै, अनहद नाद बजावै।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै ॥
कहै कबीर सुनो हो अवधू ज्यों का त्यों ठहरावै ॥ १११ ॥

दूर वे दूर वे दूर वे दूरमति
दूर की बात तोहि बहुत भावै।
अहै हज्जूर हाजीर साहब धनी
दूसरा कौन कहु काहि गावै ॥
छोड़ दे कल्पना दूर का धावना
राज तजि खाक मुख काहि लावै।
पेड़ के गहे ते डार पल्लव मिले
डार के गहे नहिं पेड़ पावै ॥
डार औ पेड़ औ फूल फल प्रगट है

मिलै जर गुरु इतनो लखावै।
सँपति सुख साहगी छोड जोगी भये
शून्य की आस बनखड जावै॥
कहहि कब्बीर बनखड में क्या मिलै
दिलहिं को खाज दीदार पावै॥ ११२॥

अनप्रापत वस्तु को कहा तजे, प्रापत को तजे सो त्यागी है।
सु असील तुरग कहा फेरे, अफतर फेरे सो वागी है॥
जगभव का गावना क्या गावै, अनुभव गावै सो रागी है।
यन गेह को यासना नास करै, कब्बीर सोई बैरागी है॥११३॥

कर्म्मगति

करमगति टारे नाहि टरा।
मुनि वसिष्ट से पडित ज्ञानी साध के लगन धरो॥
सीता हरन मरन दसरथ को बन में विपति परा।
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लैगो रावन सुबरन लक जरी।
नीच हाथ हरिचंद बिकाने बलि पाताल धरा।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोन परो।
पाँडव जिनके आपु सारथी तिनपर विपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु औ भानु चद्रमा विधि सजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही॥ ११४॥

अपनो करम न मेटो जाई।

कर्म का लिखा मिटैधौं कैसे जो युग कोटि सिराई॥
गुरु वसिष्ट मिलि लगन सोधाई सूर्य मंत्र यक दीन्हा।
जो सीता रघुनाथ बिआही पल यक सुख न कीन्हा॥
नारद मुनि को बदन छपायो कीन्हों कपि सो रूपा।
सिसुपालहु की भुजा उपारी आपुन बौध सरूपा॥
तीन लोक के करता कहिये बालि बध्यो बरिआई।
एक समय ऐसी बनि आई उनहू अवसर पाई॥
पारवती को बांझ न कहिये ईस न कहिय भिखारी।
कह कबीर करता की बात करम कि बात निआरी॥११५॥

मोहमहिमा

बुढिया हँसि कह मैं नितहिं बारि।
मोहिं ऐसि तरुनि कहु कौन नारि॥
ये दांत गये मोर पान खात।
औ केस गयल मोर गँग नहात॥
औ नयन गयल मोर कजल देत।
औ बैस गयल पर पुरुख लेत॥
औजान पुरुखवा मोर अहार।
मैं अनजाने को कर सिँगार॥
कह कबीर बुढ़ि आनँद गाय।
निज पूत भतारहिं बैठि खाय॥ ११६॥

मोर मनुख है अति सुजान। धंधा कुटि कुटि कर विहान॥
उठि बड़े भोर आँगन बुहार। लै बड़ी खांच गोवरहिं डार॥
बासी भात मनुख लै खाय। बड़ घैला लै पानी जाय॥
अपने सैयां बांधी पाट। लै रे बेचौं हाटै हाट॥
कह कबीर ये हरि के काज। जाेइ याके ढिंगर कौन लाज॥११७॥

डर लागै औ हाँसी आवै अजब जमाना आया रे॥
धन दौलत ले माल खजाना वेस्या नाच नचाया रे।
मुट्ठी अन्न साध कोइ माँगै कहैं नाज नहिं आया रे॥
कथा होय तहँ स्रोता सोवैं वक्ता मूँड़ पचाया रे।
होय जहाँ कहिं स्वाँग तमासा तनिक न नींद सताया रे॥
भंग तमाखू सुलफा गांजा, सूखा खूब उड़ाया रे।
गुरु चरनामृत नेम न धारै, मधुवा चाखन आया रे॥
उलटी चलन चली दुनियाँ में, तातें जिय घबराया रे।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, फिर पाछे पछताया रे॥११८॥

ऐसी दुनिया भई दिवानी, भक्ति भाव नहिं बूझै जी।
कोइ आवे तो बेटा माँगै, यही गुसाईं दीजै जी॥
कोई आवे दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।
कोइ आवे तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी॥
कोई करावै ब्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी।
सांचे का कोइ गाहक नाहीं, झूठे जगत पतीजै जी।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी॥ ११९॥

यह जग अंधा, मैं केहि समझावों।

इक दुइ होय उन्हें समझावों, सबही भुलाना पेट के धंधा।
पानी के घोडा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस के बुंदा।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवन हारा पडिगा फंदा।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारि के ढूंढत अंधा।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिगा बंदा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इक दिन जाय लगोटी झार बंदा १२०

चली है कुलबोरनी गंगा नहाय।

सतुवा कराइन बहुरी भुंजाइन घूंघट ओटे भसकत जाय।
गठरी बांधिन मोटरी बांधिन, खसम के मूंडे दिहिन धराय।
बिछुवा पहिरिन औंठा पहिरिन, लात खसम के मारिन धाय॥
गंगा न्हाइन जमुना न्हाइन, नौ मन मैल है लिहिन चढाय।
पाँच पचीस कै धक्का खाइन, घरहुँ की पूजी आई गँवाय॥
कहत कबीर हेत करू गुरु सों नहिं तोर मुकती जाइ नसाय॥१२१॥

उद्‌बोधन

पंडित बाद बदौ सो झूठा।

राम के कहे जगत गति पावै खांड कहे मुख मीठा॥
पावक कहे पांव जो दाहै जल कहे तृषा बुझाई।
भोजन कहे भूख जो भागै तो दुनिया तरि जाई॥
नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि प्रताप नहिं जानै।
जो कबहू उडि जाय जँगल को तौ हरि सुरति न आनै॥

बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिये का होई।
धन के कहे धनिक जो हो तो निरधन रहत न कोई॥
सांची प्रीति विषय माया सों हरि भगतन को हाँसो।
कह कबीर यक राम भजे बिन बाँधे जमपुर जासो॥ १२० ॥

पंडित देखो मन मों जानी।
कहु धों छूत कहां ते उपजो तबहिं छूत तुम मानी॥
नादरु बिंद रुधिर यक सगै घरही में घट सज्जै।
अष्ट कमल की पुहुमी आई कहँ यह छूत उपज्जै॥
लख चौरासी बहुत बासना सो सब सरि भो माटी।
एकै पाट सकल बैठारे सींचि लेत धों काटी॥
छूतहि जेवन छूतहि अचवन छूतहि जग उपजाया।
कह कबीर ते छूत बिवर्जित जाके सग न माया॥ १२२ ॥
पडित देखो हृदय विचारो। कौन पुरुष को नारी॥
सहज समाना घट घट बोलै वाको चरित अनूपा।
वाको नाम कहा कहि लीजै ना आहि बरन न रूपा॥
तैं मैं काह करै नर बौरे क्या तेरा क्या मेरा।
राम खोदाय शक्ति शिव एकै कहुधौं काहि निबेरा॥
बेद पुरान कुरान किलेबा नाना भांति बखानी।
हिंदू तुरुक जैन औ योगी एकल काहु न जानी॥
छ दरशन में जो परवाना तासु नाम मनमाना।
कह कबीर हमहीं हैं बौरे ई सब खलक सयाना॥ १२४ ॥
माया मोहहिं मोहित कीन्हा। तातें ज्ञान रतन हरि लीन्हा॥

जीवन ऐसो सपना जैसो जीवन सपन समाना ।
शब्द गुरु उपदेश दियो, तैं छाड्यो परम निधाना ॥
जोतिहिं देख पतंग हुलसै, पसु नहिं पेखै आगी ।
काम क्रोध नर मुगुध परे हैं, कनक कामिनी लागी ॥
सय्यद शेख किताब नीरखै पंडित शास्त्र विचारै ।
सतगुरु के उपदेश बिना, तुम जानि के जीवहिं मारै ॥
करौ विचार विकार परिहरौ, तरन तारनै सोई ।
कह कबीर भगवंत भजन करु द्वितीया और न कोई ॥ १२५ ॥
आपन आस किये बहु तेरा । काहु न मर्म पाव हरि केरा ॥
इन्द्री कहा करै विश्राम । सो कहँ गये जो कहते राम ॥
सो कहँ गये होत अज्ञान । होय मृतक ओहि पदहिं समान ॥
रामानंद रामरस छाके । कह कबीर हम कहि कहि थाके ॥१२६॥
कहो हो अंबर कासों लागा । चेतनहारे चेतु सुभागा ॥
अंबर मध्ये दीसै तारा । एक चेतै दुजे चेतनन हारा ॥
जेहि खोजै सो उहवाँ नाहीं । सो तो आहि अमर पद माहीं ॥
कह कबीर पद बूझै सोई । मुख हृदया जाकर एक होई ॥१२७॥
बाबू ऐसो है संसार तिहारो, है यह कलि व्यवहारा ।
को अब अनख सहै प्रति दिन को नाहिन रहन हमारा ॥
सुमृत सुभाव सबै कोइ जानै हृदया तत्त न बूझै ।
निरजिव आगे सरजिव थापै लोचन कछुव न सूझै ॥
तजि अमृत विख काहैं अँचवो गाँठी बाँधो खोटा ।
चोरन को दिय पाट सिंहासन साहुहिं कीन्हो ओटा ॥

कह कबीर झूठे मिलि झूठा ठगहीं ठग व्यवहारा।
तीन लोक भरपूर रह्यो है नाहीं है पतियारा॥ १२८॥

नैनन आगे ख्याल घनेरा।
अरध उधर बिच लगन लगी है क्या संध्या क्या रैन सवेरा॥
जेहि कारन जग भरमत डोलै सो साहब घट लिया बसेरा।
पूरि रह्यो असमान धरनि में जित देखो तित साहब मेरा॥
तसवी एक दिया मेरे साहब कह कबीर दिलही बिच फेरा॥१२९॥
जागु रे जिव जागु रे अब क्या सोवै जिय जागु रे।
चोरन को डर बहुत रहत है उठि उठि पहिरे लागु रे॥
ररो खोलि ममो करि भीतर ज्ञान रतन करि खागु रे।
ऐसे जो अजरायल मारै मस्तक आवै भागु रे॥
ऐसी जागनि जो कोइ जागै सो हरि देह सोहागु रे।
कह कबीर जागेई चहिये क्या गिरही बैरागु रे॥ १३०॥

उपदेश और चेतावनी

बोलन। कासों बोलिये भाई। बोलत ही सब तत्व नसाई॥
बोलत बोलत बाढु बिकारा। सो बोलिये जो परै बिचारा॥
मिले जो सत बचन दुइ कहिये। मिले असंत मोन ह्वै रहिये॥
पंडित सों बोलिय हितकारी। मूरख सों रहिये झख मारी॥
कह कबीर आधा घट डोले। पूरा होय बिचार ले बोले॥१३१॥
मरिहौ रे तन का ले करिहौ। प्रान छुटे बाहर लै धरिहौ॥
काय बिगुरचन अनबन बाटी। कोइ जारै कोइ गाड़ै माटी॥

जारे हिंदु तुरक ले गाड़े। ईंधर पंच दुनो घर छाड़ै॥
कर्म फाँस जम जाल पसारा। ज्यों धीमर मछरी गहि मारा॥
राम बिना नर ह्वेहो कैसा। बाट माँझ गोबरौरा जैसा॥
कह कबीर पाछे पछतैहो। या घर सों जब वा घर जैहो॥१३२॥

चलत का टेढ़े टेढ़े टेढ़े।

दसो द्वार नरकै में बूडे दुरगंधों के बेढ़े॥
फूटे नैन हृदय नहिं सूझै मति एको नहिं जानो।
काम क्रोध तृष्णा के मारे बूडि मुये बिनु पानो॥
जारे देह भसम ह्वै जाई गाडे माटी खाई।
सूकर स्वान काग के भोजन तन की यही बडाई॥
चेति न देखु मुगुध नर बौरे तोते काल न दूरी।
कोटिन जतन करै बहुतेरे तन कि अवस्था धूरी॥
बालू के घरवा में बेठे चेतत नाहिं अयाना।
कह कबीर यक राम भजे बिन बूडे बहुत सयाना॥१३३॥

फिरहु का फूले फूले फूले।

जो दस मास उरध मुख झूले सो दिन काहेँ भूले।
ज्यों माखी स्वादे लहि बिहरै सोचि सोचि धन कीन्हा।
त्योंही पीछे लेहु लेहु करि भूत रहनि कुछ दीन्हा॥
देहरी लों वर नारि सग है आगे सग सहेला।
मृतक थान सँग दियो खटोला फिरि पुनि हंस अकेला॥
जारे देह भसम ह्वै जाई गाडे माटी खाई।
कांचे कुंभ उदक ज्यों भरिया तन की इहै बडाई॥

राम न रमसि मोह में माते परयो काल वस कूवा ।
कह कबीर नर आप बँधायो ज्यों नलिनो भ्रम सूवा ॥ १३४ ॥
अलह राम जीव तेरी नाई । जन पर मेहर करहु तुम सांई ॥
क्या मूड़ी भूमिहिं शिर नाये क्या जल देह नहाये ।
खून करै मसकीन कहावै गुन के रहै छिपाये ॥
क्या भो उज्जू मज्जन कीने क्या मसजिद शिर नाये ।
हृदये कपट नेवाज गुजारै का भो मक्का जाये ॥
हिंदू एकादशि चैाविस रोजा मुसलिम तीस बनाये ।
ग्यारह मास कहो क्यों टारो ये केहि माहँ समाये ॥
पूरब दिसि में हरि को बासा पच्छिम अलह मुकामा ।
दिल में खोज दिलै में देखो यहै करीमा रामा ॥
जो खोदाय मसजिद में बसतु है श्रैार मुलुक केहि केरा ।
तीरथ मूरत राम निवासी दुइ महँ किनहुँ न हेरा ॥
बेद किताब कान किन झूठा झूठा जो न बिचारै ।
सब घट माहिं एक करि लेखै मै दूजा करि मारै ॥
जेते श्रैारत मर्द उपाने सो सब रूप तुम्हारा ।
कबिर पोंगड़ा अलह राम का सो गुरु पीर हमारा ॥ १३५ ॥
भवँर उड़े बक बैठे आय । रैनि गई दिवसो चलि जाय ॥
हल हल काँपै बाला जीव । ना जानै का करि है पीव ॥
काँचे बासन टिकै न पानो । उड़िगे हंस काय कुम्हिलानी ॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी । कह कबीर यह कथा सिरानी ॥ १३६ ॥
राम नाम को सेवहु बीरा दूर नहीं दुरश्रासा हो ।

और देव का पूजहु बौरे ई सब झूठी आसा हो ॥
उपर के उजरे कह भो बौरे भीतर अजहूं कारो हो ।
तन के वृद्ध कहा भो बौरे ई मन अजहूं बारो हो ॥
मुख के दाँत गये का बौरे अँदर दाँत लोहे के हो ।
फिर फिर चना चबाउ विषय के काम क्रोध मद लोभे हो ॥
तन की सक्ति सकल घट गयऊ मनहिं दिलासा दूनो हो ।
कहैं कबीर सुनो हो संतो सकल सयानप ऊनी हो ॥ १३७ ॥
राम नाम बिनु राम नाम बिनु मिथ्या जन्म गँवाई हो ।
सेमर सेइ सुवा जो अहँडे ऊन परे पछिताई हो ॥
जैसे महिप गाँठि अरथै दे घरहुँ कि अकिल गँवाई हो ।
स्वादे उदर भरत धौं कैसे ओसै प्यास न जाई हो ।
द्रव्य क हीन कौन पुरुषारथ मनहीं माहिं तवाई हो ।
गांठी रतन मरम नहिं जानेहु पारख लीन्हीं छोरी हो ।
कह कबीर येहि अवसर बीते रतन न मिलै बहोरी हो ॥ १३८ ॥
जो तें रसना राम न कहिहै । उपजत बिनसत भरमत रहिहै ॥
जस देखी तरुवर की छाया । प्रान गये कहु काकी माया ॥
जीवत कछु न किये परमाना । मुये मर्म कहु काकर जाना ॥
अंत काल सुख कोउ न सोवै । राजा रंक दोऊ मिल रोवै ॥
हंस सरोवर कमल सरीरा । राम रसायन पियै कबीरा ॥ १३९ ॥

सोच समझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी ।
टुकड़े टुकड़े जोड़ि जुगत सों, सी के अंग लपटानी ।
कर डारी मैली पापन सों, लोभ मोह में सानी ।

ना एहि लग्यो ज्ञान कै साबुन, ना धोई मल पानी।
सारी उमिर ओढ़ते बीती, भली बुरी नहिं जानी।
संका मान जान जिय अपने, यह है चीज बिरानी।
कह कबीर धरि राखु जतन से, फेर हाथ नहिं आनी ॥१४०॥

बहुर नहिं आवना या देस।
जो जो गये बहुर नहिं आये, पठवत नाहिं सँदेस ॥
सुर नर मुनि औ पीर ओलिया देवी देव गनेस।
धरि धरि जनम सबै भरमे हैं ब्रह्मा विष्णु महेस ॥
जोगी जंगम औ संन्यासी डीगंबर दरवेस।
चुंडित मुंडित पंडित लोई सरग रसातल सेस ॥
ज्ञानी गुनी चतुर औ कविता राजा रंक नरेस।
कोइ रहीम कोइ राम बखाने कोइ कहै आदेस ॥
नाना भेख बनाय सबै मिलि ढूँढि फिरें चहुँ देस।
कहैं कबीर अंत ना पैहो बिन सतगुरु उपदेस ॥ १४१ ॥

या दिन की कछु सुध कर मन माँ।
जा दिन लै चलु लै चलु होई, ता दिन संग चले नहिं कोई।
तात मात सुत नारी रोई, माटी के संग दियो समोई।
सो माटी काटेगी तन माँ।
उलफत नेहा कुलफत नारी। किसकी बीबी किसकी बाँदी।
किसका सोना किसकी चाँदी। जा दिन जम ले चलिहैं बाँधी।
डेरा जाय परै बहि बन माँ।
टाँड़ा तुमने लादा भारी। बनिज किया पूरा ब्योपारी।

जूवा खेला पूंजी हारी। अब चलने की भई तयारी।
हित चित मत तुम लाओ धन माँ।
जो कोइ गुरु से नेह लगाई। बहुत भाँति सोई सुख पाई।
माटी में काया मिलि जाई। कह कबीर आगे गोहराई॥
साँच नाम साहेब को संग माँ॥ १४२॥

ना जानें तेरा साहेब कैसा है।
मसजिद भीतर मुला पुकारै क्या साहेब तेरा बहिरा है॥
चिउँटी के पग नेवर बाजै सो भी साहब सुनता है।
पंडित होय के आसन मारै लंबी माला जपता है।
अन्तर तेरे कपट कतरनी सो भी साहब लखता है॥
ऊंचा नीचा महल बनाया गहरी नेव जमाता है।
चलने का मनसूबा नाहीं रहने को मन करता है॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी गाड़ि जमीं में धरता है।
जेहि लहना है सो ले जैहै पापी बहि बहि मरता है॥
सतवंती को गजी मिले नहिं वेश्या पहिरै खासा है।
जेहि घर साधू भीख न पावै भँडुवा खात बताशा है॥
हीरा पाय परख नहिं जानै कौड़ी परखन करता है।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो हरि जैसे को तैसा है॥ १४३॥
मुखड़ा क्या देखै दरपन में, तेरे दाया धरम नहिं तन में।
आम की डार कोइलिया बोलै, सुवना बोलै बन में।
घरबारी तो घर में राजी फक्कड़ राजी बन में।
ऐंठी धोती पाग लपेटी तेल चुआ जुलफन में।

गली गली की सखी रिझाई दाग लगाया तन में।
पाथर को इक नाव बनाई उतरा चाहै छन में।
कहन कबीर सुनो भाइ साधो वे क्या चढ़िहैं रन में ॥ १४४ ॥

मेरे जियरा बड़ा अँदेसवा, मुसाफिर जैहो कोनो ओर।
मोह का सहर कहर नर नारी, दुइ फाटक घन घोर।
कुमती नायक फाटक रोके, परिहौ कठिन झँझोर ॥
संसय नदी अगाड़ी बहती विषम धार जल जोर।
क्या मनुवां तू गाफिल सोवै, इहाँ मोर औ तोर ॥
निसि दिन प्रीत करो साहब से, नाहिन कठिन कठोर।
काम दिवाना क्रोध है राजा बसं पचीसो चोर ॥
सत्त पुरुख इक बसें पच्छिम दिसि तासों करो निहोर।
आवै दरद राह तोहि लावै तब पैहो निज ओर ॥
उलटि पाछिलो पैड़ा पकड़ो पसरा मना बटोर।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो तब पैहो निज ठोर ॥ १४५ ॥

पीले प्याला हो मतवाला प्याला नाम अमीरस का रे।
बालपना सब खेलि गवाया तरुन भया नारी बस का रे ॥
विरध भया कफ बाय ने घेरा खाट पड़ा न जाय खसका रे।
नाभि कँवल बिच है कस्तूरी जैसे मिरग फिरै बन का रे ॥
बिन सतगुरु इतना दुख पाया बैद मिला नहिं इस तन का रे।
मात पिता बधू सुत तिरिया संग नहीं कोइ जाय सका रे ॥
जब लग जीवै गुरु गुन गाले धन जोवन है दिन दस का रे।

चौरासी जा उबरा चाहै छोड़ कामिनी का चसका रे॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो नख सिख पूर रहा विस का रे ॥१४६॥

नाम सुमिर पछतायगा ।
पापी जियरा लोभ करत है आज काल उठि जायगा॥
लालच लागी जनम गँवाया माया भरम भुलायगा।
धन जोवन का गरब न कीजै कागद ज्यों गलि जायगा॥
जब जम आइ केस गहि पटकै ता दिन कछु न बसायगा।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं तो मुख चोटा खायगा॥
धरम राय जब लेखा माँगै क्या मुख लेके जायगा।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो साध संग तरि जायगा ॥१४७॥

मेरा तेरा मनुआं कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौ आंखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाइ रे॥
मैं कहता तू जागत रहियो तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निरमोही रहियो तू जाता है मोहि रे॥
जुगन जुगन समझावत हारा कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी सब धन डारे खोइ रे॥
सतगुरु धारा निरमल बाहै वामें काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो तबही वैसा होइ रे ॥१४८॥
समझ देख मन मीत पियरवा आसिक होकर सोना क्या रे॥
रूखा सूखा गम का टुकडा फीका और सलोना क्या रे।
पाया हो तो दे ले प्यारे पाय पाय फिर खोना क्या रे॥

जिन आंखिन में नींद घनेरी तकिया और बिछौना क्या रे ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो सीस दिया तब रोना क्या रे ॥१४९॥

जाके नाम न आवत हिये ।
काह भये नर कासि बसे से का गंगा जल पिये ॥
काह भये नर जटा बढ़ाये का गुदरी के लिये ।
काह भयो कंठी के बांधे काह तिलक के दिये ॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो नाहक ऐसे जिये ॥ १५० ॥

गुरू से कर मेल गंवारा । का सोचत बारं बारा ।
जब पार उतरना चहिये । तब केवट से मिल रहिये ॥
जब उतरि जाय भव पारा । तब छूटे यह संसारा ।
जब दरसन देखा चहिये । तब दरपन मांजत रहिये ॥
जब दरपन लागत काई । तब दरसन कहा ते पाई ।
जब गढ़ पर बजी बधाई । तब देख तमासे जाई ॥
जब गढ बिच होत सकेला । तब हंसा चलत अकेला ॥
कहैं कबीर देख मन करनी । वाके अन्तर बीच कतरनी ।
कतरनी के गांठ न छूटै । तब पकरि पकरि जम लूटै ॥१५१॥

चल चल रे भौंरा कँवल पास ।
तेरी भौंरी बोलै अति उदास ॥
यह करत चोज बारही बार ।
तन बन फूल्यो फल डार डार ॥
है लियो धनस्पति केर भोग ।
कुछ सुख न भयो तन बढ़्यो रोग ॥

दिवस चार के सुरंग फूल ।
तेहि लखि भौंरा रहो भूल ॥
वनस्पती जब लागै आग ।
तब भँवरा कहँ जैहो भाग ॥
पुहुप पुराने गये सूख ।
लगी भँवर को अधिक भूख ॥
उड़ न सकत बल गयो छूट ।
तब भँवरा रोवै सीस कूट ॥
चहुं दिश चितवै मुंह पसाय ।
ले चल भवरी सिर चढ़ाय ॥
कह कबीर ये मन के भाव ।
नाम बिना सब जम के दाँव ॥ १५२ ॥

भजु मन जीवन नाम सबेरा ।
सुंदर देह देख जिन भूला झपट लेत जस बाज बटेरा ।
या देही को गरब न कीजै उड़ पंछी जस लेत बसेरा ॥
या नगरी में रहन न पैहो कोइ रहि जाय न दुख घनेरा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो मानुस जनम न पैहो फेरा ॥१५३॥

ऐसी नगरिया में केहि विध रहना ।
नित उठ कलँक लगावे सहना ॥
एकै कुंवा पांच पनिहारी ।
एकै लेजुर भरै नौ नारी ॥
फट गया कुंवा विनस गई बारी ।

विलग भईं पांचो पनिहारी ॥
कहैं कबीर नाम बिनु बेरा ।
उठ गया हाकिम लुट गया डेरा ॥ १५४ ॥
का नर सोवत मोह निसा में जागत नाहिं कूच नियराना ।
पहिल नगारा सेत के समये दूजे बेन सुनत नहिं काना ।
तीजे नैन दृष्टि नहिं सूझै चोथे आन गिरा परवाना ।
मात पिता कहना नहिं मानै विप्रन सों कीन्हाअभिमाना ।
धरम की नाव चढ़न नहिं जानै अब जमराज ने भेद बखाना ।
होत पुकार नगर कसबे में रैयत लोग सबै अकुलाना ।
पूरन ब्रह्म कि होत तयारी अंत भवन विच प्रान लुकाना ।
प्रेम नगर में हाट लगतु है जहं रँगरेजवा है सत वाना ।
कह कबीर कोइ काम न ऐहै माटीके देहियामाटि मिलजाना१५५
रे दिल गाफिल गफलत मत कर एक दिना जम आवेगा ।
सौदा करने या जग आया, पूंजी लाया मूल गंवाया ।
प्रेम नगर का अंत न पाया, ज्यों आया त्यों जावैगा ।
सुन मेरे साजन सुन मेरे मीता, या जीवन में क्या क्या कोता ।
सिर पाहन का बोझा लीता, आगे कौन छुड़ावैगा ।
परलि पार मेरा मीता खड़िया, उस मिलने का ध्यान न धरिया ।
टूटी नाव ऊपर जा बैठा, गाफिल गोता खावैगा ।
दास कबीर कहैं समझाई, अंतकाल तेरा कौन सहाई ।
चला अकेला संग न कोई, कीया आपना पावैगा ॥ १५६ ॥
सुमिरो सिरजनहार मनुख तन पाय के ।

काहे रहो अचेत कहा यह अवसर पैहो।
फिर नहिं मानुष जनम बहुरि पाछे पछतैहो।
लख चौरासी जीव जतु में मानुष परम अनूप।
सो तन पाय न चेतहू कहा रंक का भूप॥
गर्भ वास में रह्यो कह्यो मैं भजिहाँ तोही।
निसि दिन सुमिरौं नाम कष्ट से काढ़ौ मोही॥
इक मन इक चित ह्वै रहों रहों नाम लव लाय।
पलक न तुमैं विसारि हौं यह तन रहै कि जाय॥
इतना किया करार तबै प्रभु बाहर कीना।
बिसर गयो वह ठाँव भयो माया आधीना॥
भूलो बात उदर की यहां नो मत भइ आन।
बारह बरस ऐसही बाते डोलत फिरत अजान॥
त्रिसया पवन समान तबै ज्वानी मदमाते।
चलत निहारै छाँह तमक के बोलै बातें॥
चोवा चदन लाइ के पहिर बसन बनाय।
गलियो में डोलत फिरै परतिय लख मुसुकाय॥
गा तरुनापा बीत बुढ़ापा आइ तुलाना।
कपन लागे सीस चलत दोउ पाव पिराना॥
नैन नासिका चूवन लागे करन सुनै नहिं बात।
कठ माहिं कफ घेरि लियो है बिसर गये सब नात॥
मात पिता सुत नारि कहौ का के सग लागी।
तन मन भजि लो नाम काम सब होय सुभागी॥

नहिं तो काल गरासिहै परि हो जम के जार।
बिन सतगुर नहिं बाचिहौ हिरदय करहु विचार॥
सुफल होय यह देह नेह सतगुर से कीजै।
मुक्ती मारग यही सत बचनन चित दीजै॥
नाम जपो निरभय रहो अग न व्यापै पीर।
जरा मरन यहु ससय मेटै गावै दास कबीर॥ १५७॥
तोरी गठरी में लागे चोर, बटोहिया का रे सोवै।
पांच पचीस तीन हैं चोरवा, यह सब कान्हा सोर।
जाग सबेरा बाट अनेरा, फिर नहिं लागै जोर।
भव सागर यक नदी बहुत है, बिन उतरे जाव बोर।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जागत कीजै भोर॥ १५८॥

कासों वो सुमिरन की बेरिया।
जिन सिरजा तिन की सुधि नांहीं,
झरत फिरो झकझलनि झलरिया।
गुरु उपदेस सदेस कहत हैं,
भजन करो चढि गगन अटरिया।
नित उठि पांच पचिसकै झगरा,
व्याकुल मोरी सुरति सुँदरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
भजन बिना तोरी सूनी नगरिया॥ १५६॥

बागों ना जारे तेरे काया में गुलजार। करनी क्यारी बोइ
के रहनी करु रखवार। दुरमति काग उडाइ के देखै अजब

बहार। मन माली परबोधिये करि भजन को थार। दया पोद सूखै नहीं छमा सींच जल ढार। गुलो चमन के बीच में फूला अजब गुलाब। मुक्ति कली सतमाल की बहिरूँ गूथि गलहार। अष्ट कमल से ऊपजै लीला अगम अपार। कह कबीर चित चेत के आवागवन निवार ॥ १६० ॥

सुमिरन बिन गोता खावोगे।
मुट्ठी बाधे गर्भ से आये हाथ पसारे जाओगे ॥
जैसे मोती फरत ओस के बेर भये झर जाओगे।
जैसे हाट लगावै हटवा सौदा बिन पछताओगे ॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो सौदा लेकर जावोगे ॥ १६१ ॥

अरे मन समझ के लादु लदनियाँ।
काह क टटुवा काहे क पाखर काहे क भरी गौनियाँ ॥
मनकै टटुआ सुरति कै पाखर भर पुन पाप गौनियाँ।
घर के लोग जगाती लागे छीन लेयँ कर धनियाँ ॥
सौदा करु तो येहि कर भाई आगे हाट न बनियाँ।
पानी पी तो यहीं पी भाई आगे देस निपनियाँ।
कहै कबीर सुनो भाई साधा सत्त नाम का बनियाँ ॥ १६२ ॥

दिवाने मन भजन बिना दुख पैहो।
पहिला जनम भूत का पैहो सात जनम पछतैहो ॥
काँटा पर कै पानी पैहो प्यासन ही मरि जैहो।
दूजा जनम सुवा का पैहो बाग बसेरा लहैहो ॥
टूटे पंख बाज मँडराने अधफड प्रान गँवैहो।

बाजीगर के बानर होइहो लकड़िन नाच नचैहो।
ऊंच नीच से हाथ पसरिहो मांगे भीख न पैहो॥
तेली के घर बैला होइ हो आँखिन ढाँप ढँपैहो।
कोस पचास घरे में चलिहो बाहर होन न पैहो॥
पँचवा जनम ऊंट के पैहो बिन तौल बोझ लदैहो।
बैठे से तो उठै न पैहो घुरच घुरच मरिजैहो॥
धोबी घर के गदहा होइहौ कटी घास ना पैहो।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठे लै घाटे पहुँचैहो॥
पच्छी मां तो कौवा होइहो करर करर गुहरैहो।
उड़ि के जाइ बैठि मेले थल गहिरे चोंच लगैहो॥
सत्त नाम की टेर न करिहो मन ही मन पछितैहो।
कहँ कबीर सुनो भाई साधो नरक निसानी पैहो॥ १६३॥

साधो यह तन ठाठ तबूरे का।

पंचत तार मरोरत खूटी निकसत राग हजूरे का॥
टूटे तार बिखरि गई खूंटी हो गया धूरम धूरे का।
या देही का गर्व न कीजै उड़ि गया हंस तँबूरे का।
कहत कबीर सुनो भाई साधो अगम पंथ कोइ सूरे का॥१६४॥

गगन घटा घहरानी साधो गगन घटा घहरानी॥
पूरब दिसि से उठी बदरिया रिमझिम बरसत पानी।
आपन आपन मेंड़ सम्हारो बह्यो जात यह पानी॥
मन कै बैल सुरत हरवाहा जोत खेत निरवानी।
दुबिधा दूब छोल करु बाहर बोय नाम की धानी॥

जोग जुगुत करि करु रखवारी चरन जाय मृगधानी।
थाली झार कूट घर लावै सोई कुसल किसानी॥
पाँच सखी मिल कीन रसोइया एक से एक सयानी।
दूनों थार बराबर परसे जेवैं मुनि अरु ज्ञानी॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो यह पद है निरबानी।
जो या पद को परचै पावै ता को नाम बिज्ञानी॥ १६५॥

—०—

सकुच और शिक्षा

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी। ऊ रँगरेजवा कै मरम न जानै नहिं मिले धोबिया कवन करै उजरी। तन कै कूँडी ज्ञान के सउँदन साबुन महँग बिकाय या नगरी। पहिरि ओढ़ि के चली ससुररिया गौंवाँ के लोग कहैं बडी फुहरी। कहत कबीर सुनो भाई साधो बिन सतगुरु कबहूं नहिं सुधरी॥ १६६॥

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पाँच तत्त के बनी चुनरिया सोरह सै बँद लागे जिया॥
यह चुनरी मोरे मैके ते आई ससुरे में मनुआ खोय दिया।
मलि मलि धोई दाग न छूटे ज्ञान को साबुन लाय पिया॥
कहत कबीर दाग तब छुटिहैं जब साहब अपनाय लिया॥१६७॥

पिय ऊंची रे अटरिया, तोरी देखन चली।
ऊंची अटरिया जरद किनरिया लगी नाम की डोरी।
चाँद सुरज सम दियना बरतु है ता बिच भूली डगरिया॥

पांच पचीस तीन घर बनिया मनुआं है चौधरिया।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान को चहुं दिस लगी बजरिया॥
आठ मरातिब दस दरवाजा नौ में लगी किवरियां।
खिरकि बैठ गोरी चितवन लागी उपराँ झाँप झाँपरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो गुरु चरनन बलिहरिया।
साध संत मिलि सौदा करिहैं झीखै मुरख अनरिया॥१६८॥

रतन जतन करू प्रेम के तत धरु सतगुरु इमरित नाम जुगत के राखब रे। बाबा घर रहलों बबुई कहौलों सैयां घर चतुर सयान चेतब घरवा आपन रे। खेलत रहलौं मैं सुपली मऊनिया औचक आये ले निहार चलन केसिया झार रे। यक तो अँधेरी रात मुसल चोरवा थाती सैयां के बान कुबान सुतैलै गोड़वा तान रे। चुन चुन कलिया मैं सेजिया बिछौलौं बिना रे पुरुखवा के नारि झकैले दिनवा रात रे। ताल झुराय गैलें फूल कुम्हिलाय गैलें हसा उड़त अकेल कोई नहिं देखल रे। अब का झखैलू नारि हिए बैठैलू मन मारि एहि बाटे मोतिया हेराइल रे। दास कबीर इहै गावै निरगुनवां अब की उहवां जाब तो फिर नहिं आउब रे॥१६९॥

का लै जैबो ससुर घर ऐबो।
गांव के लोग जब पूछन लगिहैं तब हम का रे बतैबो।
खोल घुंघट जब देखन लगिहैं तब हम बहुत लजैबो॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो फिर सासुर नहिं पैबो॥१७०॥

सांई मोर बसत अगम पुरवां जहं गमन हमार।

आठ कुआँ नव बावड़ी सोरह पनिहार ।
भरल घयलया ढरकि गये रे धन ठाढ़ी मनमार ॥
छोट मोट डँडिया चँदन के हो, छोट चार कहार ।
जाय उतरिहै वाही देसवाँ हो, जहँ कोइ न हमार ॥
ऊँची महलिया साहब की हो लगो विसमी बजार ।
पाप पुन्न दाउ बनियाँ हो हीरा लाल अपार ॥
कह कबीर सुन साइयाँ मोर याहिय देस ।
जो गये सो बहुरे ना को कहत सँदेस ॥१७१॥

कौन रँगरेजवा रँगै मोर चुँदरी । पांच तत्त के बनी चुँदरिया चुँदरी पहिरि के लगै बडी सुँदरी । रेजुआ नागा करम के धागा गरे निच हरवा हाथ बिच मुँदरी । सोरहो सिंगार बतीसो अभरन पिय पिय रटत पिया सग घुमरी । कहत कबीर सुनो भाई साधो बिन सतसग कवन विधि सुधरी ॥१७२॥

ये अँखिया अलसानी, पिय हो सेज चलो ।
खम्भ पकरि पतंग अस डोलै बोलै मधुरी बानी ।
फूलन सेज बिछाइ जो राख्यो पिया बिना कुम्हलानी ॥
धीरे पाँव धरौ पलँगा पर जागत ननद जिठानी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो लोक लाज बिलछानी ॥ १७३ ॥

जाग पियारी अब का सोवै । रैन गई दिन काहे को खोवै ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया । तै बौरी सब सोय गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहु न पिय की सेज सँवारी ॥
तैं बौरी बौरापन कीन्हो । भर जोबन पिय अपन न चीन्हो ॥

जाग देख पिय सेज न तेरे। तोहि छांड़ि उठ गये सवेरे॥
कह कबीर सोई धुन जागे। शब्द बान उर अंतर लागे॥१७४॥

आयो दिन गौने के हो मन होत हुलास।
पाँच भीट कै पोखरा हो जामें दस द्वार।
पाँच सखी बैरिन भई हो, कस उतरब पार॥
छोट मोट डोलिया चँदन कै हो लगे चार कहार।
डोलिया उतारे बीच बनवाँ हो, जहँ कोइ न हमार॥
पइयां तोरी लागों कहरवा हो, डोली धर छिन वार॥
मिल लेवँ सखिया सहेलर हो, मिलों कुल परिवार॥
साहब कबीर गावैं निरगुन हो, साधो करि लो विचार॥
नरम गरम सौदा करिलो हो, आगे हाट न बजार॥ १७५॥

खेलले नैहरवा दिन चारि।
पहिली पठौनी तीन जन आये नौवा बाम्हन बारि।
बाबुल जीमैं पैयां तोरी लागों अब की गवन दे टारि।
दुसरी पठौनी आपे आये लेके डोलिया कहार।
धरि बहियां डोलिया बैठारिन कोउ न लागै गोहार।
ले डोलिया आइ बन में उतारिन कोइ नहिं संगी हमार।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो इक घर हैं दस द्वार॥ १७६॥

डँड़िया फँदाय धन चालु रे, मिलि लेहु सहेली।
दिना चारि को संग है फिर अँत अकेली॥
दिन दस नैहर खेलिये सासुर निज भरना।
बहियां पकरि पिय लै चले तब उजुर न करना॥

इक अंधियारी कोठरी, दुजे दिया न बाती।
दे उतारि तेहि धरा जहं संग न साथी॥
इक अंधियारी कूइयां दुजे लेजुर टूटी।
नैन हमारे अस दुरें, मनो गागर फूटी॥
दास कबीरा यों कहै, जग नाहिन रहना।
संगी हमरे चलि गये हमहूं को चलना॥ १७७॥

करो जतन सखी सांई मिलन को।
गुडिया गुडवा सूप सुपेलिया तज दे बुध लरिकैयां खेलन की।
देवता पित्तर भुइयां भवानी यह मारग चौरासी चलन को।
ऊंचा महल अजब रँग बंगला साईं सेज वहां लागीफुलन की।
तन मन धनसब अरपन कर वहँ सुरत सम्हार परुपेयां सजनको।
कह कबीर निरभय होय हंसा कुंजी, बतादेउँ ताला खुलन की १७८

मिथ्याचार

दर की बात कहौ दरवेसा। बादशाह है कौने भेसा॥
कहा कूच कहँ करै मुकामा। कौन सुरति को करो सलामा॥
मैं तोहि पूंछों मुसलमाना। लाल जर्द का नाना बाना॥
काजी काज करो तुम कैसा। घर घर जबै करावो भैसा॥
बकरी मुरगी किन फुरमाया। किसके हुकुम तुम छुरी चलाया॥
दरद न जानै पीर कहावै। बैता पढ़ि पढ़ि जग समझावै॥
कह कबीर यक सय्यद कहावै। आप सरीखा जग कबुलावै॥

दिन भर रोजा धरत हौ राति हतत हो गाय।
यह तो खून वह बंदगी क्यों कर खुसी खोदाय॥ १७९॥

ऐसा योग, न देखा भाई। भूला फिरै लिये गफिलाई॥
महादेव का पंथ चलावै। ऐसो बड़ो महंत कहावै॥
हाट बाट में लावै तारी। कच्चे सिद्ध न माया प्यारी॥
कब दत्ते मावासी तोरी। कब शुकदेव तोपची जोरी॥
कब नारद बंदूक चलाया। व्यास देव कब बंब बजाया॥
करहिं लड़ाई मति के मंदा। ई हैं अतिथि कि तरकस बंदा॥
भये विरक्त लोभ मन ठाना। सोना पहिरि लजावैं बाना॥
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा। गॉव पाय जस चले करोरा॥
तिय सुंदरी न सोहई सनकादिक के साथ।
कबहुँक दाग लगावई कारी हाँडी हाथ॥ १८०॥

सोग बधावा सम करि जाना। ता की बात इंद्र नहिं जाना॥
जटा तोरि पहिरावै सेली। योग युक्ति कै गरभ दुहेली॥
आसन उड़ये कौन बड़ाई। जैसे काग चीलह मँड़राई॥
जैसी भिस्त तैसि है नारी। राज पाट सब गनै उजारी॥
जैस नरक तस चंदन माना। जस बाउर तस रहै सयाना॥
लपसी लौंग गनै यकसारा। खाँड़ै परिहरि फाँकै छारा॥
एहि विचार ते बहि गयो गयो बुद्धि बल चित्त।
दुइ मिलि एकै ह्वै रह्यो काहि बताऊं हित्त॥ १८१॥

संतो देखत जग बौराना।
सांच कहों तो मारन धावै झूठे जग पतियाना॥

नेमी देखे धरमी देखे प्रात करहिं असनाना ।
आतम मारि पखानहिं पूजें उनमें कछू न ज्ञाना ॥
बहुतक देखे पीर औलिया पढ़ें किताब कुराना ।
कै मुरीद तदबीर बतावें उनमें उहै गिआना ॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन में बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे तीरथ गरब भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी दीन्हे छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सबदै गावत भूले आतम खबरि न जाना ॥
कह हिंदू मोहिं राम पियारा तुरुक कहे रहिमाना ।
आपस में दोउ लरि लरि मूये मरम न काहू जाना ॥
घर घर मंत्र जे देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना ।
गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े अंत काल पछुताना ॥
कहत कबीर सुनो हो संतो ई सब भरम भुलाना ।
केतिक कहौं कहा नहिं मानै आपहिं आप समाना ॥ १८२ ॥

संतो राह दोऊ हम डीठा ।
हिंदू तुरुक हटा नहिं मानै स्वाद सबन को मीठा ॥
हिंदू बरत एकादसि साधै दूध सिंघाड़ा सेती ।
अन्न को त्यागै मन नहिं हटके पारन करै सगोती ॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै बिसमिल बाँग पुकारै ।
उनकी भिस्त कहाँ ते होइहै साँझे मुरगी मारै ॥
हिंदू दया मेहर को तुरुकन दोनों घट सों त्यागी ।
वै हलाल वै झटका मारैं आगि दुनों घर लागी ॥

हिंदु तुरक की एक राह है सदगुरु इहै बताई।
कहहिं कबीर सुनो हो संतो राम न कहेउ खोदाई॥ १८३॥
राम गाइ औरन समझावै हरि जाने बिन बिकल फिरै।
जा मुख वेद गयत्री उचरै जासु बचन संसार तरै।
जाके पाँव जगत उठि लागै सो ब्राह्मन जिउ बद्ध करै॥
अपने ऊंच नीच घर भोजन घृणित करम करि उदर भरै।
ग्रहण अमावस ढुकि ढुकि माँगै कर दीपक लै कूप परै।
एकादसी ब्रतौ नहिं जानै भूत प्रेत हठि हृदय धरै।
तजि कपूर गांठी बिख बांधै ज्ञान गमाये मुग्ध फिरै।
छीजै साहु चोर प्रतिपालै संत जनन की कूट करै।
कह कबीर जिह्वा के लपट एहि बिधि प्रानी नरक परै॥१८४॥
राम न रमसि कौन दँड लागा। मरि जैहै का करहि अभागा॥
कोइ तीरथ कोइ मुंडित केसा पाखँड भरम मंत्र उपदेसा॥
बिद्य वेद पढ़ि कर हंकारा। अंत काल मुख फाँकै छारा॥
दुखित सुखित सब कुटुँब जेंवइबे। मरन बेर यकसर दुख पइबे॥
कह कबीर यह कलि है खोटी। जो रह करवा निक्सल टोटी॥१८५॥
हरि बिनु भरम बिगुर बिनु गंदा।
जहँ जहँ गये अपनपौ खोये तेहि फंदे बहु फंदा॥
योगी कहै योग है नीको दुतिया और न भाई।
चुंडित मुंडित मौन जटा धरि तिनहुँ कहाँ सिध पाई॥
ज्ञानी गुनी सूर कवि दाता ये जो कहँहि बड हमहीं।
जहँ से उपजे तहँहिंसमाने छूटि गये सब तबहीं॥

बायें दहिने तजो विकारै निजु कै हरि पद गहिये।
कह कबीर गूंगे गुड़ खाया पूछे सों का कहिये ॥ १८६ ॥

जस मांस नर की तस मांस पशु की रुधिर रुधिर यकसारा जी।
पसु की माँस भखै सब कोई नरहिं न भखै सियारा जी।
ब्रह्म कुलाल मेदिनी भरिया उपजि विनस कित गइया जी।
मांस मछुरिया जो पै खावै जौ खेतन में बोइया जी।
माटी के करि देवी देवा जीव काटि कटि देइया जी।
जो तेरा है सांचा देवा खेत चरत किन लेइया जी॥
कहत कबीर सुनो हो संतो राम नाम नित लैया जी।
जो कछु किय जिह्वा के स्वारथ बदल परारा दैया जी॥ १८७॥

भूला वे अहमक नादाना। तुम हर दम रामहिं ना जाना॥
बरबस आनि कै गाय पछारा गला काटि जिउ आप लिया।
जीता जिउ मुरदा करि डारै तिसको कहत हलाल किया।
जाहि मांस को पाक कहत हैं ताकी उतपति सुनु भाई।
रज बीरज सो मांस उपानी मांस न पाक जो तुम खाई।
अपनो दोख कहत नहिं अहमक कहत हमारे बड़न किया।
उसका खून तुम्हारी गरदन जिन तुम को उपदेस दिया।
स्याही गई सफेदी आई दिल सफेद अजहूं न हुआ
रोजा नेवाज बांग क्या कीजै हुजरे भीतर बैठ मुआ।
पंडित बेद पुरान पढ़ै औ मोलना पढ़ै कुराना।
कह कबीर वे नरक गये जिन हर दम रामहिं ना जाना ॥ १८८ ॥

साधो वे मुझ हरि को नाम। और सकल तजु कौने काम॥

कहँ तब आदम कहँ तब होआ। कहँ तब पीर पगंबर हूआ ॥
कहँ तब जमीं कहां असमाना। कहँ तब वेद कितात्र कुराना ॥
जिन दुनिया में रची मसीद। झूठा रोजा झूठी ईद ॥
साच एक अल्ला को नाम। ताको नय नय करो सलाम ॥
कहुधौं भिस्त कहां ते आई। किसक हेतु तुम छुरी चलाई ॥
करता किरतिम वाजी लाई। हिंदु तुरक दुइ राह चलाई ॥
कह तब दिवस कहां तब राती। कह तब किरतिम की उतपाती ॥
नहि वाके जाति नहीं वाके पांती। कह कवीर वाके दिवस न
राती ॥ १८९ ॥

आसन पवन किये दृढ रहुरे। मन को मैल छाडि दे वोरे ॥
क्या श्रृंगी मूद्रा चमकाये। क्या विभूत सग अग लगाये ॥
क्या हिंदू क्या मूसलमान। जाको साबित रहै इमान ॥
क्या जो पढ़िया वेद पुरान। सो ब्राह्मण बूझै ब्रह्मज्ञान ॥
कह कवीर कछु आन न कीजे। राम नाम जपि लाहा लीजे ॥१९०॥

क्या नांगे क्या बाँधे चाम। जो नहि चीन्है आतम राम ॥
नाँगे फिरे योग जो होई। वन को मृगा मुकुत गो कोई ॥
मूड मुडाये जो सिधि होई। मूडी भेड मुक्त किन होई ॥
विंद राखे जो खेलहि भाई। खुसरे कौन परम गति पाई ॥
पढ़े गुने उपजै हकारा। अधधर बूडे वार न पारा ॥
कहै कवीर सुनो रे भाई। राम नाम विन किन सिध पाई ॥ १९१ ॥

अस चरित देख मन भ्रमै मोर। तातें निसि दिन गुन रमौं तोर ॥
यक पढहिं पाठ यक भ्रम उदास। यक नगन निरंतर रह निवास ॥

यक जोग जुगुत तन होहि खीन। यक राम नाम सँग रहत लीन॥
यक होहि दीन यक देहि दान। यक कलपि कलपि कै हों हरान॥
यक तत्र मत्र औखधी बान। यक सकल सिद्धि राखें अपान॥
यक तीरथ व्रत करि काया जीति। यक राम नाम सो करत प्रीति॥
यक धूम घोटि तन होहि स्याम। तेरी मुक्ति नहीं विन राम नाम॥
सतगुरु शब्द तोहि कह पुकार। अब मूल गहो अनुभव विचार॥
मैं जरा मरण ते भयउँ धीर। मैं राम कृपा यह कह कबीर १६२
सता राम नाम जो पावैं। तो वे बहुर न भव जल आवैं॥
जगम तो सिद्धिहि को धावैं। निशि वासर शिव ध्यान लगावैं॥
शिव शिव करत गये शिव द्वारा। राम रहे उनहु ते न्यारा॥
जगम जोव क्यों नहिं मारें। पढ़ैं गुनैं नहिं नाम उचारें॥
कायहि को थापें करतारा। राम रहैं उनहु ते न्यारा॥
पडित चारो वेद बखानैं। पढ़ैं गुनैं कछु भेद न जानैं॥
सध्या तरपन नेम अचारा। राम रहैं उनहु ते न्यारा॥
सिद्ध एक जो दूध अधारा। काम क्रोध नहिं तजैं विकारा॥
खोजत फिरैं राज का द्वारा। राम रहैं उनहु ते न्यारा॥
वैरागी बहु वेस बनावैं। करम धरम की जुगुत लगावैं॥
घट बजाय करैं झनकारा। राम रहे उनहु ते न्यारा॥
योगी एक योग चित धरहीं। उलटे पवन साधना करहीं॥
योग जुगुत लै मन में धारा। राम रहै उनहु ते न्यारा॥
तपसी एक जो तन को दहई। बस्ती त्यागि जँगल में रहई॥
कद मूल फल कर आहारा। राम रहैं उनहु ते न्यारा॥

मौनी एक जो मौन रहावैं। और गाँव में धुनी लगावैं॥
दूध पूत दै चले लबारा। राम रहैं उनहूं ते न्यारा॥
यती एक बहु जगुत बनावैं। पेट कारने जटा बढ़ावैं॥
निशि वासर जो कर हंकारा। राम रहै उनहूं ते न्यारा॥
पकर ले जिउ जबह कराहीं। मुख ते सब तर खुदा कहांहीं।
लै कुतका कहैं दम मदारा। राम रहैं उनहूं ते न्यारा॥
कहैं कबीर सुनो टकसारा। सार शब्द हम प्रगट पुकारा॥
जो नहिं मानहिं कहा हमारा। राम रहै उनहूं ते न्यारा॥ १६३॥

सुनता नहीं धुन की खबर, अनहद बाजा बाजता।
रसमंद मंदिर गाजता, बाहर सुने तो क्या हुआ॥
गाँजा अफीमो पोस्ता, भाँग औ शरावें पीवता।
इक प्रेमरस चाखा नहीं, अमली हुआ तो क्या हुआ॥
काशी गया औ द्वारिका, तीरथ सकल भरमत फिरै।
गांठी न खोली कपट की, तीरथ गया तो क्या हुआ॥
पोथी किताबें बाँचता, औरों को नित समझावता।
त्रिकुटी महल खोजै नहीं, बक बक मरा तो क्या हुआ॥
काजी किताबें खोजता, करता नसीहत और को।
महरम नहीं उस हाल से, काजी हुआ तो क्या हुआ॥
सतरंज चौपड़ गंजिफा, इक नर्द है बदरंग की।
बाजी न लाई प्रेम की, खेला जुआ तो क्या हुआ॥
जोगी दिगंबर से बड़ा कपड़ा रँगे रँग लाल से।
वाकिफ नहीं उस रँग से, कपड़ा रँगे से क्या हुआ॥

मदिर झरोखे रावटी, गुल चमन में रहते सदा।
कहते कबीरा है सहा, घट घट में साहब रम रहा ॥१८४॥

जिन के नाम ना है हिये।
क्या होवै गल माला डाले कहा सुमिरनी लिये॥
क्या होवे पुस्तक के बांचे कहा सब धुन किये।
क्या होवे कासी में बसि कै क्या गंगाजल पिये॥
होवै कहा बरत कै रखे कहा तिलक शिर दिये।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो जाता है जम लिये ॥ १८५ ॥

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदू अपनी करै बडाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई॥
खाला केरी बेटी व्याह घरहि में करैं सगाई॥
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय धाय चढ़वाई।
सब सखियां मिलि जेंवन बैठीं घर भर करैं बडाई॥
हिंदुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई ॥ १८६ ॥

अवधू भजन भेद है न्यारा।
क्या गाये क्या लिखि बतलाये क्या भरमे संसारा॥
क्या सन्ध्या तरपन के कीन्हे जो नहिं तत्त विचारा।
मूँड़ मुड़ाये जटा रखाये क्या तन लाये छारा॥
क्या पूजा पाहन की कीन्हे क्या फल किये अहारा।

बिन परचै साहब होइ बैठे करै विषय व्योपारा ॥
ज्ञान ध्यान का मरम न जानै बाद करै हंकारा ।
अगम अथाह महा अति गहिरा बीजन खेत निवारा ॥
महा सो ध्यान मगन ह्वै बैठे काट करम की छारा ।
जिनके सदा अहार अँतर में केवल तत्त विचारा ॥
कहत कबीर सुनो हो गोरख तरैं सहित परिवारा ॥१९७॥

मन न रँगाये रँगाये जोगी कपरा । आसन मारि मँदिर में बैठे नाम छाड़ि पूजन लगे पथरा ॥ कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा । जंगल जाय जोगी धुनिया रमौलें काम जराय जोगी बनिगैले हिजरा ॥ मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रँगौले गीता बांच के होइगैले लवरा । कहत कबीर सुनो भाई साधो जम दरवजवां बाँधल जैबे पकरा ॥ १९८ ॥

साधो भजन भेद है न्यारा ।
का माला मुद्रा के पहिरे चंदन घँसे लिलारा ।
मूँड़ मुड़ाये जटा रखाये अंग लगाये छारा ॥
का पानी पाहन के पूजे कंदमूल फरहारा ।
कहा नेम तीरथ व्रत कीन्हे जो नहिं तत्त विचारा ॥
का गाये का पढ़ि दिखलाये का भरमे संसारा ।
का संध्या तरपन के कीन्हे का षट कर्म अचारा ॥
जैसे बधिक ओट टाटी के हाथ लिये विस चारा ।
ज्यों बक ध्यान धरै घट भीतर अपने अंग विस्तारा ॥

दै परचै स्वामी होइ बैठें करैं विषय व्यवहारा।
ज्ञान ध्यान को मरम न जानें वाद करैं निःकारा॥
फूँके कान कुमति अपने से बोझ लियो शिर भारा।
बिन सतगुरु गुरु केतिक बहिगे लोभ लहर की धारा॥
गहिर गँभीर पार नहिं पावे खंड अखँड से न्यारा।
दृष्टि अपार चलन को सहजै कटै मरम कै जारा॥
निर्मल दृष्टि आतमा जाको साहब नाम अधारा।
कहत कबीर वही जन आवै तें मैं तजै विकारा॥ १९९॥
भेख को देख के कोइ भूलो मती भेख पहिरे कोई सिद्ध नांहीं।
काम औ क्रोध मद लोभ मांहीं सने खोल औ सांच संतोख नांहीं॥
कपट के भेख ते काज सीझै नहीं कपट के भेख नहिं राम राजी।
कहत कब्बीर इक सांच करनी बिना काल की चोट शिर खायगा जो॥ २००॥

संसार असारता।

बिनसै नाग गरुड़ गलि जाई। बिनसैं कपटी औ संतभाई॥
बिनसै पाप पुन्न जिन कीना। बिनसैं गुन निरगुन जिन चीन्हा॥
बिनसै अग्नि पवन अरु पानी। बिनसै सृष्टि जहाँ लौं गानी॥
बिश्नुलोक बिनसै छिन मांहीं। हो देखा परलय की छांहीं॥
मच्छ रूप माया भई यमरा खेल अहेर।
हरि हर ब्रह्म न ऊबरे सुर नर मुनि केहि केर॥२०१॥
गये राम औ गे लछुमना। संग न गै सीता असं धना।
जात कौरवन लाग न बारा। गये भोज जिन साजल धारा॥

गे पांडव कुंती सी रानी। गे सहदेव सुमति जिन ठानी॥
सरब सोन कै लंक उठाई। चलत बार कछु संग लाई॥
कुरिया जासु अंतरिछ छाई। चलत बार कछु संग न लाई॥
मूरख मानुख अधिक सँजोवै। अपना मुवल और लगि रोवै॥
ई न जान अपनो मरि जैबै। टका दस बिढ़े श्री लै खैबै॥

अपनी अपनी करि गये लगी न केहु के साथ।
अपनी करि गयो रावना अपनी दसरथ-नाथ॥ २०२॥

मानुष जन्म चुके जम मांझी। एहि तन केर बहुत हैं सांझी॥
तात जननि कह हमरो बाला। स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला॥
कामिनि कहै मोर पिय आहीं। बाघिनि रूप गरासै चाहीं॥
पुत्र कलत्र रहैं लव लाये। जंबुक नाईं रहि मुँह बाये॥
काक गीध दोउ मरन बिचारैं। स्यार स्वान दोउ पंथ निहारैं॥
धरती कहै मोहिं मिलि जाई। पवन कहै मैं लेव उड़ाई॥
अग्नि कहै मैंई तन जारों। स्वान कहै मैं जरत उबारों॥
जेहि घर को घर कहै गँवारे। सो बैरी है गले तुम्हारे॥
सो तन तुम आपन कै जानो। विषय स्वरूप भूलि अज्ञानो॥

इतने तन के सॉंझिया जनमों भर दुख पाय।
चेतत नांहीं बावरे मोर मोर गोहराय॥ २०३॥

भूला लोग कहै घर मेरा।
जा घर धामें फूला डोलै सो घर नांहीं तेरा॥
हाथी घोड़ा बैल बाहनो संग्रह कियो घनेरा।
बस्ती में से दियो खदेरा जंगल कियो बसेरा॥

गांठी बांधी खरच न पठयो बहुरि कियो नहिं फेरा।
बीबी बाहर हरम महल में बीच मियां को डेरा ॥
नौ मन सूत अरुझि नहिं सूझै जनम जनम अरुझेरा।
कहत कबीर सुनो हो संतो यह पद करो निबेरा ॥ २०४ ॥
जो देखा सो दुखिया देखा तनु धरि सुखी न देखा।
उदय अस्त की बात कहत हौं ता कर करहु बिवेखा ॥
बाटे बाटे सब कोइ दुखिया क्या गिरही बैरागी।
शुकाचार्य्य दुखही के कारन गरभे माया त्यागी ॥
योगी दुखिया जंगम दुखिया तापस को दुख दूना।
आशा तृष्णा सब घट व्यापै कोइ महल नहिं सूना ॥
सांच कहो तो सब जग खीझै झूठ कहो नहिं जाई।
कह कबीर तेई भे दुखिया जिन यह राह चलाई ॥ २०५ ॥
अब कहं चले अकेले मीता। उठि किन करहु घरहु की चिंता ॥
खीर खाँड़ घृत पिंड सँवारा। सो तन लै बाहर करि डारा ॥
जेहि सिर रचि रचि बांध्यो पागा।
सो सिर रतन बिदारहिं कागा ॥
हाड़ जरै जस लकड़ी भूरी। केस जरै जस तृन कै कूरी ॥
आवत संग न जात को साथी। काह भयो दल साजे हाथी ॥
माया को रस लेइ न पाया। अंतर जम बिलार ह्वै धाया ॥
कह कबीर नर अजहुँ न जागा। यम को मोगरा घम सिर लागा २०६
राम नाम भजु राम नाम भजु चेति देखु मन मांही हो।
लच्छ करोर जोरि धन गाड़े चले डोलावत बांही हो ॥

दाऊ दादा औ परपाजा उह गाडे भुइ भाडे हो।
अँधरे भये हियो को फूटी तिन काहें सब छाँडे हो॥
ई ससार असार को धधा अत काल कोइ नाँही हो।
उपजत विनसत वार न लागे ज्यो बादर की छाँहीं हो।
नाता गोता कुल कुटु ब सब तिनकी कवनि बडाई हो।
कह कबीर यक राम भजे बिन बूडी सब चतुराई हो॥ २०७॥
ऐसन देह निरापन बौरे मुय छुवे नहिं कोई हो।
डडक डोरवा तोर ले आइन जो कोटिक धन होई हो॥
ऊरध स्वासा उपजत ग्रासा हकराइन परिवारा हो।
जो कोई आवै वेग चलावै पल यक रहन न हारा हो॥
चदन चूर चतुर सब लेपें गलगजमुकता हारा हो।
चौंच न गीध मुये तन लूटै जबुक ओदर फारा हो॥
कहत कबीर सुनो हो सतो ज्ञान हीन मति हीना हो।
यक यक दिन यह गति सबही की कहा राव का दीना हो॥२०८॥
फूला फूला फिरै जगत में रे मन कैसा नाता र।
मात कहै यह पुन हमारा बहिन कहे विर मेरा।
कहै भाइ यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा॥
पेट पकरि कै माता रोवै बाह पकरि के भाई।
लपटि झपटि कै तिरिया रोवे हस अकेला जाइ॥
जब लग जीवे माता रोवै बहिन रोवै दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर वासा॥
चार गजी चरगजी मँगाया चढा काठ की घोरी।

चारों कोने आग लगाया फूंक दिया जस होरी॥
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गई कोइ न आयो पासा॥
घर की तिरिया रोवन लागी ढूंढ़ फिरी चहुँ देसा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो छाड़ो जग की आसा॥ २०९॥

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया बूंद पड़े घुल जाना है॥
यह संसार काँट की बाड़ी उलझ पुलझ मरि जाना है।
यह संसार झाड़ औ झाँखर आग लगे बरि जाना है॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है॥२१०॥

जियरा जायगे हम जानी।
पांच तत्त को बनो पींजरा जामें वस्तु बिरानी॥
आवत जावत कोइ न देखो डूबि गयो बिन पानी।
राजा जैहैं रानी जैहैं औ जैहैं अभिमानी।
जोग करंते जोगी जइहैं कथा सुनंते ज्ञानी॥
पाप पुन्न की हाट लगी है धरम दंड दरवानी।
पाँच सखी मिलि देखन आईं एक से एक सयानी।
चंदो जइहैं सुरजो जइहैं जइहैं पवनो पानी।
कह कबीर इक भक्त न जइहैं जिनकी मति ठहरानी॥ २११॥

मन तू क्यों भूला रे भाई। सुध बुध तेरी कहाँ हेराई॥
जैसे पंछी रैन बसेरा बसै बिरिछ पर आई।
भोर भये सब आपु आपु को जहां तहां उड़ि जाई॥

सुपने में तोहि राज मिल्यो है हाकिम हुकुम दोहाई।
जागि पर्यो तब लाव न लसकर पलक खुले सुधि पाई॥
मात पिता बंधू सुत तिरिया ना कोइ सगो सगाई।
यह तो सब स्वारथ के सगे झूठी लोक बडाई॥
सागर मांही लहर उठत है गनिता गनो न जाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो दरिया लहर समाई॥ २१२॥
मानत नहिं मन मोरा साधो, मानत नहिं मन मोरा रे।
बार बार मैं कहि समझावौं जग में जीवन थोरा रे।
या काया को गरब न कीजै क्या सॉवर क्या गोरा रे।
बिना भक्ति तन काम न आवै कोटि सुगंध चमोरा रे।
या मायो लख के मत भूलो क्या हाथी क्या घोरा रे।
जोरि जोरि धन बहुत बिगूचे लाखन कोटि करोरा रे॥
दुबिधा दुरमति औ चतुराई जनम गयो नर बौरा रे।
अजहू आनि मिलो सत संगति सतगुरु मान निहोरा रे॥
लेत उठाइ परत भुइ गिरि गिरि ज्यों बालक बिन कोरा रे।
कहत कबीर चरन चित राखो ज्यों सूई बिच डोरा रे॥२१३॥
खलक सब रैन का सपना। समझ मन कोइ नहिं अपना॥
कठिन यह मोह की धारा। बहा सब जात संसारा॥
घडा जो नीर का फूटा। पता जो डार से टूटा॥
अइस नर जात जिंदगानी। अबहु लग चेत अभिमानी॥
भुलो मत देख तन गोरा। जगत में जीवना थोरा॥
तजो मद लोभ चतुराई। रहो निहसंक जग मांहीं॥

निकस-जय प्रान जावेंगे । कोई नहिं काम आवेंगे ॥
सजन परिवार सुत दारा । उसी दिन होयंगे न्यारा ॥
अइस नर जान यह देहा । लगा ले नाम से नेहा ॥
कटै जम जाल की फाँसी । कहै कब्बीर अविनासी ॥ २१४ ॥
का मांगों कछु थिर न रहाई । देखत नैन चलो जग जाई ॥
इक लख पूत सवा लख नाती । तेहि रावन घर दिया न बाती ।
लंका सो कोट समुद्र सी खाई । तेहि रावन की खबरि न पाई ॥
सोने के महल रूपे कै छाजा । छोड़ि चले नगरी के राजा ॥
कोइ कर महल कोइ कर टाटी । उड़ि जाय हंस पड़ी रह माटी ॥
आवत संग न जात सँगाती । कहा भये दल बाँधे हाथी ॥
कहै कबीर अंत की बारी । हाथ झारि ज्यों चला जुआरी ॥२१५॥

अंतिम दृश्य

सुगवा पिंजरवा छोरि भागा ।
इस पिंजरे में दस दरवाजा दस दरवाजे किवरवा लागा ।
अँखियन सेती नीर बहन लग्यो अब कस नाँहिं तू बोलत अभागा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो उड़िगो हंस टूटिगयो तागा ॥२१६॥

कौन ठगवा नगरिया लूट लहो ।
चँदन काठ के बनत खटोलना तापर दुलहिन सूतल हो ॥
उठो सखी मोर माँग सँवारो दुलहा मोसे रूसल हो ।
आय जमराज पलँग चढ़ि बैठे नैनन आँसू टूटल हो ॥

चारि जने मिलि खाट उठाइन चहुँ दिसि धूधू ऊठल हो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो जग से नाता छूटल हो ॥२१७॥

हम कॉ ओढ़ावे चदरिया, चलती बिरिया।
प्रान राम जब निकसन लागे उलट गई दोउ नैन पुतरिया॥
भीतर से जब बाहर लाये छूट गई सब महल अटरिया।
चार जने मिलि खाट उठाइन रोवत ले चले डगर डगरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो संग चली वह सूखी लकरिया २१८

—:०:—

अहंभाव

रमैया की दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मच हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारद मुनि के परी पिछार।
स्त्रिंगी की मिंगी करि डारी पारासर के उदर बिदार।
कनफूंका चिदकासी लूटे लूटे जोगेसर करत बिचार।
हम तो बचिगे साहब दया से सब्द डोर गहि उतरे पार।
कहत कबीर सुनो भाई साधो इस ठगनी से रहो हुसिआर २१९

जब हम रहल रहा नहिं कोई। हमरे मॉह रहल सब कोई॥
कहहु सो राम कौन तोर सेवा। सो समझाय कहो मोहिं देवा॥
फुर फुर कहौं मारु सब कोई। झूठे झूठा संगति होई॥
आँधर कहै सबै हम देखा। तहँ दिठियार पैठि मुँह पेखा॥
एहि विधि कहौं मानु सब कोई। जस मुख तस जो हृदया होई॥
कहत कबीर हंस मुसुकाई। हमरे कहले छुटिहो भाई ॥२२०॥

हम न मरैं मरिहै संसारा। हम को मिला जिश्रावन वारा ॥
अब ना मरौं मोर मन माना। सोइ मुवा जिन राम न जाना ॥
साकत मरैं संत जन जीवैं। भरि भरि राम रसायन पीवैं ॥
हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं। हरि न मरैं हम काहे को मरिहैं ॥
कह कबीर मन मनहिं मिलावा। अमर भये सुखसागर पावा २२१

जहँवाँ से आयो अमर वह देसवा।
पानि न पौन न धरति अकसवा।
चाँद न सूर न रैन दिवसवा।
बाम्हन छत्रि न सूद बयसवा।
मुगल पठान न सैय्यद सेखवा।
आदि जोति नहिं गौर गनेसवा।
ब्रह्मा विष्णु महेस न सेसवा।
जोगिन जंगम मुनि दरवेसवा।
आदि न अंत न काल कलेसवा।
दास कबीर ले आये सँदेसवा।
सार सब्द गहि चलु वोहि देसवा ॥ २२२ ॥

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया।
इँगला पिँगला ताना भरनी सुखमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कँवल दल चरखा डोलै पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँइ को सियत मास दस लागे ठोक ठोक के बीनी चदरिया।

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े आढ़ि के मेली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥२२३॥

तोर हीरा हेराइलवा कचरे में ।
कोइ पूरब कोइ पच्छिम ढूढ़े कोइ ढूढ़े पानी पथरे में ॥
सुर नर मुनि अरु पीर औलिया सब भूलल वाड नखरे में ॥
साहब कबिर हिरा यहप रख वाँध लिहलें लँगोटी के अँचरे में २२४

धुँधमई का मेला नाहीं नहीं गुरू नहिं चेला ।
सकल पसारा जेहि दिन नाहीं जेहि दिन पुरुष अकेला ।
गोरख हम तब के बैरागी । हमरी सुरति नाम से लागी ॥
ब्रह्मा नहिं जब टोपी दीन्हा, विष्नु नहीं जब टीका ।
शिव शक्ती के जनमौ नाहीं, जबै जोग हम सीखा ॥
सतजुग में हम पहिरि पाँवरी त्रेता झोरी झंडा ।
द्वापर में हम अडबँद पहिरा कलउ फिरौं नव खंडा ॥
कासी में हम प्रगट भये हे, रामानंद चेताये ।
समरथ को परवाना लाये, हंस उबारन आये ॥
सहजै सहजै मेला होइगा, जागी भक्ति उतंगा ।
कहै कबीर सुनो हो गोरख चलो शब्द के संगा ॥ २२५ ॥

पढ़ि पढ़ि पंडित करि चतुराई ।
निज मुक्तिहिं मोहिं कहहु बुझाई ॥
कहँ बस पुरुष कवन सो गाऊं ।
सो मोहि पँडित सुना वहु नाऊं ॥
चार बेद ब्रह्मा निज ठाना ।

मुक्ति कर्म उनहुँ नहिं जाना ॥
दान पुन्न उन बहुत बखाना।
अपने मरन कि खबर न जाना ॥
एक नाम है अगम गँभीरा।
तहँवा असथिर दास कबीरा ॥ २२६ ॥

षोड्सोपचार सात्विक पूजा

अगर चँदन घसि चौक पुरावा सत्त सुकृत मन भावा।
भर झारी चरणामृत की कीन्हा हंसन को बरतावा ॥
पूरन मौज और रखवारा सत गुरु शब्द लखावा।
लौंग लायची नरियर आरति धोती फलस लेआवा ॥
स्वेत सिंहासन अगम अपारा सो अति वर ठहराया।
छाँड़े लोक अमृत की काया जग में जोलह कहाया ॥
चौरासी की बंदि छोड़ाया निर अक्षर बतलाया।
साधु सबै मिलि आरति गावैं सुकृत भोग लगाया ॥
कहँ कबीर शब्द टकसारा जम सों जीव छोड़ाया ॥ २२७ ॥

पूरनमासी आदि जो मंगल गाइये।
सत गुरु के पद परसि परम पद पाइये ॥
प्रथमै मंदिर झराइ कै चंदन लिआइये।
नूतन वस्त्र अनेक चंदोव तनाइये ॥
नव पूरन गुरु हेतु असप्र बिछाइये।
गुरुचरन पखालि तहां बैठाइये ॥

गज मोतिन की चौक सुतहां पुराइये।
तापर नरियर धोति मिठाइ धराइये॥
केरा और कपूर बहुत विध लाइये।
अष्ट सुगध सुपारी पान मँगाइये॥
पल्लव कलस सँवारि सुज्योति बराइये।
ताल मृदग बजाइ कै मगल गाइये॥
साधु सग ले आरति तबहिं उतारिये।
आरति करि पुनि नरियर तबहि भराइये॥
पुरुख को भोग लगाइ सखा मिलि खाइये।
युग युग क्षुधा बुझाइ तो पाइ अघाइये॥
परम अनदित होइ तो गुरहिं मनाइये।
कह कबीर सतभाय सो लोक सिधाइये॥२२८॥

मनोरंजन पुस्तकमाला।

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्र।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४) आदर्श हिंदु १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(५) " " २ " "
(६) " " ३ " "
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद-लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी.ए
(१०) भौतिक विज्ञान-लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल.टी।
(११) लालचीन—लेखक वृजनंदन सहाय।
(१२) कबीरशब्दावली—संग्रहकर्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।

Printed by C. Y. Chintamani at the Leader Press, Allahabad.